भक्त और भगवान



॥ ओ३म् ॥

भक्त और भगवान्

महात्मा आनन्द स्वामी जी की मनोहर कथा

प्रकाशक :

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क, देहली ।

प्रथम बार

दीपावली

वि० २०१६ सं०

मूल्य १)

प्रकाशक—
गोविन्दराम हासानन्द
४४०८ नई सड़क देहली

प्रवचनकर्ता—महात्मा आनन्द स्वामी जी
संग्रहकर्ता—श्री रणवीर जी 'उर्दू मिलाप'
अनुवादकर्ता—श्री जगदीश जी विद्यार्थी

गोविन्दराम हासानन्द के
यहाँ कम्पोज होकर
वैंगार्ड प्रेस, धर्मपुरा
देहली में छपा।

भूमिका

पूज्य श्री आनन्द स्वामी जी की कथाएँ कितनी जीवन देने वाली, शान्ति देने वाली और आत्मा को ऊपर ले जाने वाली हैं, यह अब बताने की आवश्यकता नहीं। मिलाप में जब जब ये कथाएँ प्रकाशित होती हैं, तब तक कितने ही आर्य समाज मन्दिरों में, कितनी ही धार्मिक सभाओं में और सत्संगों में हर शाम उनका पाठ आरम्भ हो जाता है। एक सज्जन पढ़ते हैं और सैकड़ों भाई और बहन सुनते हैं। ये कथाएँ पुस्तक रूप में प्रकाशित हों तो इनकी माँग इतनी होती है जितनी प्रायः दूसरी पुस्तकों की नहीं। पता नहीं क्यों मुझे प्रतीत होता है कि आर्यसमाज का वास्तविक सन्देश इन कथाओं में है, आर्य समाज कोई सम्प्रदाय नहीं, किसी विशेष जाति या गुट के लिये नहीं। वह एक आन्दोलन है जिस का उद्देश्य देश, भाषा, जाति, बिरादरी, रंग और नसल के भेद भाव से ऊपर उठकर मनुष्य को उस ऊँचाई तक ले जाना है जहाँ पहुँचे बिना उसका कल्याण नहीं हो सकता। यह बात मुझे पूज्य श्री आनन्द स्वामी जी की कथाओं में दिखाई दी। उन की कथाओं में कहीं कोई साम्प्रदायिकता नहीं, एक भाषा, एक प्रदेश और एक जाति का समर्थन नहीं। हर धर्म के, हर सम्प्रदाय के लोग इन कथाओं में सम्मलित होते हैं। उन से आत्मिक शान्ति और मस्तिष्क की ज्योति प्राप्त करते हैं। उस वस्तु को प्राप्त करते हैं जिसकी इस देश के लोगों को और सारे संसार को वास्तव में आवश्यकता है। यह सारे आदेश उन्होंने वेद ही से लिये हैं जो सारी मानव जाति का कल्याण चाहते हैं, इनके इस संदेश को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने में मैं थोड़ी सी सहायता कर सकूँ इसीं लिए मैं उन कथाओं की रिपोर्ट लेता हूँ। इस बार

यह कथा उन्होंने आर्य समाज लोधी रोड़ नई दिल्ली के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में की। लोधी कालोनी मेरे घर से काफी दूर है, कई दूसरे प्रोग्राम भी थे, इन सब को भुलाकर इस कथा की जो रिपोर्ट ले सका उसे आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता होती है। "आनन्द गायत्री कथा' और 'एक ही रास्ता, उस पुण्य मन्त्र से सम्बन्धित था जिसे हम गायत्री मन्त्र कहते हैं। 'जगद्गुरु शंकराचार्य और महर्षि दवानन्द' का विषय गम्भीर ज्ञान सम्बन्धी था। "जीवन गीत' का उद्देश्य यह बताना कि मानव जीवन की सफलता का रहस्य क्या है? परन्तु अब जो कथा उन्होंने की, वह केवल भक्ति मार्ग के सम्बन्ध में थी। ज्ञान कर्म और उपासना-आत्मा को अनन्त आनन्द की ओर ले जाने वाले ये तीन साधन हैं। प्रस्तुत कथा में पूज्य स्वामी जी महाराज ने उपासना या भक्ति के साधन का वर्णन किया। यह वह साधन है जिसका प्रचार श्री गुरु नानक देव जी, श्री कबीर, श्री दादू, मीराबाई, सन्त तुलसी-दास, महाकवि सूरदास महर्षि भक्त दयानन्द और कितने ही दूसरे सन्तों और महात्माओं ने किया। इस साधन में कितना रस है, कितनी मिठास और कितना प्यार, यह तो आप इस कथा में देखेंगे। मैं केवल इतना निवेदन करना चाहता हूँ कि यदि इसमें कहीं कोई त्रुटि दिखाई दे तो उसे मेरी त्रुटि समझ कर क्षमा कर दीजिए और यदि कोई विशेषता दिखाई दे तो इसके लिए पूज्य स्वामी जी को धन्यवाद दीजिये। अच्छाइयाँ उनकी हैं और बुराइयाँ मेरी। मैं बहुत अच्छा रिपोर्टर नहीं, होता तो अमृत के इस भण्डार को अधिक आकर्षक और सुन्दर ढंग में आपके समक्ष रखता।

—रणवीर

दिल्ली

॥ ओ३म् ॥

भक्त और भगवान्

पहला दिन

ओ३म् ! त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे। (ऋ० ८।९८।११)

हे विश्वदेव ! सब दिशाओं के स्वामिन् ! सर्वत्र विद्यमान्, सब को बसाने वाले अन्तर्यामी प्रभो ! तेरा ज्ञान अनन्त है, तेरा कर्म असीम है। तू हमारा पिता है, तू ही हमारी मां। हे महारानी ! हम सब लोग तुझ से सुख की भीख माँगते हैं। इस मन्त्र को पढ़ कर पूज्य स्वामी जी ने कथा आरम्भ की।

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनों !

ऋग्वेद के सातवें मण्डल के छियासीवें सूक्त में एक मन्त्र आता है—

उत स्वया तन्वा सं वदे तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृडीकं सुमना अभिख्यम्॥

(ऋ० ७।८६।२)

हे स्वामिन् ! हे सुन्दरतम ! विवाह के पश्चात् जैसे कन्या के लिये वर होता है उसी प्रकार हे मेरे वरुणदेव ! कब आयेगी वह घड़ी जब मैं अपनी आत्मा से तुम्हारे साथ बातें कर सकूँगा, जब तेरे हृदय का प्यार पाकर, तुझ से मिल कर एक हो सकूँगा। कब आयेगी वह घड़ी जब तू प्यार और आदर के साथ मेरे गीतों

को स्वीकार करेगा, और मैं अच्छे मन से तेरे दर्शन पा सकूँगा, हे परम सुख को देने वाले, हे दया और आनन्द के भण्डार !

इस मन्त्र में मनुष्य की जो पुकार है उसे मैंने संसार में सर्वत्र सुना है। जहां कहीं भी गया, और गया बहुत स्थानों पर—प्रत्येक हृदय से उठती हुई, यह रोती हुई आवाज सुनाई दी। प्रत्येक स्थान पर पहुँच कर ऐसे लगा, कि गुरु नानक देव जी महाराज ने जो कहा कि:—

नानक दुखिया सब संसार।

तो बिल्कुल सत्य कहा। पिछले एक सौ वर्ष में इस संसार में भौतिक विज्ञान ने बहुत उन्नति की है, बहुत से अविष्कार किये हैं। इन अविष्कारों और इस उन्नति को देख कर संसार का मानव अपने आप को इस प्रकार भूल गया है जैसे छोटे छोटे बच्चे सरकस का खेल देख कर खाना पीना भूल जाते हैं। आज का मानव चकित है कि इस के चारों ओर संसार में यह क्या हुआ जाता है? कभी समय था जब लोग सोचते थे, मैं क्या हूँ? यह जीवन क्यों मिला? इस का उद्देश्य क्या है? यह परिवार क्या है? संसार क्या है उस समय लोग आत्मा की खोज करते थे उन लोगों को ढूण्ढते फिरते थे जो आत्म दर्शी हैं। (जिन्होंने आत्मा के ज्ञान को प्राप्त किया है) परन्तु पिछले सौ वर्ष में विज्ञान ने जो उन्नति की उसकी विद्यमानता में आत्म दर्शन की बात करना भी कुछ लोगों को समय नष्ट करना सा प्रतीत होने लगा है। एक समय था जब आत्म-दर्शी महात्माओं को संसार में सब से मुख्य समझा जाता था। फ़िर समय आया जब बड़े-बड़े योद्धाओं को सब से मुख्य समझा गया, वह समय भी चला गया, तब धन वालों को सब से मुख्य माना गया।

लोग इनके पीछे भागने लगे। यह समय भी व्यतीत हो गया तो राजनैतिक लीडरों का समय आया। उनका आदर होने लगा, उनके पीछे लोग दौड़ने लगे। अब वह समय भी व्यतीत हुआ जाता है। एक विचित्र समय आ गया जब लोग फिल्म ऐक्टरों और ऐक्ट्रसों के दर्शन पाना चाहते हैं। पता चल जाये कि अमुक स्थान पर कोई एक्टर आया है या एक्ट्रेस आई है, तो इस प्रकार भीड़ लग जाती है, जैसे मुक्ति का द्वार वहीं खुला है।

ऐसे समय में मैं आत्म दर्शन की, भक्त और भगवान् की बात कहूँ तो सचमुच वह अनहोनी सी बात लगेगी—भौतिक पूजा के इस युग में असमय का राग। परन्तु सोच कर देखिये तो ज्ञात होगा कि यह असमय की रागनी नहीं। यह वह बात है जिस के बिना मनुष्य के जीवन में कभी शान्ति नहीं आती, जिसके बिना उसका जीवन दुःखी और अधूरा रहता है।

विज्ञान के जिन आविष्कारों ने मानव को मोहित किया है वे पिछले लगभग दो सौ वर्षों में हुए। कुछ अविष्कार इससे पूर्व भी हो चुके थे। अधिकतर और बड़े बड़े आविष्कार पिछले एक सौ वर्षों में हुए। उन्हें देख कर मनुष्य चकित हुआ अवश्य। परन्तु इन से हुआ क्या ? बड़े-बड़े वैज्ञानिक यदि ये आविष्कार करते रहे तो वे चाहते क्या थे ? इसका सीधा सा उत्तर है—सुख। श्री गुरु नानक देव जी महाराज ने सत्य कहा कि सारा संसार दुःखी है, प्रत्येक व्यक्ति सुख की खोज में मग्न। सुख तीन प्रकार का है—शारीरिक सुख, मानसिक शान्ति, और आत्मिक आनन्द इन असंख्य आविष्कारों से जो विज्ञान के क्षेत्र में हुए, आत्मिक आनन्द मिलने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। आत्मिक आनन्द से इन आविष्कारों का

कोई सम्बन्ध नहीं । मानसिक शान्ति भी इनसे उत्पन्न नहीं हुई अपितु पहले से कम हो गई है । इनके कारण अशान्ति, बेचैनी और भय में वृद्धि हुई है । शान्ति में नहीं । हां शारीरिक सुख के कुछ साधन अवश्य उत्पन्न हुए हैं । अब सरलता से दीपक जल जाता है । गला खराब करने के लिए बर्फ मिल जाती है ; सहन शक्ति को कम करने के लिए हीटर की गर्मी मिल जाती है । संसार में सब से बड़ा सुख है आत्मिक आनन्द—उससे कम मानसिक शान्ति और सब से छोटा है शारीरिक सुख, विज्ञान ने इस सुख के लिए साधन उत्पन्न किये हैं अवश्य, किन्तु क्या इनसे वास्तव में शारीरिक सुख मिलता भी है । औषधियां बहुत हैं परन्तु रोग भी तो बहुत हो गये । आविष्कार बढ़े है, उन से उलझने भी बढ़ गई हैं ।

और देखिये—शारीरिक सुख को उत्पन्न करने वाले ये साधन अब ही उत्पन्न नहीं हुए । बहुत बार उत्पन्न हुए बहुत बार नष्ट हुए । वास्तविकता यह है कि प्राचीन काल में यह विज्ञान जिस शिखर पर पहुँचा वहां अभी पहुँचा नहीं है । अभी यह और उन्नति करेगा, और आगे बढ़ेगा । मैं इसकी निन्दा नहीं करता परन्तु इस से कोई सुख मिला हो ऐसा तो मुझे दिखाई नहीं देता । सुख के इन साधनों के होते हुए भी मानसिक शान्ति का कहीं चिह्न तक नहीं । यदि विज्ञान की उन्नति से मानसिक शान्ति मिल जाती तो सब से अधिक शान्ति युरोप और अमेरीका में होनी चाहिये थी ? परन्तु क्या अमेरीका और युरोप का कोई भी देश, कोई भी शासन कोई भी जाति हृदय पर हाथ रख कर कह सकती है कि उसे मानसिक शान्ति मिल गई है ? यदि मिली होती तो यह दौड़ धूप किस

लिए। यह संघर्ष, ये एटम बम्ब, हाइड्रोजन बम्ब किस लिए ? आज वे इस प्रकार अशान्त हैं जैसे वे पहले कभी अशान्त नहीं थे।

और आत्मिक आनन्द ? इनमें से कई लोग आत्मा और ईश्वर को ही नहीं मानते फिर आत्मिक आनन्द की बात कैसे समझेंगे। इलाहाबाद के महाकवि अकबर ने इनके सम्बन्ध में बिल्कुल ठीक कहा है :—

भूलता जाता है युरोप आसमानी बाप को।
बस खुदा समझा है उसने बर्फ को और भाप को ।।

किन्तु बर्फ और भापको ईश्वर समझने वालों ने इन आविष्कारों से प्राप्त क्या किया ? क्या वे एटम बम्ब और हाइडरोजन बम्ब जो एक ही क्षरण में लाखों मनुष्यों को मौत की नींद सुला सकते हैं। क्या रूस और अमेरिका के वे राकेट जो चाँद से आगे निकल जाते हैं। मैं उन्हें बुरा नहीं कहता। परन्तु ये राकेट जिन पर हम इतना अभिमान करते हैं वास्तव में हैं क्या ? प्राचीन समय में लोग विवाह आदि के अवसर पर 'हवाइयां' चलाते थे ये तनिक बड़ी हवाइयां हैं। परन्तु ये बड़ी हों या छोटी सोचकर देखिये कि इन से मनुष्य को तमाशे के अतिरिक्त और मिला क्या ? तमाशा देख कर हम चकित होते हैं परन्तु सुख तो उत्पन्न नहीं हुआ। शान्ति तो नहीं मिली, आनन्द तो कहीं दिखाई नहीं दिया। विज्ञान के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहते हो तो अवश्य बढ़ो, परन्तु ध्यान रक्खो सुख कभी मिलेगा नहीं, शान्ति नहीं मिलेगी, आनन्द सदा एक स्वप्न बना रहेगा। इसका कारण यह है कि सच्चा सुख, शान्ति और आनन्द इस माया में नहीं। यह खेल दिखा सकती है अवश्य आत्मा चाहे तो इसके साथ खेल कर भी सकती है परन्तु सुख

शान्ति और आनन्द केवल उस समय मिलते हैं जब आत्मा और ईश्वर का मिलाप होता है, जब दोनों बातें करते हैं। दोनों एक दूसरे के प्यार को अपने हृदय में धारण करके एक दूसरे के हो जाते हैं।

इसलिए ऋग्वेद में भक्त ने पुकार कर पूछा, हे स्वामिन् ! हे सुन्दरतम ! विवाह के पश्चात् कन्या के लिये जैसे वर होता है इस प्रकार हे मेरे वरुण देव ! कब आयेगी वह घडी जब मैं अपनी आत्मा से तेरे साथ बातें कर सकूँगा, जब तेरे हृदय का प्यार पाकर तेरा अन्तरंग बन सकूँगा। कब वह शुभ घडी आयेगी जब मैं सुमन से तेरे दर्शन पा सकूँगा।

इस मन्त्र में ईश्वर को वरुण कहा गया, वरुण का अर्थ है वह जिसे हम ने सब से उत्तम, सब से सुन्दर, सब से कल्याण कारी समझ के वर लिया हो, अपना लिया हो। ईश्वर को भक्त क्रियात्मक रूप से कहता है कि मैने तुझे वर लिया है, मैंने अपना वोट तुझ को दे दिया है।

इस संसार में एक ओर प्रकृति है, दूसरी ओर ईश्वर। दोनों के मध्य में आत्मा खड़ा है। दोनों में से किसको वह चुनेगा, किस को अपना वोट देगा, यह निर्णय उसे करना है। यदि आप प्रकृति को वरना चाहते हैं तो आर्य समाज आपको रोकता नहीं, चुन लो प्रकृति को, दे दो उसको अपना वोट। हमारे शास्त्र उसे प्रेय मार्ग कहते हैं। इससे उल्ट है वह श्रेय मार्ग जिसमें आत्मा प्रकृति को नहीं अपितु ईश्वर को चुनता है, उसे अपना वोट देकर वर लेता है प्रकृति मन मोहनी है, मन को लुभाने वाली है। कितने ही रूप हैं उसके प्रत्येक पग पर बदलती है, प्रतिक्षण बदलती है, मोहित

कर देती है मनुष्य को। परन्तु अन्त में वहां विनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं। उसका अन्त कड़वा है। आत्मा को इस प्रकार पटकती है कि वह फिर युगों तक संभल नहीं पाता।

एक दिन भगवान् कृष्ण के पास नारद जी आये बोले, "भगवन् ! मैं ब्रह्मज्ञान की बात पूछने आया हूँ, क्या है यह ब्रह्मज्ञान ? क्यों हम ब्रह्म का दर्शन नहीं कर पाते ?" श्रीकृष्ण ने कहा, "अभी आये हो थोड़ी देर बैठो, प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा।" नारद जी बैठे, विश्राम किया बोले, अब तो मेरे प्रश्न का उत्तर।" श्रीकृष्ण जी ने कहा, "आओ जंगल में घूमने चलें, वहां बातें करेंगे।" दोनों निकल पड़े सैर को। घूमते-घूमते नारद काफी थक गये। प्यास भी सताने लगी। श्रीकृष्ण ने मुसकराते हुए कहा, "नारद जी ! आपको शायद प्यास लगी है, मुझे भी लगी है, मैं यहाँ बैठता हूँ आप कहीं से देख कर थोड़ा पानी ले आइये।" नारद बोले, "आप बैठिये मैं पानी लेकर अभी आऊंगा" आगे गये तो एक कुआँ मिला, जिस पर कुछ स्त्रियां पानी भर रहीं थीं। नारद ने पानी मांगा। एक युवती ने अपने घड़े से पानी पिला दिया। नारद पानी पी रहे थे और उसकी ओर देख रहे थे। देखते देखते मन में मोह जाग उठा। पानी पी लिया तो एक ओर खड़े हो गये। वह लड़की घड़े को लेकर अपने घर को चली तो नारद भी उसके पीछे-पीछे चल पड़े। उसके घर में पहुंचे तो लड़की के पिता ने उन्हें पहचान कर कहा, "आप नारद जी ! मेरे सौभाग्य से आपके दर्शन हुए अब भोजन किये बिना जाने न दूंगा ?" नारद जी यही तो चाहते थे, बोले, "भूख तो लगी है।" भोजन कर चुके तो बोले, "हम कुछ दिन तुम्हारे घर में रहें तो क्या हो।" लकड़ी

के पिता ने कहा, "यह तो मेरा सौभाग्य है।" नारद जी वहीं टिक गये। उस लड़की के रूप का मोह उन्हें पागल किये देता था। मन में जो गिरावट आ गई थी वह और भी नीचे लिये जाती थी। एक दिन लडकी के पिता से बोले, "मैं चाहता हूँ कि इस कन्या की शादी मेरे साथ हो जाये।" लडको के पिता ने कहा, "महाराज! कन्या तो पराया धन है, मुझे उसका विवह तो करना ही है, आप से अच्छा वर उसे कहाँ मिलेगा। मैं विवाह कर दूंगा अवश्य परन्तु मेरी एक शर्त भी माननी होगी और शर्त यह है कि विवाह के पश्चात् आप मेरे ही घर पर रहें, कहीं जायें नहीं। नारद को और क्या चाहिये था। रमते राम का काई घर घाट था नहीं। चिन्ता कर रहे थे कि पत्नी को लेकर कहां जायेंगे, अब बना बनाया घर मिल गया। शर्त स्वीकार हो गई। विवाह भी हो गया। नारद जी अपने आपको भूल कर ससुराल वालों के पशु चराते, उनके खेतों में काम करते, उन्हीं के घर में रहने लगे। इस प्रकार कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। गृहस्थी नारद के दो तीन बच्चे भी हो गये। तभी एक दिन मूसलाधार वर्षा होने लगी, एक दिन, दो दिन, कई दिन होती रही। सब ओर जल थल हो गया। शेष लोग कहां कहां बचे यह नारद ने देखा नहीं वह अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर मकान की दूसरी मंजिल में चले गये। वहाँ भी पानी पहुंचा तो छत पर चले गये। परन्तु बाढ़ तो रुकी नहीं। पानी छत के निकट पहुंचा तो नारद ने समझा कि मकान अब बचेगा नहीं, पत्नी और बच्चों सहित पानी में कूद पड़े कि किसी ऊँचे स्थान पर जाकर प्राण बचायें परन्तु ऐसा करते ही दो बच्चे डूब गये। पत्नी रोने लगी तो नारद बोले, "भागवान रोती क्यों

है, तू भी है, मैं भी हूँ, बच्चे और हो जायेंगे।" परन्तु तभी तीसरा बच्चा भी डूब गया। उसे ढूंढने के लिए नारद जी हाथ पांव मार ही रहे थे कि पानी का एक रेला आया, पत्नी भी डूब गई। बड़ी कठिनता से नारद जी एक ऊँचे स्थान पर पहुँचे, वहाँ भी पानी था। थक बहुत गये थे। तैरने का अब प्रश्न उत्पन्न नहीं होता था परन्तु धन्यवाद किया कि खड़े हो सकते हैं। पानी छाती तक था तभी पानी ऊपर बढ़ा, कन्धों तक पहुँच गया, फिर ग्रीवा तक, ठोड़ी भी डूब गई, पानी होठों के पास पहुँचा तो नारद जी चिल्ला उठे, "हे भगवान् मुझे बचाओ!" तभी याद आया कि वे तो भगवान् कृष्ण के लिए पानी लेने आये थे। रोकर बोले, क्षमा करो भगवान्! और तब कहानी है कि आंख खुल गई। नारद ने देखा कि कहीं कुछ भी नही, वे जंगल में पड़े हैं सामने खड़े श्री कृष्ण मुस्करा रहे हैं। मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, "नारद जी! आपके प्रश्न का उत्तर मिल गया या नहीं?" प्रकृति की वास्तविकता को समझ कर इससे छुटकारा पा लेना ही ब्रह्मज्ञान है। इससे मुक्ति पाये बिना ब्रह्म दर्शन नहीं होता। परन्तु यह प्रकृति-माया इतनी लुभाने वाली है कि इसके जाल में फंसा व्यक्ति तभी समझता है जब नाक तक पानी आ जाता है।

बहुत सुन्दर है यह माया, बहुत आकर्षक, परन्तु इसका अन्त है घोर दुःख। इस लिए मैं कहता हूँ कि ये आविष्कार जो पिछले सौ अथवा दो सौ वर्ष में हुये बहुत अच्छे हैं परन्तु इन से वास्तविक सुख कभी किसी का मिला नहीं, कभी मिलेगा नहीं। एक समय था जब रात्रि में प्रकाश करने के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। लकड़ी या पत्थर को रगड़ कर आग उत्पन्न की जाती थी,

मिट्टी या धातु के दीपक में तेल डाला जाता था। उसमें कपड़े या रूई की बत्ती रक्खी जाती थी। उसे जलाया जाता था। ऐसे स्थान पर दीपक को रक्खा जाता था कि वह वायु से बुझ न जाये, वर्षा से बुझ न जाये। तब भी बहुत प्रकाश नहीं होता था। इतना परिश्रम, तब छोटा सा दीपक, थोड़ा सा प्रकाश, आज वह सब कुछ नहीं करना पड़ता। आप बटन दबाते हैं विद्युत् बल्ब प्रकाशित हो जाता है। अत्यन्त सुन्दर है वह। बहुत सा परिश्रम उसके कारण बच गया। परन्तु क्या इससे सुख मिल गया आप को? बिजली का प्रकाश तो आज प्रत्येक घर में है क्या सुख और शान्ति भी प्रत्येक घर में है। देखो यह माया है। बहुत ठगनी है यह प्रत्येक बार ऐसा प्रतीत होता है कि इससे सुख मिलेगा परन्तु सुख कभी मिलता नहीं। सुख उसे मिलता है, जो इस ठगनी को ठग ले।

माया तो ठगनी भई, ठगत फिरत संसार।
जिस ठग ने यह ठगनी ठगी, उस ठग को नमस्कार॥

ओ इस ठगनी के जाल में फंसे लोगो! मायावाद के पुजारियो! विज्ञान के प्रकाश से अन्धे होने वालो! सुनो, सुनो, सुनो, यदि तुम केवल माया वाद में पड़े रहे और इस ठगनी के जाल से बाहर न आ सके तो ऐसा नाश होने वाला है जिसका तुमने स्वप्न में भी विचार नहीं किया होगा। इस विनाश से बचना कठिन नहीं। बचना चाहते हो तो सोचो कि मनुष्य के जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है? इस संसार में आप क्यों आये हैं?

यहाँ बैठा हुआ मैं कुछ बातें कह रहा हूँ, आप सुन रहे हैं। यदि कोई आप से पूछे कि आप यहाँ लोधी रोड़ आर्य समाज के

उत्सव पर इस समय क्यों आये तो आप कह सकते हैं आनन्द स्वामी की कथा सुनने के लिये।

ये आस पास इतने मकानों वाली, इतने क्वार्टरों वाली, दुकानों वाली और हरे भरे मैदानों वाली, ये लोधी कालोनी है। कोई आप से पूछे, कि यहाँ क्यों आये तो आप कह सकते हैं आजीविका कमाने के लिये।

परन्तु यदि कोई आप से पूछे कि इस मानव शरीर में क्यों आये ? तो क्या कोई उत्तर आपके पास हैं। शायद आपके पास हो। परन्तु जो लोग प्रकृति पूजा को अपना धर्म बनाये बैठे हैं उनके पास तो कोई उत्तर नहीं। वे उद्देश्य को नहीं जानते केवल इच्छा को जानते हैं कि मनुष्य प्रसन्नता चाहता है, सुख चाहता है परन्तु बहुत प्रसन्नता हो तो भी तो सुख नहीं होता तब यह चिन्ता जाग उठती है कि प्रसन्नता कहीं चली न जाये। बहुत प्रसन्नता होने पर आंखों में आंसू आ जाते हैं। इसलिये प्रसन्नता के साथ ही सन्ताप की कल्पना मनुष्य में जाग उठती है।

खुदा देता है जिन को ऐश उन को ग़म भी होते हैं।
जहाँ बजते हैं नक्कारे वहाँ मातम भी होते हैं॥

हाँ भाई ! ऐसे विवाह भी होते हैं जिनमें शाम को बेटी का विवाह होता है, प्रातः सूर्योदय से पूर्व पिता के हृदय की गति बन्द हो जाती है। शहनाइयों की आवाज के स्थान पर चीखें गूंज उठती हैं वहां ! फूलों के स्थान पर आंसू बरसने लगते हैं। कभी कभी प्रसन्नता ही दुःख का कारण बन जाती है और फिर धन को देखो अकबर ने कहा था कि युरोप के लोग बर्फ और भाप को खुदा

समझे बैठे हैं। परन्तु आज युरोप वाले ही क्यों सारा संसार धन को ही ईश्वर समझे बैठा है। इस प्रकार इस की पूजा करने लगे हैं जैसे वही सब कुछ है उस के अतिरिक्त और कुछ नहीं। मैं धन सम्पत्ति की निन्दा नहीं करता। उसे कमाओ अवश्य परन्तु मेरी बात को स्मरण रक्खो कि धन में सुख नहीं है। मैं लखपतियों से मिला हूँ, करोड़ पतियों से मिला हूँ परन्तु उनके मनों में सुख तो मैंने कहीं देखा नहीं। प्रत्येक ने एक ही बात कहा कि "सब कुछ होने पर भी सुख नहीं है"। मोटरें हैं, महल हैं, नौकर हैं, परिवार हैं, सब कुछ है परन्तु हृदय में बैठा हुआ कोई उसे कुरेद रहा है, घाव किये देता है। एक बार रणवीर ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए अमेरीका के कुछ अमीरों की दशा लिखो उस ने बताया कि १६३२ में शिकागो के 'बीच होटल' में अमेरीका के बड़े बड़े पूँजी-पतियों की मीटिंग हुई। उस में अमेरिका की सब से बड़ी लोहा कम्पनी का प्रधान था। नेशनल सिटी बैंक आफ न्यूयार्क का प्रधान था, गैस उत्पन्न करने वाली कम्पनी का प्रधान था। इस प्रकार व्यापार के, तेल व्यवसाय के, वस्त्र उद्योग के, स्टाक एक्सचेंज के तथा दूसरे उद्योग धन्धों के वे लोग थे जिनसे अधिक धनिक उन की लाइन में दूसरा नहीं था। सब करोड़ पति सब एक एक दिन में लाखों का लेन देन करने वाले। २५ वर्ष पश्चात् उन लोगों के सम्बन्ध में जांच हुई कि वे कहा हैं और किस दशा में हैं तो पता लगा कि लोहा कम्पनी का प्रधान पागल होकर मर गया है। बैंक का प्रधान जेल में है। गैस कम्पनी के प्रधान के गिरफ्तारी के वारण्ट निकले हुए हैं और उसका पता नहीं लगता। सब का अन्त भयानक था, सब का अन्त दुःखदायी था।

यह तो दूर की बात है, पंजाब में लाला हरकिशन लाल जी थे जिन्हें उद्योग और व्यापार का महाराजा कहा जाता था। करोड़ों में वे खेलते थे। लाखों कमाते, लाखों खर्च करते थे परन्तु अन्त में मरे तो एक होटल में, पागल होकर, दैन्य अवस्था में। कोई भी पास नहीं था। दैन्य अवस्था में रात्रि को सोये पता नहीं किस समय हार्ट फेल हो गया, प्राण निकल गये।

नहीं, प्रसन्नता में सुख नहीं। धन में भी नहीं। तब क्या विद्या में सुख है ? विद्या का अर्थ है जानना। परन्तु इसे जानने का क्या कोई अन्त है ? ज्यूं ज्यूं आगे बढ़िये, त्यूं त्यूं ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ अब तक जाना वह कुछ भी नहीं, जिसे नहीं जाना वह बहुत है। विद्या की दशा यह है कि आज तक हम यह नहीं जान सके कि अकेले हिमालय पर्वत पर कितनी वनस्पतियां होतीं हैं, कितनी प्रकार के घास, पौदे, फल और फूल। हिमालय बहुत बड़ा होने पर भी पृथिवी के सन्मुख तो बहुत छोटा है। हिमालय की बात ज्ञात नहीं तो फिर पृथिवी की बात कौन कहे ? इस सूर्य मण्डल की, इस से बड़े महासूर्य मण्डल की और इस महानू विश्व की बात कौन कहे जिसमें अरबों महा सूर्य मण्डल हैं। प्रत्येक महा मण्डल में करोड़ों सूर्य मण्डल प्रत्येक मण्डल में कितनी ही पृथिवियां। नहीं विद्या से कभी किसी को शान्ति नहीं मिलती। विद्या उत्तम है उसे प्राप्त करना चाहिये अवश्य परन्तु यदि कोई समझे कि उस से शान्ति मिल जायेगी तो याद रक्खो कि ऐसा होगा नहीं।

तब क्या शारीरिक शक्ति में सुख है ? शारीरिक शक्ति हो तो अच्छी बात है। रोगी होकर, निर्बल होकर रहना अच्छा नहीं,

परन्तु शारीरिक शक्ति चाहे कितनी भी हो किन्तु उसका अन्त होता है बड़े बड़े पहलवान भी अन्त में रोगी हो कर मरते हैं।

प्रसन्नता, धन, सम्पत्ति, शक्ति, विद्या इन का अन्त में नाश होता है। किसी में भी मनुष्य को सन्तोष नहीं होता, उस की तृप्ति नहीं होती, भूख नहीं मिटती। ये सब के सब जीवन के साधन हैं अवश्य जीवन के उद्देश्य नहीं। जीवन का उद्देश्य वह है जिस से आत्मा की तृप्ति हो जाये, उन की भूख मिट जाये, किसी भी दूसरी वस्तु की इच्छा न रहे।

परन्तु प्रकृति पूजकों का संसार, मार्ग को ही लक्ष्य समझ बैठा है। साधन को उसने उद्देश्य समझ लिया है। प्रत्येक बात का उद्देश्य उसकी समझ में आता है, केवल अपने जीवन का उद्देश्य उसे पूरा पता नहीं। एक व्यक्ति बाजार से दो बड़ी लकड़ियां खरीदता है और दो छोटो। चार पावे खरीदता है, कुछ सूत्रो। सब को इकट्ठा करके बुनना शुरू करता है। उससे पूछिये कि यह सब कुछ क्यों कर रहे हो। तो वह कहेगा कि "चारपाई बना रहा हूँ।" पूछिये "चारपाई बना कर क्या करेगा ?" तो वह कहेगा "सोऊंगा।" यह ठीक उत्तर है। छोटी सी चारपाई का उद्देश्य हम जान सकते हैं इतने बड़े मानव जीवन के उद्देश्य का ही पता नहीं।

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय में एक मन्त्र आता है। उसमें इस उद्देश्य के सम्बन्ध में कुछ मनोरंजक प्रश्नोत्तर हैं।

प्रश्न होता है **'कस्त्वा युनक्ति ?'** अर्थात् इस शरीर के साथ तुझे आत्मा को किसने जोड़ दिया ?

उत्तर मिला है 'स त्वा युनक्ति' उसने अर्थात् ईश्वर ने जोड़ दिया।

फिर प्रश्न होता है 'कस्मैत्वा युनक्ति ?' अर्थात् किस लिये जोड़ दिया शरीर के साथ।

उत्तर मिलता है 'तस्मै त्वा युनक्ति' उसके लिये अर्थात् परमात्मा को पाने के लिये जोड़ दिया है।

और तब अन्त में कहा 'कर्मणे वां वेषाय वाम्' परमात्मा को पाने का मार्ग यह है कि कर्म कर, ज्ञान प्राप्त कर, उपासना के मार्ग को अपना।

ज्ञान, कर्म, उपासना तीन साधन हैं उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जिसके लिये यह मानवी जीवन मिला। कौन सा कर्म अच्छा है कौन सा नहीं इसका पता ज्ञान से लगता है। तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि बुद्धि क्या है ? एक ही बात के सम्बन्ध में कुछ लोग कहते हैं कि यह ठीक है, दूसरे कहते हैं कि वह अनुचित है। तब यह निर्णय कैसे हो कि ठीक क्या है और अनुचित क्या है ? इसका निर्णय सात्विक बुद्धि से होता है। बुद्धि तीन प्रकार की है। बुद्धि अर्थात् साधारण बुद्धि, बुबुद्धि, अर्थात् विपरीत बुद्धि और सुबुद्धि अर्थात् सात्विक बुद्धि। बुद्धि जब सात्विक प्रयत्न से शुद्ध होती है तो उसे मेधा कहा जाता है। मेधा जब और शुद्ध होती है तो प्रज्ञा बनाती है, प्रज्ञा के पश्चात् आने वाली बुद्धि को प्रतिभा कहा जाता है। उसके उत्पन्न होने से हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है। इससे भी आगे ऋतम्भरा बुद्धि है। ऐसा बुद्धि जिसमें असत्य का चिह्न भी नहीं जो केवल ऋत अर्थात् सदा रहने वाले सत्य को अपनाती है। यह ऋतम्भरा बुद्धि ही सात्विक बुद्धि

है। ऐसे भोजन हैं, ऐसी औषधियां हैं और योग के ऐसे साधन भी हैं, जिनसे बुद्धि को तीव्र बनाया जा सकता है और सात्विक भी।

इस सात्विक बुद्धि से देखना चाहिए कि जो कर्म हम करते हैं वह अच्छा है या बुरा। ईश्वर की ओर ले जाने वाला है या प्रकृति की ओर। इस अच्छे या बुरे कर्म का नाम ही चरित्र है। जिस व्यक्ति का चरित्र अच्छा नहीं, जो प्रयत्न करके बुरे कर्म से बचने और उत्तम कर्म करने का यत्न नहीं करता उसका मन प्रभु भजन में कभी लग नहीं सकता। यह मन एक तालाब की भांति है। तालाब का पानी शुद्ध हो. निश्चल हो तो उसमें देखने से नीचे के पदार्थ दिखाई देते हैं परन्तु यदि कोई व्यक्ति दिन भर इस तालाब में कूड़ा कचड़ा गन्दगी फैंकता रहे, इस पानी को मटमैला करता रहे उसे चंचल बनाता रहे और सायंकाल चाहे कि उसमें अपना रूप देख ले तो कुछ भी दिखाई नहीं देगा, ऐसे ही यदि मन को मैला किया जा रहा है तो उसके अन्दर के पदार्थ कैसे दीखेंगे।

इस प्रकार आप देखिये कि उपासना के लिये कर्म आवश्यक है, कर्म के लिये ज्ञान। ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीनों के लिये यह मानव शरीर मिला है। इस उपासना की भावना से भक्ति की भावना से ही ऋग्वेद के शब्दों में भक्त पुकार कर कहता है "ओ मेरे प्रीतम ! ओ मेरे प्यारे ! ओ मेरे मन मोहन ! मेंरे जीवन नाथ ! कब आयेगा वह दिन कब निकलेगा वह सूर्य जब अपने आत्मा से बातें करूंगा।" कुछ लोग कहेंगे कि आनन्द स्वामी आर्य समाज की वेदी पर बैठ कर कैसी बातें कहता है ? हम तो ईश्वर को निराकार कहते हैं और तू कहता है ईश्वर से बातें होती हैं। यह परम सत्य है, झूठ नहीं इसलिये वेद में पुकार करते हुए

भक्त ने कहा, "कब आयेगा वह दिन, जब मैं तुम से बातें करुंगा, जब मैं तेरा प्रेम पात्र बनकर तुझे अपना बना लूँगा । और प्यारे कब आयेगो वह सौभाग्य को घड़ी जब तू मेरी प्यार से दी हुई भेंट को स्वाकार करेगा ? हाय रे ! कब उदय होगा वह सूर्य जब मैं तेरे दर्शन पाऊँगा" ।

यह है पुकार कब ? कब ? कब ?

यह है प्रश्न जिस का उत्तर यह चिल्लाता हुआ भक्त चाहता है । परन्तु यह तो वेद मन्त्र है न, और वेद मन्त्रों में एक जादू होता है । इन में प्रश्न इस प्रकार किया जाता है कि श्न में ही उत्तर छिपा रहता है । इस मन्त्र में भी सब प्रश्नों का उत्तर विद्यमान है । केवल एक शब्द में और वह शब्द है 'सुमना' अच्छे मन से । यह है भेद की बात । मन को सुमन बनालो तो प्रभु का दर्शन मिलता है अवश्य और यदि इस को कुमन, बुरामन बना लो, मैला बना लो तो...

नदी किनारे मैं खड़ी पानी झिलमिल होय ।
मैं मैली पिया ऊजले मेरा किस विध मिलना होय ॥

नहीं, इस प्रकार पीतम नहीं मिलते, उन्हें मिलना है तो 'सुमन' उत्पन्न करो । अपने मन को अच्छा करो । इस की मैल को दूर करो तब उस के दर्शन होंगे अवश्य ।

परन्तु दर्शन हो जाने से ही क्या काम समाप्त हो जायेगा ? ये एक सज्जन बैठे हैं, यहाँ से काश्मीर तक उन की बसें चलती हैं, मैं उन के पास जाता हूँ । उन्हें मिलने का यत्न करता हूँ ये प्रसन्न हो जायें, इस लिये अपने साथ अमरूदों की एक टोकरी भेंट देने के लिये ले जाता हूं । मार्ग साफ है, किसी ने मुझे रोका नहीं । मैं उन

के घर गया भेंट दे दी, दर्शन कर लिये, इस से क्या मेरा कर्म समाप्त हो गया। अब मुझे तो जाना है काश्मीर उस की बस में बैठ कर। केवल दर्शन कर के कार्य कहाँ समाप्त हुआ, वह तो अभी आरम्भ हुआ है। हिन्दी के एक कवि ने कहा है :—

आये वह...

कौन हैं वह। मेरे प्रीतम, मेरे चित्त चोर, मेरे मन मोहन, मेरे प्रकाश स्वरूप, मेरे ज्योति भण्डार।

आये वह और झाँक कर ही लौट कर जाने लगे।
मैंने कहा दामन पकड़, क्यों लौट कर जाने लगे॥
मैं तो कभी से जोहती थी बाट शुभागमन् की।
फिर क्यों चले हो प्रियतम, शोभा बढ़ाओ सदन की॥

हाँ केवल दर्शनों से प्यास नहीं बुझती, और भी तीव्र हो उठती है। तब जी चाहता है कि वह बैठ जाये, जाये नहीं परन्तु हाय रे दुर्भाग्य—

दामन झटक कर चल दिये वह और यूं कहते हुए।
बैठूं कहाँ तेरे सदन में गैर हैं बैठे हुए॥

अरे निकाल इन गैरों को। इस काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को निकाल दे। इस भीड़ में तेरा प्रीतम तुझे मिलेगा नहीं। प्रेमी एकान्त में मिलते हैं, बाजारों में नहीं। उनकी बातें एकान्त में होती हैं। इसलिए इस मन्त्र में कहा 'ओ मेरे प्यारे! कब मैं तुझ से बातें करूँगा', साथ ही उत्तर दिया कि जब यह मन सुमन हो जायेगा।

कई बार लोगों से सुनता हूँ कि "प्रभु भजन में मन नहीं

लगता।" अरे भाई ! लगे कैसे ? इसको सुमन बनाओ तो लग जायेगा। इस मन का रोना भगवान् राम भी रोते थे, गुरु विशष्ठ से जा कर उन्होंने कहा, "गुरु देव ! यह मन वश में नहीं होता।" गुरु बोले, ठीक कहते हो, वास्तव में यह वश में नहीं होता।" राम ने कहा, "परन्तु मुझे तो इसे वश में करना है अवश्य, या तो इसे वश में करने की विधि मिले, नहीं तो आज से मैं खाऊँगा नहीं पीऊँगा नहीं। यदि मन को वश में करने का कोई उपाय नहीं तो मैं अपने प्राण दे दूँगा।" तब गुरु वशिष्ठ घबराये, बोले, "नहीं राम प्राण देने की आवश्यकता नहीं, मन को वश में करने का उपाय भी है।

तदेजति तन्नेजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।। (यजु० ४०।५)

वह सब को हिलाता है परन्तु हिलता नहीं, वह दूर है, निकट भी है, सब के अन्दर भी है, सब के बाहर भी।

कैसी विरोधी बातें हैं, परन्तु विरोधी होते हुए भी सत्य हैं। वायु चलता है, रुकता नहीं, परन्तु रुकता भी है।

मन चलता है, रुकता नहीं, परन्तु रुकता भी है हवा तब रुकती है जब पृथिवी की आकर्षण शक्ति से परे चली जाये, पृथिवी की परिधि पर पहुँच जाये। पानी तब रुकता है जब समतल भूमि आ जाये और मन तब रुकता है जब प्रभु को खोजता २ थक कर प्रभु महिमा में खो जाये। उस समय के लिये कहा हैं 'तन्नैजति' तब वह चलता नहीं।

परन्तु राम की तसल्ली तो नहीं हुई बोले, "मैं प्रभु के पास जाने के लिये मन को वश में करने का उपाय पूछता हूँ आप कहते

हैं कि प्रभु के पास जाकर मन वश में हो जाता है, अब यह बात मैं करूँ कैसे ? कहाँ ढूँढू उस ईश्वर को ? कहाँ जाकर खोज करूँ ? किससे पूछूँ ? कहाँ मिलेगा वह ?"

गुरु ने देखा कि इस प्रकार कार्य नहीं बना, तब पैंतरा बदला, प्यार से कहा, "सुनो राम ! मन को वश में करने का साधन मन है।"

आप कहेंगे, यह विचित्र उत्तर है। एक ही मन का झगड़ा समाप्त नहीं होता, अब दो मन हो गये उनका निपटारा कौन करेगा ? परन्तु वशिष्ठ जी ने जब दूसरे मन की बात कही तो इसलिये कि लोहे को लोहा काटता है। जो लोहा भट्टी से बार-बार निकल कर फौलाद बन गया है, जिस पर सान चढ़ गई है, जिसकी धार तेज हो गई है, वह दूसरे लोहे को काट देता है इसी प्रकार वह मन जिसने अपने आपको तप और योग के साधन से वश में कर लिया है वह दूसरे मन को वश में कर सकता है। इस लिये कठापनिषद् के ऋषि ने कहा :—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

उठो, जागो ! और उनके पास पहुँचो जो पहुँचे हुए हैं। यहाँ एक विचित्र सी बात कह दी गई। पहले कहा, उठो फिर कहा जागो। वास्तव में मनुष्य जागता पहले है उठता बाद में है। तब यहाँ यह उल्टी बात क्यों कह दी।

इसलिये कि गुरु की खोज करने के लिए उठे हो तो जाग कर खोज करो। सावधान होकर आगे बढ़ो। यह संसार बहुत बुरा है। इसमें भाँति-भाँति की दुकान लगाये लोग बैठे हैं, स्वयँ उन्हें मार्ग पता नहीं, दूसरों से कहते हैं आओ तुम्हें मार्ग दिखायें। साव-

धानता के साथ उन लोगों से बचो। उनके पास पहुँचो जो पहुँचे हुये हैं, वे तुम्हें मार्ग दिखायेंगे।

मैं कैलाश की यात्रा के लिये गया। अलमोड़ा से १॥ सौ मील के अन्तर पर गरबियांग है। वहाँ तक मार्ग साफ है, किसी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता नहीं। आगे का मार्ग ज्ञात नहीं था, इस लिए गरबियांग से एक पथप्रदर्शक ले लिया। वह हमें सरलता से कैलाश तक ले गया, आराम से वापस ले आया। सब कुछ हम देख आये। यदि उसके स्थान पर किसी ऐसे व्यक्ति को अपना पथ-प्रदर्शक बनाते जिसने मार्ग देखा ही नहीं था तो वह भी मरता और हम भी मरते।

मार्ग वह दिखा सकता है, जिसने मार्ग देखा हो। परन्तु पहुँचे हुये का पता कैसे लगाना यह कैसे देखना जिसके पास हम गये हैं उसका अपने मन पर अधिकार है या नहीं ?—यह भी बताता हूँ।

सुनो ! ऐसे व्यक्ति की पहली पहचान यह है कि आप उसके पास बैठे हैं तो आपका मन उसके पास बैठे रहने से उकताये नहीं, न यह कहे कि उठो, चलो यहाँ से। यदि ऐसा अनुभव हो तो समझो इस व्यक्ति से कुछ प्राप्त हो सकता है। दूसरी पहचान यह है कि उसे अपनी जिह्वा पर अधिकार हो। यदि वह चाट और गोल गप्पे खाता फिरता है तो याद रखिये कि उसमें यह शक्ति नहीं कि आपको मार्ग दिखा सके। और तीसरी पहचान यह है कि उसे क्रोध न आता हो। कुछ दिन उसके पास रह कर देखो यदि वह क्रोध में आ जाये तो समझो कि उससे आपका कार्य बनने वाला नहीं। जो आत्म ज्ञानी हैं और जिसने अपने मन को वश में कर लिया है

उसके लिए आवश्यक है कि उसे क्रोध न आये ।

भक्त दादू की कहानी पहले भी कई बार सुना चुका हूँ । आपको भी सुनाता हूँ । दादू महाराज एक नगर के बाहर रहते थे । भक्ति से भरे गीत गाते । कोई आजाये तो उसे भक्ति का उपदेश देते । स्थान स्थान पर उनकी प्रसिद्धि होने लगी । शहर में भी पहुँची । शहर के कोतवाल भक्ति की बातों में कुछ कुछ रुचि रखते थे । घोड़े पर बैठे, शहर से चल पड़े कि दादू महाराज के दर्शन कर आयें । उन से भक्ति का अमृत ले आयें । परन्तु भक्ति में रुचि रखते हुए भी थे तो वे कोतवाल ही । शहर से बाहर जँगल में पहुँचे । दूर तक चले गये कहीं कोई दिखाई नहीं दिया । तभी एक व्यक्ति दिखाई दिया । वह मार्ग में लगी काँटेदार झाड़ियों को काट काट कर परे हटा रहा था । कोतवाल ने रोब से पूछा "अरे तू जानता है कि महात्मा दादू कहाँ रहते हैं ।" यह व्यक्ति कार्य में मस्त था । बोला नहीं । कोतवाल क्रुद्ध हो गये, गाली देते हुये बोले, "मैं तेरे बाप का नौकर नहीं, शहर का कोतवाल हूँ, जल्दी बोल ।" उस व्यक्ति ने अब की बार सुना, आश्चर्य से कोतवाल की ओर देखा, धीरे से मुस्करा दिया । कोतवाल ने समझा यह व्यक्ति ठट्ठा कर रहा है । जिस चाबुक से घोड़े को चला रहे थे उसी से उस व्यक्ति को पीट डाला । वह व्यक्ति चाबुकें खाता रहा फिर भी मुस्कराता रहा । कोतवाल ने उसे जोर से धक्का दिया । वह व्यक्ति पत्थर पर गिरा । उसके सिर से रक्त बहने लगा । कोतवाल जल्दी में थे उसे वैसे ही छोड़ कर आगे चल दिये । कुछ दूरी पर जाकर एक और व्यक्ति दूसरी ओर जाता हुआ मिला, उससे बोले, "दादू महाराज कहाँ मिलेंगे ? तू जानता है ? उस व्यक्ति ने कहा, "दादू महाराज

तो इसी मार्ग में थे, अभी कुछ देर पूर्व मैं उन्हें देख कर आया हूं। वे मार्ग में लगी काँटेदार झाड़ियों को काट रहे थे। आपने क्या उन्हें नहीं देखा!" कोतवाल ने आश्चर्य से कहा, "वे, वे दादू थे?" पथिक ने कहा, "हाँ!" कोतवाल घोड़े को मोड कर दौड़ते हुए वापिस आये। देखा कि दादू ने अपने सिर पर पट्टी बाँध ली है। वैसे ही झाड़ियां काट रहे हैं जैसे पहले काट रहे थे। कोतवाल तीव्रता के साथ घोड़े से उतरे। दादू के चरणों में गिर पड़े। रोते हुए बोले, 'क्षमा कर दो महात्मा! मैं तो आप ही को खोजता फिरता था। मेरी बुद्धि पर परदा पड़ गया, आपको ही पीट डाला।" दादू हँसते हुए बोले, "मैं जानता हूँ कि तुम दादू को खोज रहे थे।" कोतवाल ने कहा, "मुझे क्षमा कर दीजिये, मुझ से बहुत पाप हो गया।" दादू जोर से हँस पड़े बोले, कुछ नहीं किया तुमने। एक व्यक्ति एक घड़ा खरीदता है तो उसे भी ठोक पीट कर देख लेता हैं। तुम गुरु को खोज रहे थे, ठोक पीट कर देख लिया तो हर्ज क्या हुआ?

यह है पहुँचे हुए की पहचान। उसके पास बैठने से जी न उकताये। उसकी जिह्वा वश में हो और क्रोध न आये। ऐसे व्यक्ति का मन आप के मन को वश में करने में सहायता दे सकता है। इसलिये गुरु वशिष्ठ ने कहा, "कि मन को वश में करने का साधन मन है।" परन्तु यह मन क्या है यह कल बताऊँगा आज तो समय हो गया।

॥ ओ३म् तत्सत् ॥

दूसरा दिन

प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

एक था बालक। उस के पिता बीमार थे। माँ ने कहा, "बेटे ! तेरे पिता के सिर में बहुत दर्द है। ये पैसे ले, बाजार से जाकर एस्प्रीन ले आ।" बालक ने पैसे लिये, चला बाजार को। मार्ग में बन्दरों का तमाशा हो रहा था उसे देखने लगा। दस मिनट, पन्द्रह मिनट, आध घण्टा, एक घण्टा व्यतीत हो गया जब तक तमाशा होता रहा, तब तक हिला भी नहीं। तमाशा समाप्त हुआ तो फिर चला दवाई लेने के लिये। परन्तु उस दिन शहर में शायद तमाशों का दिन था। दूकान से काफी इधर देखा कि एक नट बाँस पर चढ़ कर खेल दिखा रहा है। उसको देखने लगा। मग्न हो गया उस में, भूल गया सब कुछ। घर में पिता दर्द से तड़प रहे थे, माँ को चिन्ता होने लगी कि लड़का कहाँ गया ? बड़ा बेटा आया तो उस से बोली, "तनिक बाजार में जाकर देख तो, बहुत देर हो गई तेरे भाई को गये हुए, कहीं कोई दुर्घटना न हो गई हो। इधर तुम्हारे पिता तड़प रहे हैं, उन के लिये औषधि लाने भेजा था। उधर उसका पता नहीं तुम जाकर पता करो।" बड़ा भाई बाजार में गया तो देखा कि छोटे सरकार नट का खेल देख रहे हैं। इस प्रकार मग्न कि किसी को भी सुध नहीं। बड़े भाई ने डांटते हुये कहा, "अरे मूर्ख ! तुझे औषधि लेने के लिये भेजा था या नट का खेल देखने के लिये।" यदि आप बड़े भाई के स्थान पर होते तो आप भी उस बालक को मूर्ख कहते। वास्तव में वह मूर्खता की बात कर रहा था।

परन्तु यदि वह मूर्ख था मेरे भाइयो ! मेरी माताओ ! तो हम क्या हैं ? अरे हम भी तो इस आत्मा के रोग की औषधि लेने के लिये संसार के बाजार में आये थे और यहाँ आकर भूल गये तमाशों में ? आँखों ने सौन्दर्य को देखा, जिह्वा ने रसों को चक्खा, कानों ने गीतों को सुना और तमाशे होने लगे हमारे सामने। आज मकान बन रहा है, अब विवाह हो रहा है, अब बच्चे हो गये हैं, अब दुकान चल रही है, अब नौकरी हो रही है। यह पेट ही चैन नहीं लेने देता प्रातः से सांय तक। वर्ष के आरम्भ से वर्ष के अन्त तक। लगातार जब तक यम के रूप में बड़ा भाई नहीं आता, हम इस तमाशे में मग्न रहते हैं। जीविका कमाओ, प्रातः कमाओ, सांय कमाओ, इस आजीविका से छुटकारा नहीं मिलता।

खुदा को भूल गए लोग फिकरे रोजी में।
ख्याले रिजक़ है राजक़ का कुछ ख्याल नहीं॥

आविष्कार खूब हुए पिछले सौ दो सौ वर्षों में। माया का खेल देखा हम ने खूब। लीलाधर की लीला देखी और लीलाधर को भूल गये। आये थे आत्मा के रोग की औषधि लेने मग्न हो गये खेलों में। परन्तु इस लिये तो संसार के बाजार में आये नहीं थे। आये थे इस लिये कि ज्ञान प्राप्त कर के उत्तम कर्म करें। उत्तम कर्म कर के ईश्वर की उपासना करें। उपासना करने के पश्चात् उसे प्राप्त कर लें जिसे प्राप्त करने के पश्चात् :—

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

खुल जाती है हृदय की गाँठें। चकनाचूर हो जाते हैं सब संशय, समाप्त हो जाता है कर्मों का बन्धन जब उस प्रीतम के

दर्शन हो जाते हैं। और वह प्रीतम। सुनो, ऐ माया नट के खेल में मग्न होने वालो—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः तद् यदात्म विदो विदुः॥
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयम् अग्निः
तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

कितना सुन्दर है वह, कितना आकर्षक, कितना मन मोहन! ज्योतियों की महा ज्योति। इतनी विशाल और स्वाभाविक कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे किसी का प्रकाश वैसा नहीं। तेज चमकती हुई विद्युत उस के समक्ष फीकी है, विचारे अग्नि की बात कौन करे। उस का प्रकाश प्रत्येक ओर फैल रहा है। उस की ज्योति से ही ज्योति वाले ज्योति पाते हैं।

इस परम ज्योति वाले को पाने के लिये मनुष्य को यह शरीर मिला, नहीं तो यह शरीर व्यर्थ है यह जीवन निरर्थक। यह तो साधन है केवल ज्ञान कर्म और उपासना के लिये। और ज्ञान कर्म उपासना साधन हैं प्रभु दर्शन के लिये। मानव जीवन का वास्तविक उद्देश्य प्रभु दर्शन है। मानव शरीर का वास्तविक उद्देश्य भी यही है। मार्ग हैं ये, लक्ष्य वह है जिसे भूल कर हम मार्गों को संवारने में लग गये हैं।

कुछ लोग कहते हैं इस शरीर से प्रभु दर्शन कैसे हो सकता है। परन्तु सुनो! इसी शरीर में प्रभु का दर्शन होता है, वेद कहता है :—

प्रतद्वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत्॥
(अथर्व २।१।२)

ज्ञान से भरपूर विद्वान उन तीनों लोकों में निहित अमृत ब्रह्म को अपने हृदय की गुफाओं में देखता है और जब देख लेता है, तब वह पिता का पिता हो जाता है। इसी सूक्त के पांचवें मन्त्र में आत्मा कहता है:—

परिविश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशेकम् ।
यत्र देवा अमृतमान शानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥
(अथर्व० २ । १ । ५)

सारे विश्व को छोड़ कर मैं मनुष्य के इस शरीर में आया हूँ कि उस परम सत्य अमृत को देख सकूँ जिस में मोक्ष के आनन्द को भोगते हुए योगी लोग विचरते हैं—ऐसा है यह शरीर। वास्तव में इससे प्रभु का दर्शन होता है।

परन्तु कुछ दूसरे लोग केवल संशय करके यह नहीं कहते कि "इस शरीर से प्रभु का दर्शन कैसे हो सकता है।" अपितु घोषणा करते हैं कि यह आत्मा परमात्मा कुछ नहीं। शरीर ही सब कुछ है इसलिये खाओ पीओ और ऐश करो।

देखो, मैं खाने से नहीं रोकता। मैं स्वयं खाता हूँ आप से कैसे कहूँ कि मत खाओ। खाओ अवश्य, पीओ भी।

परन्तु तनिक ठहरिये। आजकल पीने का अर्थ कुछ और हो गया है। जो व्यक्ति पानी पीता है, दूध और लस्सी पीता है उसके सम्बन्ध में आज के लोग कहते हैं कि "वह नहीं पीता" और जो न पीने की वस्तुयें पीये उस के लिये कहते हैं कि "वह पीता है।" पीने का अथ नशा चढाना हो गया है।

अच्छी बात है, नशा चढ़ाना चाहते हो तो चढ़ाओ। परन्तु ऐसा चढ़ाओ जो चढ़ कर फिर उतरे नहीं। जों बार बार चढ़े,

बार बार उतर जाये वह नशा तो नहीं, नशे का धोका है केवल।
शराब चढ़ कर उतरने वाली पिलाई तो क्या पिलाई साकी
जो चढ़ के इक बार फिर न उतरे वह मय पिलाओ तो हम भी जानें

ऐसी शराब पीओ अवश्य। मैं बेचता हूँ वह शराब बिना मूल बेचता हूँ। मैं इस शराब की कम्पनी का ऐजेन्ट बन कर घूमता फिरता हूँ।" इस शराब का नाम है "प्रभु का नाम"। यजुर्वेद कहा:—

सुरा त्वमसि शुष्मिणी (यजु० १६। ७)

प्रभो तेरा नाम बलकारी, तीव्र शराब है।

गुरु जी ने भी यही भाव प्रकट किया है:—

भंग भभूती सुरा पान उतर जायें प्रभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात॥

हो सके तो यह शराब पीओ, खूब पीओ। एक बार इस नशा हो जाए तो फिर कोई कष्ट नहीं रहता, क्लेश नहीं रहता अन्धकार में प्रकाश जाग उठता है। अग्नि का ज्वालाओं में ठण्ड काँटों में पुष्प।

डूबन जर्व न बात कछु तैं जे लागो लाग।
जहाँ प्रीत काँची नहीं क्या पानी क्या आग॥

यह नशा प्रह्लाद ने पिया था। पिता ने कहा प्रह्लाद! मैं ते पिता हूँ; "मैं कहता हूँ कि ईश्वर की पूजा न कर।" प्रह्लाद हाथ जोड़ कर कहा, "आप पिता हैं, शरीर आपने दिया, इसे सकते हैं आप, ईश्वर की पूजा को मैं छोड़ नहीं सकता।" पिता क्रोध के साथ कहा, "तुझे हाथी के पैरों तले रोंध दिया जायेगा

पहाड़ की चोटी से गिरा कर चकना चूर कर दिया जायेगा। समुद्र में डुबा दिया जायेगा, अग्नि की ज्वाला में राख कर दिया जायेगा।" प्रह्लाद ने हँसते हुए कहा, "जो भी चाहें कीजिये, मेरे लिए प्रत्येक स्थान पर मेरा भगवान् है। अग्नि और जल में वह है, सागर और पर्वत पर वह, प्रत्येक स्थान पर उसका प्यार मेरे साथ है। उस प्यार से जलती चिता हो या खौलता समुद्र, सब माँ की गोद की भाँति सुखदायी हो जाते हैं।" यह है इस नशे का प्रभाव। इतिहास के पन्ने उठा कर देखिये जिस किसी ने यह नशा पिया वह अभय हो गया। उसके लिये कोई भय नहीं रहा। राजा हो या प्रजा, धनी हो या निर्धन, निर्बल हो या सबल कोई भी उसको भय देने वाला नहीं रहता। यह वह नशा है जिसे कोई भी तुरशो उतार नहीं सकती।

ऐसा नशा पीना चाहते हो भाई तो अवश्य पीओ। जो लोग खाने पीने और ऐश करने की बात कहते हैं, उन्हें मैं कहता हूँ खाओ बेशक। पीने की वस्तुएं भी पीओ। परन्तु ये ऐश—इस की बात कुछ खटकती है। कभी कभी ऐसा प्रतीत होता है कि ऐश का अर्थ अंग्रेजी में राख है। परन्तु राख बनना तो अच्छा नहीं। खाओ पीओ अवश्य, राख होने का प्रयत्न क्यों करते हो। हमारी भाषा में ऐश का अर्थ है खाने के लिये खाना:—

खुरदन बराए जीस्तन ओ जिक्र करदन अस्त।
तो मोतकद कि जीस्तन अज बहरे खुर्दन अस्त॥

खाना केवल इसलिये चाहिये कि शरीर स्थिर रहे और प्रभु का भजन हो सके। यदि इसके स्थान पर खाने को ही जीवन का लक्ष्य बना लिया जाये तो उसे आप ऐश कह सकते हैं अवश्य।

परन्तु उसका अन्त क्या है ? याद रखिये जो लोग अन्न को देख कर नहीं खाता अन्न उन्हें खा जाता है। यह शरीर मिला है प्र दर्शन के लिये । यह अन्नमय कोश है । अन्न इसके लिये आवश्यक परन्तु यदि इस में अन्न ही भरते जाओगे तो याद रखो कि फि यह मोटर चलेगी नहीं ।

यह मोटर प्रतिदिन नहीं मिलती, कभी कभी मिलती है। मिल गई यह मोटर। पेट्रोल पड़ गया इसमें, मोबिल आयल डाल लिय गया। ब्रेक खोल दिये गये, तो अब चलो लक्ष्य की ओर—शीघ्रत से चलो—लक्ष्य पर पहुँचोगे अवश्य। परन्तु यदि लक्ष्य को भू गये, आप पहुँच गये किसी सिनेमा हाल में और वहीं बैठे रहे त फिर समझो कि यह मोटर व्यर्थ हो गई। इसमें डाला हुआ पेट्रोल निरर्थक। लक्ष्य पर तुम पहुंचे नहीं मोटर पुनः मिलेगी नहीं।

एक थे सज्जन जीवन राम। सेठ ज्योतिस्वरूप के पड़ोस रहते थे—एक झोंपड़े में। उन्हें पता लगा कि सेठ के बहुत उत्तम मकान हैं। उनके पास जाकर बोले, "अमुक मकान मुझे दीजिये, मैं वहाँ निर्धन बच्चों के लिये एक पाठशाला आरम्भ करूँगा, एक निःशुल्क औषधालय बनाऊँगा। प्रतिदिन सत्संग होग वहाँ, आध्यात्मिक कथायें होंगी यज्ञ होगा। जो भी किराया आ माँगेंगे मैं दे दूंगा।" ज्योति स्वरूप बोले तुम तो बहुत अच्छे व्यक्ति हो, इतने श्रेष्ठ काम तुम मेरे मकान में करोगे तो मैं निशुल्क दूँगा किराया नहीं लूँगा। तुम मकान को स्वच्छ रक्खो। ये उत्तम का करो। मुझे किराये को आवश्यकता नहीं।

जीवन राम पहुँचे उस मकान में। वहां रहने लगे। आरम्भ उन्होंने मकान को स्वच्छ रक्खा परन्तु कुछ ही दिन व्यतीत हुए

कि जीवन राम के कुछ ज्वारी मित्र आ गये। पहले ताश शुरू हुआ। फिर जुआ खेला जाने लगा। प्रतिदिन जुआ होता, ता शराब भी उड़ने लगी। धीरे धीरे वह मकान डाकुओं का अड्डा बन गया। हर प्रकार के पाप वहां होने लगे। किसी ने ज्योति स्वरूप से शिकायत की "सेठ साहब! जो मकान आप ने यज्ञ और सत्संग के लिये दिया था, वह तो डाकुओं का अड्डा बन गया है।" ज्योति स्वरूप बोले "ऐसी बात है।" शिकायत करने वाले ने कहा, "जी! मैं अपनी आँखों से देखकर आया हूँ।" ज्योति स्वरूप ने ने अपने छोटे मुनीम को बुलाया कहा, "जीवनराम से कहो, कि मकान खाली कर दे, हम ने पाप के लिये यह मकान दिया नहीं था। छोटे मुनीम जीवन राम के पास पहुँचे। जीवन राम ने कुछ अनुनय विनय की। कुछ मुनीम साहब का हाथ गर्म कर दिया। उन्होंने जा कर रिपोर्ट दे दी कि "सब ठीक है।" किसी ने अनुचित शिकायत कर दी थी।" परन्तु अभी बहुत देर नहीं हुई थी कि सेठ के पास पुनः शिकायत पहुँची। अब के उन्होंने बड़े मुनीम को भेजा। जीवन राम ने बड़े मुनीम की भी अनुनय विनय की। उस के पांव पड़ा। प्रतिज्ञा की कि वह अपना सुधार करेगा। बड़े मुनीम ने यह सारी रिपोर्ट दे दी। सेठ ज्योति स्वरूप बोले, 'बात बड़ी है परन्तु यदि वह सुधारना चाहता है तो उसे कुछ समय देना चाहिए।" दिया गया समय। परन्तु फिर शिकायत आई कि जीवन राम के लक्षण पहले से भी बुरे हुए जाते हैं। अब के सेठ ने अपने बेटे को भेजा। जीवन राम ने उसे भी धोखा देने का प्रयत्न किया परन्तु वह धोखे में नहीं आया। वकील से नोटिस दिला दिया कि "मकान खाली करो।" जीवन राम ने नोटिस लिया ही नहीं।

मुकदमा हुआ। वारण्ट जारी हुए। पुलिस पहुँची तो जीवन राम ने उस को भी रिश्वत देने का प्रयत्न किया। परन्तु अब कोई भी चाल चली नहीं। रोया, चिल्लाया अन्त में मकान छोड़ना पड़ा।

यह जीवन राम है आत्मा। ज्योति स्वरूप है ईश्वर, मकान है शरीर। इस मकान का कोई किराया नहीं। इसलिये मिला यह मकान कि ज्ञान के द्वारा कर्म, कर्म के द्वारा उपासना और उपासना द्वारा प्रभु का दर्शन करो। उसके स्थान पर बना दिया इसको पापों का अड्डा। तब छोटा मुनीम आया। कोई छोटी बीमारी, छोटी दुर्घटना। बड़ा मुनीम है तनिक बड़ा रोग। सेठ का लड़का है अधिक भयानक रोग। नोटिस है हृदय की दुर्बलता, अन्तड़ियों का कार्य न करना। आँखों में मोतिया बिन्द उतरना, कानों से कम सुनाई देना। नर्वस ब्रेक डाऊन मुकदमा है। अंतिम रोग पुलिस है मृत्यु। वह आ जाये तो फिर औषधियों की रिश्वत नहीं चलती। डाक्टरों को दी हुई फीस के रूप में खुशामद नहीं चलती। तब जीवन राम को यह मकान छोड़ना ही पड़ता है।

हम इस कहानी को प्रतिदिन सुनते हैं। आँखों के समक्ष देखते हैं। देखते हैं कि जीवन राम मतवाला हो गया है। देखते हैं कि उसके पास छोटा मुनीम आया है, बड़ा मुनीम आया है। सेठ का बेटा आया है। नोटिस आया है अन्त में वारण्ट लेकर पुलिस आई है। देखते हैं कि वह मकान छोड़ रहा है पुकारता हुआ कि:

मैं फूल चुनने आया था बागे हयात* में।
दामिन+ को खार जार× में उलझा के रह गया॥

फिर भी हम समझते नहीं कि यह मकान किस लिये मिला

*जीवन वाटिका +पल्लु ×काँटे

था। बहुत से आविष्कार हम करते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ते हैं। बुरा नहीं यह आगे बढ़ना। परन्तु ये पग जो हम उठाते ; उसे केवल विज्ञान के क्षेत्र में आगे जाने के लिये नहीं अपितु ईश्वर से विमुख होने के लिये। साधन को लक्ष्य बना कर हम वास्तविकता को भूल जाते हैं। विज्ञान की दौड़ में हम ने ज्ञान को, वेद को भुला दिया है। देखिये यह सूर्य इसलिये है कि हमारी आँखें देख सकें। ईश्वर ने सूर्य को पहले बनाया, पृथिवी को बाद में किस से किसी के लिये अन्धकार न रहे। इसी प्र कार सृष्टि के आदि में वेद का ज्ञान इसलिये दिया कि मनुष्य का मन ईश्वर की ओर जाने का मार्ग पा सके। ईश्वर दर्शन ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है और इस लक्ष्य की ओर जाने वाले मार्ग को दिखाना ही वेद का मुख्य उद्देश्य। महर्षि दयानन्द ने भी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में कहा:—

एवमेव सर्वेषां वेदानां ईश्वरेति मुख्यार्थः।

सब वेदों का मुख्य अर्थ सब से बड़ा उद्देश्य ईश्वर है।

इस का अर्थ यह नहीं कि वेद में दूसरी विद्यायें नहीं। सब सत्य विद्याओं का और उन विद्याओं से जो कुछ भी जाना जा सकता है उन सब का मूल वेद है। वेद में प्रकृति का ज्ञान भी है, विज्ञान भी है, कर्म काण्ड भी है, प्रत्येक प्रकार की वस्तु विद्यमान हैं। इन बातों से संसार ने बार बार लाभ भी उठाया है। विज्ञान का जो युग आज हम देखते हैं ऐसे युग पहले भी कई बार आ चुके हैं। प्रत्येक कलियुग के पश्चात् सत्युग आया है। प्रत्येक सत्युग के पश्चात् त्रेता और द्वापर। इसी प्रकार कभी प्रकृति विज्ञान चोटी पर पहुँचता है कभी आत्म विज्ञान, यह संसार एक चक्र

को भाँति चलता है। जर्मन के विद्वान् नैपाल से कई पुस्तकें ले गये। उनकी सहायता से उन्होंने रंग के कारखाने स्थापित किये। वायुयानों का निर्माण किया। यह समझना कि विज्ञान की जो उन्नति हम आज देखते हैं, यह पहले कभी थी नहीं या फिर कभी होगी नहीं, बिल्कुल गलत है। अभी कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार ने एक प्राचीन ग्रन्थ का अनुवाद स्वामी ब्रह्ममुनि जी से कराया। उस पुस्तक में बताया गया है कि पारे से वायुयान कैसे चलते थे। पहले भी यह विज्ञान था। आज से बहुत अधिक था परन्तु हमारे ऋषियों ने देखा कि यह सारा विज्ञान केवल दुःख की ओर ले जाता है उस सुख को उत्पन्न नहीं करता जिस की मनुष्य खोज में है। इसलिए उन्होंने ज्ञान के झुकाव को बदल दिया, प्रकृति के स्थान पर परमात्मा की ओर आ गये। अब भी यही होगा। विज्ञान ने अभी इतनी उन्नति नहीं की जितनी प्राचीन काल में की थी। अभी और उन्नति होगी तब विनाश आयेगा। विज्ञान का संसार भी इस दिल्ली की भाँति है। बार बार बनती है, बार बार उजड़ जाती हैं। अब यह फिर बन रही है, दिल्ली भी बन रही है। एक न एक दिन उजड़ेगी अवश्य।

परन्तु मैं कह रहा था कि वेद में विज्ञान भी है। पूना में भाषण देते हुए महर्षि ने कहा था कि वेद के आधार पर मैं हवाई जहाज बना सकता हूँ परन्तु एक अत्यन्त आवश्यक कार्य मेरे समक्ष है इसलिये 'वेद के मुख्य अर्थ को आपके सामने रक्खूँगा।' और यह मुख्य अर्थ क्या है? यह कि इस शरीर से प्रभु का मिलन किस प्रकार हो। इस उद्देश्य को किस प्रकार पूरा किया जाये। जिस के लिये यह शरीर मिला। आत्म दर्शन कैसे हो।

बहुत देर की बात है। प्रजापति ने एक बार घोषणा की कि यह अजर, अमर, पाप से रहित आत्मा ही जानने और खोजने की वस्तु है जो इसको जान लेता है वह सभी लोकों और सभी इच्छाओं को पूर्ण कर लेता हैं। इस घोषणा को देव लोगों ने सुना, असुर लोगों ने भी सुना। दोनों ने कहा जिस आत्मा को जान लेने से सभी लोक प्राप्त होते हैं, सभी इच्छायें, उसे जानना चाहिये अवश्य।"

देव और असुर आकाश में नहीं रहते। किसी विशेष समय से भी उनका सम्बन्ध नहीं जो लोग दूसरों को बचाने के लिए अपने प्राण तक देने के लिये तैयार रहते हैं वे देव हैं और जो अपने आप को बचाने के लिए दूसरों के प्राण तक ले लेते हैं वे असुर हैं।

हाँ देव और असुर दोनों ने सोचा कि आत्मा को जानना चाहिए। देवताओं ने इन्द्र को अपना प्रतिनिधि बनाया असुरों ने विरोचन को। दोनों को प्रजापति के पास भेजा गया कि, "जाओ पूछ कर आओ कि यह आत्मा क्या है ?" दोनों प्रजापति के पास पहुँचें। दोनों ने प्रणाम करके कहा, "हम, पूछने आये हैं कि आत्मा क्या है ?" प्रजापति ने मुस्कराते हुए कहा, "पूछने आये हो तो मैं बताऊँगा परन्तु पहले तुम्हें ब्रह्मचर्य धारण करके ३२ वर्ष मेरे आश्रम में रहना होगा।" दोनों ने ऐसा ही किया। ३२ वर्ष व्यतीत हो गये। दोनों ने फिर पूछा, "आत्मा क्या है ?" प्रजापति ने कहा, "शीशा लाओ या कटोरे में पानी भर लाओ। उस में देखो। क्या देखते हो उस में।"

दोनों ने पानी में देखा। अपने अपने शरीर की छाया को पानी में देखा। दोनों प्रसन्न हुए। विरोचन ने समझा कि शरीर

ही आत्मा है । असुरों के पास जाकर बोला, "यह शरीर ही आत्मा है । इसे खिलाओ, पिलाओ, सजाओ, कपड़े पहनाओ । इसके लिए मकान बनाओ मोटरें बनाओ, वायुयान बनाओ । इसी की पूजा करो । यही सब कुछ है ।" परन्तु इन्द्र ने सोचा, प्रजापति तो आत्मा को अजर अमर अभय कहते हैं । यह शरीर तो बूढ़ा भी होता है, इसे डर भी लगता है फिर यह आत्मा कैसे हो सकता है ? वह फिर प्रजापति के पास गये बोले, "मेरी तसल्ली नहीं हुई । यह शरीर आत्मा नहीं हो सकता । कृपा करके बताइये कि आत्मा क्या है ?" प्रजापति ने मुस्करा कर उसकी ओर देखा, बोले, "विरोचन चला गया । उसकी असुर बुद्धि है । वह वास्तविकता को कभी जानेगा नहीं । परन्तु यदि तुम आत्मा को जानना चाहते हो तो ३२ वर्ष और मेरे आश्रम में ब्रह्मचर्य धारण करके रहना होगा"

आजकल के किसी जिज्ञासु से ऐसी बात कहो तो वह शायद सोचे कि गुरू पागल हो गया है । ३२ वर्ष पहले व्यतीत हो गये । ३२ वर्ष और रखना चाहता है ।

परन्तु इन्द्र ने फिर से आश्रम में रहना प्रारम्भ कर दिया फिर ३२ वर्ष बीत गये । प्रजापति ने पूरा रहस्य फिर भी नहीं बताया । और ३२ वर्ष रहने के लिये कहा । तब चौथी बार ३२ वर्ष रहने को । तब जाकर बताया कि आत्मा क्या है । तब इन्द्र को पता लगा कि शरीर आत्मा नहीं है । जो शरीर की पूजा करता है वह विनाश की पूजा करता है ।

इन्द्र देवता था, विरोचन असुर । असुर लोगों ने शरीर की पूजा शुरू की, देव लोगों ने आत्म दर्शन किया । आज भी यह बात होती है । असुर लोग केवल शरीर की बात सोचते हैं । ये पांच

साला प्लान, ये निर्माण योजनायें, यह विज्ञान की उन्नति सब उत्तम बातें हैं परन्तु ये हैं केवल शरीर की पूजा के लिए। उस आत्मा के साथ उन का कोई सम्बन्ध नहीं जो अजर, अमर और अभय है। जो कभी नष्ट नहीं होता और जिसके कारण यह सब कुछ हो रहा है।

कई व्यक्ति आपको ऐसे मिलेंगे जिनके नेत्र नहीं, कान नहीं, जिह्वा नहीं फिर भी वे सारा काम करते हैं ? यह प्रश्न एक बार महाराज जनक के मन में उत्पन्न हुआ। प्रतिदिन उनके यहाँ सत्संग होता था। बड़े बड़े ऋषि और योगी उस में आते थे। ऐसे ही एक सत्संग में उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा, "महाराज ! हम किस ज्योति से देखते हैं ?"

याज्ञवल्क्य बोले, "सूर्य की ज्योति से।"

जनक ने पूछा, "जब सूर्य न हो तब ?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "चन्द्रमा की ज्योति से।"

जनक ने पूछा, "जब चन्द्रमा भी न हो, बादल आ गये हों, या अंधेरी रात्रि हो तब ?"

याज्ञवल्क्य बोले, "तब अग्नि की ज्योति से।"

जनक ने कहा, "कभी कभी अग्नि भी नहीं होती। घना जंगल रात्रि का समय प्रत्येक दिशा में अंधकार। मार्ग भ्रष्ट पथिक पुकार कर पूछता है कोई है तो उत्तर दो कि मैं किधर जाऊँ। दूर खड़ा एक व्यक्ति कहता है इधर आ जाओ। उधर ही वह चल पड़ता है। तब वह किस ज्योति से देखता है ?"

"जनक बोले, "तब वह वाणी की ज्योति से देखता है।"

जनक बोले, "और जब वाणी भी न हो आवाज भी सुनाई न दे, तब वह किस ज्योति से देखता है ?

याज्ञवल्वय बोले, "राजन् ! तब वह आत्मा की ज्योति से देखता है। उसी के कारण प्रत्येक वस्तु प्रकाशित हैं ?"

जनक ने पूछा "यह आत्मा क्या है ?"

याज्ञवल्क्य बोले—

योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदयन्तर्ज्योतिः पुरुषः ।

"यह जो विशेष ज्ञान से भरपूर, जीवन से और जागृति से भरपूर है। जो हृदय में जीवन है अन्तःकरण में ज्योति है और सारे शरीर में विद्यमान है, यही वह आत्मा है।"

कई लोग पूछते हैं कि आत्मा कहाँ रहता है ? उनके प्रश्न का उत्तर महर्षि याज्ञवल्क्य के इस उपदेश में विद्यमान है। वैसे यदि आप जानना चाहते हों कि इस समय आपका आत्मा शरीर के किस भाग में प्रधान रूप से है तो सुनिये कि इस समय आप में से प्रत्येक का आत्मा दाईं आँख में बैठ कर संसार का तमाशा देख रहा है। जब तक आप जागते रहेंगे तब तक वह वहीं रहेगा जब आप सो जायेंगे तो यह आत्मा प्रधान रूप से आपके गले में जाकर बैठ जायेगा तब आप स्वप्न देखेंगे। आपकी ज्ञान और कर्मेन्द्रियाँ सो जायेंगी। मन, बुद्धि अहंकार के साथ आत्मा जागता रहेगा सूक्ष्म कर्म इन्द्रियों और सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों से स्वप्नों का संसार निर्माण करता रहेगा। परन्तु जब आप गाढ़ निन्द्रा में (ऐसी नींद में जहाँ स्वप्न भी नहीं) चले जायेंगे तो यह आत्मा गले से हट कर हृदय में चला जायेगा। तब मन बुद्धि अहंकार, सूक्ष्मज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ सब सो जायेंगी, केवल प्राण और आत्मा जागते

रहते हैं। तब आदमी अपने रूपको देखता है उसमें आनन्द रूप से बैठे हुए परब्रह्म को। जागने पर व्यक्ति कहता है बहुत आनन्द आया।" परन्तु जब गाढ़ निन्द्रा थी, आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था, तब यह आनन्द कैसे आया? इसका सीधा सा उत्तर यह है कि आत्मा ने आत्मा के आनन्द को पाया, उस आनन्द को प्राप्त किया जो परब्रह्म के रूप में उसमें छिपा बैठा है। यह है भगवान् की कृपा। ऐसा प्रबन्ध उसने किया है कि पापी से पापी व्यक्ति भी २४ घण्टे में कम से कम एक बार आत्मा के आनन्द को प्राप्त कर सके। हृदय में पुरीतति नाम की एक नाड़ी है जैसे कि गाढ़ निद्रा आरम्भ होती है, वैसे ही आत्मा इस नाड़ी से होकर ब्रह्मलोक में पहुँच जाता है। परन्तु यह ब्रह्मलोक कहीं बाहर नहीं इस शरीर में है। प्रत्येक वस्तु इसमें विद्यमान है। हर हर करती हुई गंगा भागती हुई जमुना, आकाश को छूता हुआ हिमालय, सोने की भाँति चमकता समीर, गहरे सागर, विशाल मैदान, लाखों नदियाँ करोड़ों सूर्य, अरबों पृथिवियाँ, सब कुछ आप के भीतर है, ब्रह्मलोक भी वहीं है।

जनक महाराज ने पूछा, "महर्षि! यदि यह सब कुछ हमारे भीतर है, तो हमें पता क्यों नहीं लगता।"

महर्षि बोले, "जिस प्रकार धातुओं की विद्या को जानने वाला जानता है कि पृथिवी में कहां कौनसी धातु है, निपुण इञ्जीनियर जानता है, कि किस स्थान पर खोदने से कितनी दूरी पर पानी है; आत्मा का ज्ञान रखने वाला, इन बातों को जानता है, साधारण लोग इसे नहीं जानते। साधारण लोग यह भी नहीं जानते कि पृथिवी के भीतर कहाँ पर कौन सी धातु है, कहां पर पानी है।

सो भाई मेरे ! है सब कुछ, जानने वाला जानता है। मैं जो आ जाऊँ आपके पास एक वैद्य का रूप बना कर और आपकी नाड़ी पर हाथ रख कर बैठ जाऊँ तो मुझे क्या पता लगेगा। यह तो जानने वाला जानेगा।

देखो, अब मैंने बता दिया, अब यह मत कहना कि हम आत्मा के आनन्द को नहीं जानते। प्रतिदिन आप उस आनन्द को देखते हैं, प्रतिदिन आप ब्रह्मलोक में जाते हैं, प्रकृति के साथ आपका जो सम्बन्ध हैं, वह आपको प्रतिदिन इस जञ्जाल में वापिस ले आता है। ज्यूँ ज्यूँ यह जंजाल ढीला होगा और प्रकृति का नाता कम होगा त्यूँ त्यूँ हम ब्रह्म के निकट होते जायेंगे।

परन्तु प्रकृति के इस नाते को समाप्त करना सरल तो नहीं आत्मा प्रभु का दर्शन पाने के लिये तरसता है, पुकार कर कहता है :—

उत स्वया तन्वा सं वदे तत्कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृलीकं सुमना अभिख्यम् ।।

ऋ० ७-८६-२

प्यारे सुन्दर प्रभु ! वह दिन कब चढ़ेगा जब मैं तेरे दर्शन पाऊँगा ! कब तू मेरी भेंट स्वीकार करेगा। प्यारे सुन्दर प्रभो ! वह दिन कब चढ़ेगा, जब मैं तेरा अन्तरङ्ग बनूँगा। और वह शुभ घड़ी कब आयेगी जब मैं अपने आत्मा के साथ तुझ से बातचीत करूँगा।

यह ऋग्वेद के सातवें मण्डल में ८६वें सूक्त का दूसरा मन्त्र है परन्तु यह सूक्त तो भक्त की पुकार से भरा पड़ा है। दूसरे मन्त्र में इस प्रकार पुकारने के पश्चात् तीसरे मन्त्र में भक्त कहता है:—

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ।।
(ऋ० ७।८६।३)

हे प्रभो ! हे स्वामिन् ! तू तो मेरा वरुण है। जैसे पत्नी पति को वर लेती है और फिर उसके लिये पति के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं रहता, वैसे ही मैंने तुझे वर लिया, तेरे अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये। परन्तु इतना तो बताओ देवता मैंने वह कौनसा पाप किया है, जिसके कारण मैं यहां बन्धा पड़ा हूँ। देखो, प्रियतम ! मैं जिज्ञासु बन कर तेरे पास आया हूँ। पूछने आया हूँ वरुण देव ! क्योंकि जिन विद्वानों से मैंने पूछा, उन्होंने यही कहा कि वह परम ब्रह्म ही तुझ पर कृपा नहीं करता, वह ही तुझ से रूठ गया है। रूठो नहीं महाराज ! मुझे बताओ कि मेरे किस पाप, अपराध ने तुम्हारी कृपा को रोक दिया है।"

परन्तु वरुण ने उत्तर तो नहीं दिया। भक्त को बेचैनी और भी बढ़ गई व्याकुल होकर भक्त ने अगले मन्त्र में पुकारा :—

किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।
प्रतंन्मे वोचो दूलभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ।।
।। ऋ० ७ । ८६ । ४ ।।

"बोलो मेरे प्रियतम ! मेरे मन मोहन ! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, मैं तुम्हारा मित्र हूँ, मैं तुम्हारा अपना हूँ। कृपा करके बोलो कि ऐसा कौनसा अपराध मैंने कर दिया है कि तुम मेरे जैसे प्यार भरे भक्त को भी दण्ड देना चाहते हो।

अरे ओ बहुत कठिनता से मिलने वाले ! रूठ कर दूर बैठे हुए, दूर दूर तक प्रत्येक स्थान पर ज्योति देने वाले। मेरे प्यारे, कृपा

करके बोलो, और बताओ कि पाप से अलग होकर, भक्ति से भरपूर होकर, शीघ्र से शीघ्र मैं तुम्हारे पास किस प्रकार पहुंच पाऊंगा। बोलो, प्रभो ! चुप न रहो। मै तुम्हें प्यार करता हूँ, मैं तुम्हारा अपना हूँ।"

यह ऋग्वेद के इस सूक्त का चौथा मन्त्र है। पांचवें मन्त्र में भक्त और भी दुःखो होकर कहता है:—

अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः।
अव राजन् पशु तृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वशिष्ठम् ॥

॥ ऋ० ६ । ८६ । ५ ॥

"ओ मेरे राजा ! मेरे ज्योति से पूर्ण स्वामिन् ! जिन लोगों ने मुझे पाला वे शायद ठीक शिक्षा न दे पाये मुझे, उसके कारण कुछ अपराध हो गये। और मैं भी शायद तेरे उपदेशों को भूल कर कुछ त्रुटियां कर बैठा। परन्तु देख। हो गया अपराध, अब क्षमा कर दे। पशुओं को चुराने वाले चोरी करने से पूर्व उन्हें घास खिलाते हैं। देखने वाले उन्हें बांध लेते हैं। मैं भी इन इन्द्रियों को घास खिला रहा था। बांध लिया गया। हो गया अपराध मुझ से परन्तु मैं तुझे प्यार तो करता हूँ। मेरा हृदय तो तुझ में रहता है हे विश्व देव ! प्यार भरा स्वामी जिस प्रकार बछड़े की रस्सी खोल देता है, इसी प्रकार प्रकृति के इस बन्धन को खोल दे, जो रस्सी की भान्ति मुझे जकड़े बैठी है। मुझ से अपराध हो गया प्रियतम, मैं क्षमा मांगता हूँ। मेरे अपराधों को मुझ से दूर कर दे।"

कैसी पुकार है यह कितना दर्द है इनमें कितनी करुणा ! सच्चा प्यार जब उत्पन्न होता है, तब भक्त इसी प्रकार पुकारता है। तब वह देर नहीं देखता प्रियतम की चुप्पो नहीं देखता। सिर झुका

देता है यार की चौखट पर और साहस से कहता है:—

यदि नाथ का नाम दयानिधि है, तो दया भी करेंगे कभी न कभी ।
जब तारण हार कहावत हैं, भव पार करेंगे कभी न कभी ॥

इस प्रकार वह कहता है, हो गया न अपराध, अब क्षमा कर दो। तब अपने प्यारे प्रभु से रो कर कहता है:—

जे मैं भुल्ल विगाड़या, मैला करीं न चित्त ।
साहिब गौरान लोड़िये नफर बिगाड़े वित्त ॥

हो गया अपराध मुझ से, गिर पड़ा मैं, पतित हो गया। परन्तु तू तो अपने को मत भूल। तू पतित पावन है मैं यदि गिरता नहीं तो तू उठाता कैसे ? तेरा यह इम्पलाएमेंट एक्सचैंज चलता है न। परन्तु मैं यदि बेकार न बनूं तो तू नौकरी किसे दिलायेगा और फिर भक्त सूरदास ने कितना सुन्दर गीत गाया:—

प्रभु जी मेरे अवगुण चित्त न धरो ।
सम दर्शी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो ।
एक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो ।
पारस गुण अवगुण नहीं चितवत कंचन करत खरो ।
इक नदिया इक नार कहावत मैलो ही नीर भरो ।
जब मिलि एक वरण भये सुरसरी नाम परो ।
यह माया भ्रम जाल कहाबत सूरश्याम झिगरो ।
अब की बेर मोहे पार उतारो नहिं प्रण जात टरो ।
प्रभु जी मेरे अवगुण चित्त न धरो ॥

यह है पुकार। देखो राजा गलती हो गई हम से। अब क्षमा कर दो। तुम तो समदर्शी हो, पतितपावन हो। अपने नाम की लाज रक्खो। दर्शन दे दो। अपने हृदय से लगा लो।

और देखो, जब इस प्रकार पुकारता है भक्त, तब वह हंसता है अवश्य तब वह आवाज़ देकर कहता है:—

रोशन हैं मेरे जलवे हर एक शै में लेकिन।
है चश्म कोर§ तेरी क्या है कसूर मेरा ।।

हाँ प्यार से पुकारने पर वह क्षमा कर देता है और वही क्षमा कर सकता है, दूसरा नहीं—

न कहीं जहां में अमां मिली, जो अमां मिली तो कहां मिली।
मेरे जुर्म हाये स्याह को' तेरे अफ्व बन्दा नवाज में ।।

पंजाब के प्रसिद्ध उर्दू कवि स्वर्गीय पं० हरीचन्द अख्तर ने एक बार कहा था:—

जो ठोकरें ही नहीं खाते, वह सब कुछ हैं मगर वाइज।
वह जिन को दस्ते रहमत खुद सम्भाले और होते हैं ।।

हाँ सच्चे हृदय से पुकारो। पश्चात्ताप करो। सच्चे प्यार को हृदय में जगा लो तो वह कृपा करता है। अवश्य !

इस तरफ रुख❋ तेरी रहमत+ का जो देखा दमे हश्र।
मिल गए दौड़ के जाहिद× भी गुनह गारों में ।।

हां वह क्षमा करता है अवश्य। दर्शन भी देता है।

न कोई परदा है उसके दर पर, न रूये रोशन नकाब में है।
तू आप अपनी खुदी से ए दिल, हिजाब में था हिजाब में है ।।

तब हर ओर वह ही वह दिखाई देता है। घास के हर तिनके में, बाग के हर फूल में, खेत के हर दाने में, नदी की हर लहर में, हवा के हर झोंके में, बाहर भीतर, प्रत्येक स्थान पर, प्रति ओर, वह ही वह रह जाता है अपना आप कहीं नहीं रहता—

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ।।

परन्तु अब समय हो गया इसलिये शेष कल—

।। ओ३म् तत्सत् ।।

§अंधी
❋झुकाओ +दया ×महात्मा

तीसरा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

त्रुटियाँ किस से नहीं होतीं। चारों ओर वह ठगनी माया खड़ी है, मन मोहन रूप बनाये, धोखे का संसार बसाये हुए। पग पग पर ठोकर, पग पग पर अंधेरा, गिर जाता है। कभी कभी मनुष्य:—

दरमियाने कहरे दरिया तख्ता बन्दम् कर दई।
बाजमि गोई कि दामन तरमकुन होशियार बाश ॥

इस ठगनी का जाल हर ओर है। बाढ़ वाली नदी के समान है यह माया। इन्द्रियों के तख्ते पर बंधा आत्मा इस नदी में बहा जाता है तब कोई बिरला ही ऐसा होता है जिस का दामन (उप-वस्त्र) न भीगे। परन्तु जब इस ठगनी का असली रूप उसे समझ आता है, जब प्रभु का प्रेम उस के हृदय में जाग्रत होता है और जब पश्चात्ताप के प्रकाश में अपनी भूल को वह देखता है तो ऋग्-वेद के शब्दों में पुकार कर कहता है, 'अच्छा महाराज ! हो गया मुझ से अपराध, बहुत बड़ा अपराध कर दिया मैंने, परन्तु अब कृपा करो, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। मेरे अपराधों को न देखो। क्षमा कर दो उन्हें। अपने नाम की लाज रक्खो, मेरे प्यार की लाज रक्खो:—

सुखद चरण तेरे प्रभु, मेरा नत यह माथ।
शरण पड़ेकी लाज को, राखो दीनानाथ ॥

जैसे चोर चोरी करके पश्चाताप करता हो, बच्चा अपराध

कर के मां के समक्ष आ गया हो, सिर झुका खड़ा हो और कहता हो, "मां ! अपराध हो गया है मुझ से, तूं मां है, मैं अबोध बालक क्षमा कर दे मुझे, इस कीचड़ को दूर कर दे मुझ से, फिर से अपनी गोदी में बिठाले ।" इसी प्रकार प्रभु का भक्त व्याकुल होकर पुकारता है:—

सब जग भुल्लन हार है, इक अभुल्ल करतार ।

(संसार में प्रत्येक मनुष्य से गलती होती है, त्रुटियों से रहित तो केवल एक परमात्मा है)

अरे भाई बात तो सीधी सी है । यदि भूल न होती तो मनुष्य का यह चोला ही क्यों मिलता ? कुछ अच्छे कर्म थे, कुछ बुरे । दोनों के कारण यह चोला मिला कि पहले जो गलतियां की उन्हें सुधार लो ।

यजुर्वेद के बीसवें अध्याय में तीन मन्त्र आते हैं, जिनमें ऐसी ही पुकार की गई । सुनिये ये मन्त्र:—

यदि दिवा यदि नक्तमेनाꣳसि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥
(यजु० २०।१५)

हे देव रूप भगवान् ! हे परम बल महा शक्ति ! हम पर कृपा कर । तीव्र वायु जिस प्रकार कूड़े करकट को उठा कर दूर फैंक देता है, उसी प्रकार हे प्रभो ! हमारे प्रत्येक उस पाप को नष्ट कर दे जो हमने दिन के समय किया या रात्रि के समय, अंधकार में किया या प्रकाश में । और फिर:—

यदि जाग्रद्यदि स्वप्नऽ एनाꣳसि चकृमावयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥
(यजु० २०।१६)

"हे प्रभो ! हे सूर्य की भांति चमकने वाले ! प्रचण्ड मार्तण्ड की किरणें जिस प्रकार प्रत्येक कीटाणु को नष्ट कर देती हैं उसी प्रकार हे कृपा निधान, हमारे उन पापों को नष्ट करो जो हमने सोते में या जागते में कर दिये, जो जाने या अनजाने हो गये।"
और तबः—

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। (यजु० २०। १५)
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि॥

"ग्राम में, जंगल में, या सभा में, जिन की आज्ञा पालन करनी चाहिए थी उन स्वामियों के सम्बन्ध में, जिन का रक्षा करनी चाहिये थी उन सेवकों के सम्बन्ध में, किसी भी व्यक्ति को उसके धर्म से गिराने के सम्बन्ध में, या किसी भी बात में, यदि इन इन्द्रियों से, नाक, कान, मुख, हाथ पाँव आदि से, हम ने कोई भी पाप किया हो। पतित पावन ! तू कृपा करके इन पापों को समाप्त कर दे।"

यह आंख इस लिए मिली कि ईश्वर की महिमा को देखे, कान इसलिए मिले कि भक्ति के गीत सुने। हृदय इसलिए मिला कि इस में प्रभु का प्रेम जगाया जाये परन्तु कभी कभी इन का उल्टा प्रयोग भी तो होता है ; आंख भटक जाती है। कान भटक जाते हैं, हृदय भटक जाता है। हो जाता है अपराध। तब भक्त हाथ जोड़ कर कहता है:—

यन्मे छिद्रं चक्षुषो, हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।
शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥ (यजु० ३६।२)

हे परम विशाल, परम महान्। आँख से, हृदय से, मन से, या किसी भी इन्द्रिय से, यदि मैंने कोई अपराध कर दिया है,

संसार के स्वामिन् तू उसे क्षमा कर। जो भी छिद्र या जो भी त्रुटि उन में आ गई है, उसे पूरा कर दे स्वामिन्। हमारे लिए शान्ति को देने वाला बन।

ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के तेतीसवें सूक्त के सातवे मन्त्र में भी ऐसा ही प्रार्थना की गई है:—

क्वस्य ते रुद्र मृलयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नुमा वृषभ चक्षमीथाः।।

हे मेरे प्रभो! दुखों को दूर करने वाले! सुखों की वृष्टि करने वाले! तेरा यह शान्ति देने वाला हाथ कहाँ है। जो दुखों और कष्टों से अशान्त व्यक्ति को इस प्रकार शान्त कर देता है स्वामिन्! जैसे धूप में जले हुए व्यक्ति को शीतल जल शान्त कर देता है। तेरी वह कृपा कहाँ है, जो सब कष्टों को दूर कर देती है। हे महाबली! हे सुखदायक! मुझ पर कृपा कर, मेरे अपराधों को सदा क्षमा कर!

स्मरण रक्खो, अपराध हो जाते हैं तो क्षमा भी हो जाते हैं, परन्तु होते हैं उस समय जब पश्चात्ताप की सच्ची भावना मन में जाग उठे। यह नहीं कि:—

रात को या सुबह को तोबा कर ली।
रिन्द के रिन्द रहे, हाथ से जन्नत न गई।।

अपराध हो गया तो पाश्चाताप करो। निश्चय करो भविष्य में नहीं करेंगे। अपराध हो गया तो निराश न हो जाओ। निराश होने की कोई बात है नहीं और फिर यदि हम ईश्वर को खोजते हैं तो किस लिए? वैद्य को कोई बीमार व्यक्ति ढूण्ढता है। धोबी को वह ढूण्ढता है जिस के वस्त्र मैले हो गये हों। दर्जी को वह खोजता

है, जिस का कुर्ता फट गया हो। यदि इन में से कोई भी बात नहीं तो फिर वैद्य, दर्जी या धोबी की आवश्यकता क्या है? ईश्वर को भी इसलिए खोजते हैं कि अपराधों की मैल दूर हो जाये। परन्तु इससे पूर्व कि यह मैल दूर हो आवश्यक है कि पश्चात्ताप की भावना उत्पन्न की जाये। इस भावना के उत्पन्न होते ही मन में प्रकाश होने लगता है तब भक्त पुकार कर कहता है कि "प्रभो! तेरे द्वार पर आ पड़ा हूँ, अब पड़ा रहने दो मां! हटाओ नहीं यहां से, धुल जाने दो मेरे पाप, हट जाने दो यह अन्धकार:—

तेरे दर को छोड़ कर हम बे नवा जायें कहाँ।
या बता दे और कोई अपने जैसा घर हमें॥

दूसरा तो कोई ठिकाना भी नहीं, तुम शरण न दोगे, तो फिर कौन देगा? तुम से भीख न मिलेगी तो कहाँ से मिलेगी? खोल दो पट, कृपा कर दो अब, मेरे अपराधों को न देख, मेरे आँसुओं को देख।

और सुनिये यह आँसुओं की बात भी विचित्र है। कई लोग आँसुओं से घबराते हैं, बुरा भी मानते हैं, परन्तु यह घबराने या बुरा मानने की बात है नहीं। प्रभु के द्वार पर आकर रोने से मन का मैल दूर होता है इसलिये रोना आवे तो रोओ अवश्य। महर्षि वेद व्यास ने लिखा है, यदि "सत्संग में बैठा हुआ कोई साधक अपने कर्म को याद करके आँसू बहाने लगे तो समझो कि उसके अच्छे दिन निकट आ गये।" इसलिये घबराओ नहीं, पुकारो उस माँ को। आँसुओं से भीगी हुई आवाज में उस प्रियतम से कहा:—

'अरे ओ परम आनन्द! परम शान्ति! परम ज्योति! परम सुख! कब आयेगा वह दिन जब तू सामने आकर दर्शन देगा?"

आहों की भाषा में कहो कि कृपा कर दो प्रभु अब प्रतीक्षा नहीं होती:—

आओ कि दूरी तुम्हारी अब सही जाती नहीं ।
वेदना विरह बढ़ी इतनी कही जाती नहीं ।।
माना कि तेरी दीद के काबिल नहीं हूँ मैं ।
तू मेरा शौक देख, मेरा इन्तजार देख ।।

हो गया अपराध, क्षमा करदो, तुम तो पतित पावन हो, दीनानाथ हो, करुणा का सागर हो । क्या अपने उस भक्त पर कृपा नहीं करोगे जिसका तुम्हारे अतिरिक्त कोई नहीं है:—

तुम्हारी दीद ही मकसद रही जिस की बिसारत* का ।
वह चश्म मुन्तजर पथरा गई, क्या तुम न आओगे ।।

नहीं प्रतीक्षा करने वाले नेत्र पत्थराते नहीं, प्रतीक्षा में भी अपना एक आनन्द है:—

वसल में हिजर का गम, हिजर में मिलने की खुशी ।
कौन कहता है जुदाई से वसाल अच्छा है ।।

भगवान् राम एक रात अयोध्या में थे और सारी अयोध्या रो रही थी क्यों कि राम को बनवास की आज्ञा हो चुकी थी । तब एक और रात राम अयोध्या में नहीं थे और सारी अयोध्या खुश थी क्योंकि दूसरे दिन राम बनवास से वापस आने वाले थे । अयोध्या प्रतीक्षा में थी, अशान्त थी उस प्रतीक्षा में, परन्तु इस अशान्ति में विचित्र आनन्द था ।

यह वियोग अद्भुत औषधि है इसमें तड़पता है अवश्य परन्तु यह तड़पना ही उस प्रकाश के लिये द्वार खोल देता है जो ईश्वर की ओर ले जाता है ।

---

*दृष्टि

विरह जगावे दर्द को, दर्द जगावे जीव ।
जीव जगावे सुरत को, पञ्च पुकारे पीव ।।

तब पांचों प्राण पिया पिया पुकारते हैं। इस पुकार में जो दर्द युक्त आनन्द है उसे वही लोग अनुभव करते हैं, जिन्हें वियोग का रोग लग जाये। उर्दू के एक कवि ने कहा है:—

यारब* दुआ ए वसल+ न हरगिज कबूल× हो।
फिर दिल में क्या रहेगा जो हसरत निकल गई ।।

तब मिलने की इच्छा होने पर भी कोई इच्छा नहीं रहती। सुख और दुःख बराबर हो जाते हैं। मस्ती में प्रभु का भक्त कहता है :—

मेरी चाही करन की जो है तुम्हरी चाह।
तो तुम्हरी चाही करूँ यह है मेरी चाह ।।
मेरी चाही हो वही, जो है तुम्हरी चाह।
तुम्हरी अन चाही कभी मत हो मेरी चाह ।।
तुम्हरी चाही में प्रभु, है मेरा कल्याण।
मेरी चाही मत करो, मैं मूर्ख नादान ।।

तब मनुष्य अपनी इच्छा छोड़ देता है, प्रभु की इच्छा ही उसकी इच्छा बन जाती है। महर्षि दयानन्द अन्तिम सांस ले रहे थे। सारे शरीर में दर्द था। लोग अशान्त थे कि अब क्या होगा। उनके मुख मण्डलों पर उदासी थी आँखों में आँसू। महर्षि ने मुस्कराते हुए कहा, "कौन सी तिथि है आज? कौन सी घड़ी इस समय? पास खड़े एक व्यक्ति ने बताया कि तिथि कौन सी है, समय क्या हुआ है? महर्षि बोले, तो अब खिड़कियाँ खोल

*हे प्रभु   +मिलाप की याचना   ×स्वीकार

दो, बाहर की वायु आने दो, पंछी का मार्ग न रोको, मेरे पीछे आ जाओ सब लोग, गायत्री मन्त्र का जाप करो।" और जब सब लोग जाप कर रहे थे तो महर्षि ने अंतिम सांस लेते हुए कहा, "तेरी इच्छा पूर्ण हो प्रभो !" इसके अतिरिक्त दूसरी कोई प्रार्थना नहीं की, कोई दूसरी याचना नहीं की:—

राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।
यां यूं भी वाह वा है और यूँ भी वाह वा है ॥

परमहंस रामकृष्ण बीमार थे। गले में कैंसर हो गया था। दर्द से तड़प रहे थे। कलकत्ता के प्रसिद्ध डाक्टर श्री चक्रवर्ती उनके दर्शन को गये। देखा कि परमहंस बहुत कष्ट में हैं। यह भी देखा कि मेडिकल विज्ञान उनकी सहायता नहीं कर सकता। उनके पास बैठ कर बोले, "योगिराज ! विज्ञान इस रोग में विवश है परन्तु आप की अपनी शक्ति इस रोग को दूर कर सकती है, अपने योग बल से एक बार कहिए कि इस कष्ट का अन्त हो जाए।" परमहंस मुस्करा कर बोले, "मै तो समझता था आप बहुत विद्वान् हैं, परन्तु यह बात तो विद्वानों जैसी नहीं। अस्थि मांस के इस शरीर के लिए मैं अपनी योग शक्ति और आत्म बल का प्रयोग करूँ तो मुझे बुद्धिमान् कौन कहेगा ?" डाक्टर चक्रवर्ती हार कर बोले, स्वयं नहीं करते तो माँ से कह दीजिए कि वह इस रोग को ठीक कर दे।" परमहंस भगवती की ओर संकेत करके बोले, "वह मेरी मां है, मुझ से बुद्धिमती है, अधिक जानती है, उसे पता है कि मेरा कल्याण किस में है, वही वह कर रही है, फिर मैं प्रार्थना क्या करूँ।"

रणवीर को फाँसी के दण्ड की आज्ञा हुई। स्पेशल जज ने

अपना निर्णय सुनाते हुए कहा, "इसे गले में रस्सी डालकर तब तक लटकाए रक्खा जाये जब तक प्राण न निकल जायें।" एक कोलाहल मच गया हर ओर। लोग सहानुभूति के लिये मेरे पास आने लगे रोनी सूरत बनाकर, उदास चेहरे लेकर, कभी कभी आँखों में आँसू भर कर वे मेरे पास आते। मुझे हँसता हुआ देखते, तो आश्चर्य से कहते, "तेरी छाती में हृदय है या पत्थर? तेरे पुत्र को फाँसी की आज्ञा हो गई है, उसकी मृत्यु उस के समक्ष खड़ी है और तू अब भी हँसता है।" तब मैं गम्भीरता से कहता, "मुझे अपने ईश्वर पर विश्वास है, यदि मेरा कल्याण इस बात में है कि मेरा रणवीर मेरे पास वापस आ जाये तो संसार की कोई शक्ति उसे मार नहीं सकती। और यदि मेरा कल्याण इस बात में है कि वह मेरे पास न आये तो फिर संसार की कोई शक्ति उसे बचा नहीं सकती, तब मैं रोऊँ किस लिए?"

यह है वह अवस्था जो विश्वास से उत्पन्न होती है और यह विश्वास तब उत्पन्न होता है जब प्रभु के लिए प्रेम जाग उठे। उस समय प्रभु यदि भक्त की पुकार को न भी सुने तो भक्त निराश नहीं होता, साहस के साथ कहता है—

आये हैं तेरे दर पै तो कुछ कर के हटेंगे।
या वसल❀ ही होगा या फिर मर के उठेंगे।।

जिनके हृदय में उस प्रेम की अग्नि जाग उठती है, उन्हें वियोग की आग भी शीतल लगने लगती है, हर समय उसी का चिन्तन वे करते हैं, उसी के गीत गाते हैं उसी के लिए कीर्तन करते हैं, वियोग भी उसके लिये योग बन जाता है।

❀मिलाप

कहते हैं कि मजनूँ एक बार रुग्ण हो गया। रक्त चाप बढ़ा, ज्वर तीव्र होने लगा। वैद्य ने निर्णय किया कि इसका कुछ रक्त निकाल देना चाहिये। जर्राहा को बुलाया गया। मजनूं के हाथ पाँव बाँध दिये गये। जर्राह ने रग काटने के लिए नश्तर निकाला तो मजनूँ ने पूछा, "क्या करते हो ?" वैद्य ने कहा, "नश्तर लगायेंगे तुम्हें।" मजनू ने चिल्ला कर कहा, "ठहरो, ऐसा न करो, नश्तर न लगाओ।" वैद्य बोले, "अरे मजनू तू और नश्तर से भयभीत। लैला लैला कहता हुआ तू जंगलों में घूमता फिरता है, सर्पों से नहीं डरता, शेरों से नहीं डरता, पशुओं से नहीं डरता और इस नश्तर से डरा जाता है ?" मजनूं ने कहा, "मैं नश्तर से नहीं डरता वैद्य जी ! एक और बात से डरता हूँ, मेरे हृदय में, मेरी प्रत्येक श्वास में, और रक्त के प्रत्येक बिन्दु में लैला रहती है यदि उसे यह नश्तर लग गया तो मैं क्या करूँगा। इसलिये रहने दो ज्वर को। मुझे मरना स्वीकार है परन्तु लैला को घायल करना नहीं।

यह है उस व्यक्ति की अवस्था जिस में प्रेम की अग्नि जल उठती है। ईश्वर के लिए यह अग्नि प्रज्वलित होती है तो फिर हर ओर वह ही दिखाई देता है, भक्त प्रत्येक स्थान पर उसको खोजता हैं, उसको पुकारता है।

परन्तु यह ईश्वर और प्रत्येक स्थान की बात कुछ विचित्र सी है, वह दिखाई देता है पर दिखाई नहीं देता:—

बे हजाबी* यह कि हर सूरत में जलवा आशकार।
उस पै घूंघट यह कि सूरत आज तक नादीदा+ है ॥

*बेपरदगी +देखी नहीं

प्रत्येक रूप में वह है फिर भी उसका रूप अदृष्ट। इसलिए कि बाहर, की इन आँखों से वह दिखाई नहीं देता। दर्शन होता है उसका अवश्य, परन्तु दृष्टि वाले को होता है:—

दीदार की तलब के तरीको से बे खबर।
दीदार की तलब है तो पहले निगाह माँग॥

और कौन सी दृष्टि है वह जिससे वह मन मोहन पर आनन्द से भरपूर महा ज्योति दिखाई देती है। इकबाल ने उसके सम्बन्ध में कहा:—

बाहर की आँख से न तमाशा करे कोई।
हो देखना तो दीदाए दिल खोला करे कोई॥

बाहर की आँख से नहीं भीतर की आँख से दिखाई देता है। संसार उसे बाहर की आँख से देखना चाहता है। इस अल्प सी बुद्धि से समझना चाहता है जो मनुष्य को प्राप्त है। इस प्रकार वह दिखाई नहीं देता, समझ भी नहीं आता। वह तो अनन्त है उसे समझेगा कौन?

जहन❀ में जो फिर गया ला इन्तहा+ क्योंकर हुआ।
जो समझ में आ गया फिर वह खुदा क्योंकर हुआ॥

कभी कभी कई लोग कहते हैं कि, "तुमने ईश्वर को देखा है, तो हमें बताओ कि वह कैसा है?" मैं कहता हूँ, "वह परम आनन्द है।" तो वे पूछते हैं, "यह परम आनन्द क्या है?" मैं आश्चर्य के साथ सोचता हूँ कि इन्हें क्या बताऊं। एक व्यक्ति के आँखें नहीं थी उसके पास बैठा दूसरा व्यक्ति गुड़ खा रहा था।

❀मस्तिष्क +असीम

पहले व्यक्ति ने पूछा "क्या खा रहे हो ?"
दूसरे ने कहा, "गुड़"
"गुड़ कैसा होता है ?"
"मीठा"
"मीठा क्या होता है ?"
"अरे भाई जैसे मिश्री मीठी होती है न ?"
"मिश्री कैसी मीठी होती है ?"
"जैसे बताशे होते हैं।"
"बताशे कैसे मीठे होते हैं ?"
"जैसे खाण्ड होती है।"
"खाण्ड कैसी मीठी होती है ?"

दूसरे व्यक्ति ने तंग आकर कहा, "अरे भाई खा कर देख! मीठा खाने से ज्ञात होता है, चखने की वस्तु है वह, बताने की नहीं।

यही दशा ईश्वर की भी है। उसे कोई बता नहीं सकता। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की सात अवस्थाओं को पार कर के जब आदमी समाधि की अवस्था में पहुँचता है तब उसका पता लगता है। इस अवस्था पर पहुँचो, वह परम आनन्द, परम ज्योति स्वरूप तुम्हारे समक्ष आकर खड़ा हो जायेगा। उस आनन्द को मैं बता नहीं सकता। कोई भी नहीं बता सकता। बाहर की आँखों से वह दिखाई नहीं देता, उसका दर्शन होता है अवश्य परन्तु आँखों को बन्द करके होता है:—

उलटी ही चाल चलते हैं दीवानगीए इश्क॰।
आँखों को बन्द करते हैं, दीदार के लिये ॥

॰प्रेम से उन्मत्त

प्रकृति के माया जाल में खोई हुई इन आँखों को बन्द करना आवश्यक है:—

अन्दर के पट तब खुलें, जब बाहर के पट देय।

बाहर का दरवाजा बन्द करोगे तो अन्दर का द्वार खुलेगा और बाहर के पट बन्द करने की भावना उस समय उत्पन्न होती है जब भक्ति जागती है। नारद मुनि ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा, "पूर्ण अनुराग का, ऐसे प्यार का जिस में और किसी का ध्यान न रहे, जिसके उत्पन्न होने के पश्चात् व्यक्ति उसी में मग्न हो जाये, नाम भक्ति है।" भक्ति में ऐसा प्यार है जिससे अधिक प्यार कोई न कर सके। ऐसा विश्वास है जो एक क्षण के लिये भी डगमगाये नहीं, ऐसी निष्काम भावना है जिसमें कोई कपट न हो, धोखा न हो, छल न हो, प्रीतम के अतिरिक्त और किसी की इच्छा न हो। यह मान कर कि वही सब कुछ है, दिन रात उसके संकेत को देखना उसकी आज्ञा पर चलना। वह सिर पर ताज रख दे, कहना कि "तेरी इच्छा", और सिर को धड़ से अलग कर दे तो भी कहना:—

राजी हैं हम उसी में जिस में तेरी रजा है।

यह भक्ति है' वियोग के साथ प्यार का रंग चढ़ जाये तो भक्ति का जन्म होता है। भक्ति और अनुराग में वास्तव में बहुत अन्तर नहीं। गुरु और पिता के लिये जो अनुराग सन्तान के हृदय में उत्पन्न होता है उसे श्रद्धा कहते हैं, पति के लिये पत्नी के हृदय में या पत्नी के लिये पति के हृदय में जो अनुराग उत्पन्न होता है उसे प्रेम कहते हैं। सन्तान के लिये माता पिता के हृदय में जो अनुराग जागता है उसे स्नेह कहते हैं और ईश्वर के लिये मानव

के हृदय में जो अनुराग जन्म लेता है उसे भक्ति कहते हैं। वियोग और प्यार से भरपूर भक्ति की यह भावना जब उत्पन्न होती है, तब मनुष्य की एक विचित्र दशा होती है। उसके हृदय में अशान्ति होती है परन्तु ऐसी जिस को वह स्वयं भी समझ नहीं पाता।

अपनी हालत का कुछ एहसास नहीं है मुझ को।
मैंने औरों से सुना है कि परेशां हूं मैं ॥

ऐसी अवस्था होती है उस की:—

कहते हैं, जीते हैं उम्मीद पै लोग ।
हम को जीने की भी उम्मीद नहीं ॥

जीवन भार प्रतीत होने लगता है। एक विचित्र उदासी सी छा जाती है मनुष्य के मन पर, परन्तु उस उदासी, अशान्ति और घबराहट में भी एक अद्भुत नशा सा रहता है:—

मेरी जिन्दगी पर न मुस्करा, मुझे जिन्दगी का अलम❀ नहीं।
जिसे तेरे गम से हो वास्ता, वह खिजा बहार से कम नहीं ॥

परन्तु भक्ति के उत्पन्न होने से लक्ष्य की प्राप्ति तो नहीं होती, लक्ष्य तो अभी दूर है, अभी तो लक्ष्य पर जाने का मार्ग मिला है:—

अभी तकमीले❀ उलफत+ पर न दिल मगरूर× हो जाये।
यह मंजिल वह है जितनी तै हो उतनी दूर हो जाये ॥

परन्तु घबराओ नहीं, मार्ग मिल जाये तो लक्ष्य मिलता है अवश्य। भक्ति की भावना जाग उठे तो मिलाप होता है अवश्य किस प्रकार होता है ?

ऋग्वेद सातवें मण्डल में ८६ वें सूक्त का छटा मन्त्र बताता है:—

❀ दुख

❀ पूर्ण + प्रेम × अभिमान

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥

पहले इस मन्त्र का साधारण अर्थ सुनिये । हे वरुण देव ! जो मेरा अपना स्वरूप है, यह तो अनर्थ की ओर ले जाने वाला नहीं । फिर क्या आपत्ति आ गई । अहो ! यह मार्ग में पहाड़ बनकर खड़ी 'ध्रुतिः' वासना है । काम वासना और अनेक वासनएं ये बुद्धि को बिगाड़ने वाली नशीली वस्तुएँ शराब आदि । यह क्रोध जो अनुपयुक्त स्थान पर प्रयोग हुए भय को उत्पन्न करता है और यह अतिक्रान्त लोभ और झूठा मोह और भय औरयह ह्रास जो बुद्धि का ह्रास करता है । इन सब के कारण से दूर हो गया मैं, मार्ग से भटक गया । देख, ओ मेरे वरुण देव ! मैं एक छोटा सा प्राणी हूँ, बड़े भाई की भाँति मेरा हाथ पकड़, बचाले मुझे, तू ही बचा सकता है, और कोई बचाने वाला नहीं ।

इस मन्त्र में फिर ईश्वर को वरुण के नाम से पुकारा है । यह बार बार वरुण शब्द क्यों आता है इन मन्त्रों में । इसलिए कि इन में भक्त भगवान् के पास जाने की प्रार्थना कर रहा है । भक्ति की भावना जाग उठी है उसके मन में । इसके लिए ईश्वर से अधिक सुन्दर, अधिक प्रेमी और कोई रहा नहीं । वरुण का अर्थ है वह जिसे सर्व सुन्दर समझ कर, मनमोहक, महान् शक्तिशाली और सुख देने वाला समझ कर वर लिया गया हो, अपना लिया गया हो । अपने उस प्रीतम से पहले भक्त ने पूछा, "कब मिलोगे प्रियतम ।" तब पूछा, "कौन सा अपराध हो गया है मुझ से ? तब कहा, "अच्छा अपराध हो गया तो क्षमा कर दे, दर्शन दे दे, मैं भिक्षा माँगता हूँ तुझ से ।

कभी ऐ हकीकते मुन्तजर नजर आलिबासे मजाज में।
कि हजारों सिजदे तड़प रहे हैं मेरी जबीने न्याज में॥

परन्तु अब वह स्वयं सोचता है कि क्या हो गया है मुझे जो प्रीतम नहीं मिलते। कौन सी दीवारें हैं जो उसके और मेरे मध्य खड़ी हैं? सोचता हुआ कहता है, "मैं तो आत्मा हूँ, आत्मा अनर्थ की ओर नहीं जाता फिर यह क्या कारण है जिसके कारण मुझे प्रभु के दर्शन नहीं होते? कौन है मेरा शत्रु जो उसको मुझसे दूर रक्खे हुए है? कौन सी दीवार है जो उसके और मेरे बीच में खड़ी है।"

यह वासना ही सब से पहली और सब से बड़ी रुकावट है। और फिर बुद्धि को दूषित करने वाली शराब, खुमारी लाने वाले नशे और आगे की वस्तुएँ। परन्तु इन सब की जन्म दात्री तो वासना ही है।

यह वासना क्या है? जो भावना बनकर सूक्ष्म शरीर में इच्छा का रूप धारण करके रहती है, उसे वासना कहते हैं। महर्षि वशिष्ठ ने भी इसको वासना कहा है। योग वशिष्ठ में वे कहते हैं:—

अशेषेण परित्यागो वासनानां य उत्तमः।
मोक्ष इत्युच्यते तदग्न स एव विमलक्रमः॥
क्षीणाय तु वासनायां चेतो गलति सत्वरम्।
क्षीणायां शीत संतत्यां ब्रह्मण हिमकणो यथा॥
अयं वासनया देहो ध्रियते भूत पञ्जरः।
तनुना ऽन्तर्निविष्टेन मुक्तौघस्तन्तु न यथा॥
वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा।
मलिना जन्मनो हेतुः शुद्धा जन्म विनाशिनी॥

वासना का पूर्ण रूपेण विनाश होने के पश्चात् ही वह भक्ति मिलती है, जिसे अज्ञान की मैल को धोने के पश्चात् ज्ञानी लोग प्राप्त करते हैं। जैसे सर्दी की ऋतु समाप्त होने पर पर्वत की बर्फ स्वयंमेव पिघल जाती है, उसी प्रकार वासना के समाप्त होने पर वह चित्त भी नष्ट हो जाता है जिसमें वासना रहती है। इस वासना के कारण ही आत्मा को बार बार शरीर मिलता है। जैसे मोतियों की माला मोतियों के पिरोये धागे के कारण स्थिर रहती है, वैसे ही यह शरीर वासना के कारण स्थिर है। यह वासना दो प्रकार की है एक शुद्ध दूसरी मलिन। मलिन वासना से बार बार जन्म होता है। शुद्ध वासना से जन्म और मरण का बन्धन समाप्त हो जाता है। यह है वासना, जन्म जन्म से आत्मा के साथ चलती हुई, बार बार उसे नये शरीर देती हुई, नये बन्धन जगाती हुई, नये जंजालों में फंसाती है। यह है सब से बड़ी रुकावट।

परन्तु यह वासना है क्या? वास कहते हैं बस जाने को। जो बस जाती है और बसा देती है उसे वासना कहते हैं। चमेली के पुष्पों को अपनी टोपी में रखिए, कुछ देर पड़ा रहने दीजिये, तब फूलों को फेंक दीजिये। परन्तु कोई भी व्यक्ति आप की टोपी को देखकर कहेगा कि इस में चमेली के फूल रक्खे हुए थे। फूल नहीं रहे, वे चले गये परन्तु अपनी वास टोपी में छोड़ गये। उसी प्रकार यह कर्म अपना एक वासना चित में छोड़ जाता है। उत्तम कर्म कीजिये तो एक सफेदी सी कर्म के पश्चात् रह जाती है, उसे हम पुण्य कहते हैं। बुरा कर्म कीजिए तो एक स्याही सी रह जाती है, उसे हम पाप कहते हैं। ये पुण्य और पाप दोनों वासना बनकर

चित्त में रहते हैं। जैसे सुगन्ध या दुर्गन्ध अपने जन्म के कारण का नाश होने के पश्चात् भी रहती है। उसी प्रकार कर्म का फल मिलने के पश्चात् भी वासना चित्त में बैठी रहती हैं।

इस बात को अच्छी प्रकार समझिये। वासना को समझ लेने के पश्चात् शेष बातों को समझना बहुत आसान हो जाएगा।

आत्मा स्थूल नहीं है, सूक्ष्म है परन्तु थोड़ी देर के लिये मान लो कि वह स्थूल है, तब यह बात अच्छी प्रकार समझ में आयेगी।

हम एक कर्म करते हैं, उसका फल मिलता है परन्तु उससे कर्म का अन्त नहीं हो जाता। कर्म और फल दोनों के कारण चित्त (जो आत्मा से प्रतिबिम्बित होता है) में एक रेखा भी पड़ जाती है। इस रेखा के कारण, उसकी प्रेरणा से आत्मा फिर उसी कर्म को करना चाहता है। यह चाहना ही वासना है। इसके कारण आत्मा फिर उसी कर्म को करता है, फिर फल को पाता है। रेखा पहले से भी गहरी हो जाती है। उसके कारण वासना और भी प्रबल हो उठती है। इस प्रकार जन्म और मृत्यु का चक्र चलता रहता है। उसका अन्त होने में नहीं आता।

चित्त में पड़ी रेखा से नये कर्म को प्रेरणा कैसे मिलती है यह बात मनोविज्ञान के एक सिद्धान्त से समझिये।

आप में से कितने लोगों ने काश्मीर देखा है यह मुझे पता नहीं। परन्तु मान लो कि आप काश्मीर गये। वहाँ पहल गाँव में एक रात रहे। उस रात बहुत भयंकर अंधड़ आ गया। तूफान में एक सज्जन महात्मा ने आपकी सहायता की।

अब यदि मैं काश्मीर कहूँ तो आप को पहलगाँव, वह रात्रि, वह अन्धड़, वह महात्मा सब के सब याद आ जायेंगे। कैसे याद

आ गये थे ! काश्मीर का अर्थ तो पहलगाँव नहीं, रात्रि नहीं, अंधड़ नहीं, महात्मा नहीं। यह सब कुछ इसलिए स्मरण आया कि आप काश्मीर गये तो आपके मस्तिष्क में एक छोटी सी रेखा बन गई। पहलगाँव में रात्रि व्यतीत की तो दूसरी रेखा बन गई। अन्धड़ आया तो उसके साथ जुड़ी हुई एक तीसरी रेखा बन गई, महात्मा को देखा तो एक चौथी रेखा बन गई।

ये सब की सब रेखायें अन्तःकरण के भीतर, उस स्थूल वस्तु में जिसे हम चित्त, कहते हैं वास्तव में बनती हैं। काश्मीर का नाम लेते ही एक रेखा जागती है तब वह दूसरी को तीसरी को, चौथी को जगा देती है। आपको दुःख भी होता है सुख भी होता है यद्यपि यह सब कुछ काश्मीर नहीं।

इसी प्रकार कर्म की इच्छा, कर्म की क्रिया और कर्म के फल के साथ भी आत्मा से प्रतिबिम्बित चित्त में रेखायें पड़ती जाती हैं। जिस प्रकार काश्मीर का शब्द बोलने से बहुत सी ऐसी वस्तुएँ स्मरण हो जाती हैं जो काश्मीर नहीं इसी प्रकार चित्त में पड़ी हुई इन रेखाओं में से किसी एक रेखा के जागृत होने पर शेष रेखायें स्वयं जाग उठती हैं। तब कर्म का चक्र चलने लगता है, फल का चक्र चलने लगता है। रेखायें भी गहरी होती जाती हैं। इसलिये गुरु वशिष्ठ ने कहा, कि धागे में जिस प्रकार मोती पिरोए रहते हैं उसी प्रकार बार बार मिलने वाले ये शरीर वासना में पिरोये रहते हैं। इसी के कारण जन्म और मरण का चक्र चलता है।

वासना के चार कारण हैं हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन।

हेतु का अर्थ वह वस्तु है जिससे वासना का जन्म होता है, यह वस्तु है शुभ या अशुभ कर्म।

फल का अर्थ है वह वस्तु जो कर्म से उत्पन्न होती है। योग दर्शन के अनुसार तीन वस्तुएँ कर्म के कारण उत्पन्न होती हैं योनि (शरीर, मनुष्य का पशु का, पक्षी कीड़े, मकौड़े, मछली वनस्पति आदि का) आयु (काल जो इस जीवन में काटना है) और भोग (सुख या दुःख जो इस शरीर में और आयु में कर्म के कारण प्राप्त होगा)

आश्रय का अर्थ है वह स्थान जहाँ वासना रहती हैं यह स्थान है चित्त, प्रत्येक प्रकार की वासना का हैड़ क्वार्टर है यह। और,

आलम्बन का अर्थ है सहारा। वह वस्तु जिस का प्रयोग करके वासना क्रियात्मक रूप धारण करती है। ये सहारे हैं इन्द्रियों के विषय इन को लाठी बनाकर यह पंगु वासना आगे बढ़ती है। वह सब कुछ करती है जिस से कर्म का बन्धन और भी दृढ़ होता है, जन्म और मरण का चक्र समाप्त होने में नहीं आता।

अब सीधी सी बात है कि वासना को समाप्त करना है तो इन चारों कारणों को समाप्त कर दीजिये। यदि ये कारण नहीं रहेंगे तो वासना रहेगी नहीं।

आप कहेंगे यह कैसी अनहोनी बात कहते हो आनन्द स्वामी! सब से पहला कारण तो कर्म है। उसे समाप्त कैसे करे? कर्म के बिना मनुष्य रहेगा कैसे?

आपका कहना यथार्थ है। कर्म के बिना कोई भी कभी रहता नहीं। भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन के यह शंका करने पर कि कर्म और संन्यास इन में बड़ा क्या है, उसे उत्तर दियाः—

संन्यासः कर्मयोगश्च निः श्रेयस करावुभौ ।
तयोस्तु कर्म संन्यासात्कर्म योगो विशिष्यते ।।

(गीता ५।२)

संन्यास और कम योग दोनों मैं अधिक कल्याणकारो, अधिक श्रेष्ठ कर्म योग है । कर्म के बिना वास्तव में कोई रहता भी नहीं ।

अन्नाद्भवन्ति भूताति पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ।।

(गीता ३।१४)

ये सभी प्राणी, मनुष्य और पशु अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न बादल से उत्पन्न होता है, बादल यज्ञ से उत्पन्न होते हैं, यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है।

कर्म से छुटकारा वास्तव में नहीं है, तब वासना के लिये इस पहले कारण को समाप्त करें तो किस प्रकार, इसका उत्तर देते हुये भगवान् कृष्ण ने कहा:—

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रयैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ।।

(गीता० ५।११)

योगी लोग भी कर्म करते हैं, शरीर से मन से बुद्धि से, इन्द्रियों से भी । अपनी आत्मा की शुद्धि के खिये "संग" को त्याग कर वे कर्म करते हैं । इन्हीं की भाँति तू भी कर्म कर ।

परन्तु यह संग को त्यागना क्या है ? इसका उत्तर भी श्री कृष्ण ने दिया:—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्म फल हेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्व कर्मणि ।।

(गीता २।४७)

कर्म करो अवश्य, कर्म से मुख न मोड़ो, परन्तु ध्यान रक्खो तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, उनके फल की चिन्ता करने में नहीं। फल की इच्छासे कर्म न करो।

इसी बात को श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने एक और प्रकार से कहा:—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्म फले स्पृहा।
इति मां योऽभि जानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

(गीता ४।१४)

कर्म के फल को मुझे इच्छा नहीं' इसलिए कर्म मुझे चिपट नहीं सकते। ऐसा जान कर जो कर्म करता है उसे कर्मों का बन्धन कभी बाँधता नहीं।

कर्म और इसके फल की बात को बहुत सुन्दर ढंग से कहा वेद भगवान् ने:—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ᳪसमाः।
एवं त्वयि नान्यथे तो ऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(यजु० ४०।२)

इस संसार में मनुष्य यदि वेद के बताये हुमें निष्काम कर्मों को करता हुआ सौ वर्ष जिये तो उसे कर्म लिपटता नहीं।

निष्काम कर्म का **अर्थ है** ऐसा कर्म जो आत्म भावना से किया जाये। इस भावना से किया हुआ कर्म किये जाने के पश्चात् भी बन्धन उत्पन्न नहीं करता।

आत्म भावना से कर्म करना बहुत सरल नहीं। इसलिये मन्त्र में मनुष्य के लिये 'नर' शब्द प्रयुक्त हुआ है। नर का अर्थ क्या

है। यह कठोपनिषद के ऋषि ने बहुत सुन्दर शब्दों में बताया। उन्होंने कहा:—

विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।

आत्म ज्ञान को जानने वाली बुद्धि जिस की सारथी है और मन को जो लगाम की भांति वश में रखता है वह नर है।

आत्म ज्ञान को जानने वाली बुद्धि का अर्थ सात्विक बुद्धि जिसे ऋतम्भरा कहते हैं। बुद्धि सात्विक हो। मन वश में हो तभी मनुष्य 'नर' है। नहीं तो वह केवल एक प्राणी है, श्वास लेता है, जीता है। और यदि वास्तव में वह नर है तो कर्म उसे लिपटेगा नहीं, फिर प्रभु दर्शन का मार्ग खुला है। ग्राण्ड ट्रंक रोड़ है यह। सीधे चलते जाओ कोई रुकावट नहीं आयेगी। नर का एक अर्थ नेता भी है अर्थात् जो पथ प्रदर्शक है। इन्द्रियाँ और मन जिस को अपने वश में करके नहीं चलतो अपितु जो मन और इन्द्रियों को अपने वश में करके उन्हें मार्ग दिखाता है, वह 'नर' है। इसी शब्द का एक और अर्थ इन्द्रियों में रमण न करने वाला भो है, अर्थात् जो प्रकृति बन्धन से दूर रह कर, वासना के जाल में पड़े बिना केवल कर्तव्य की भावना से कर्म करता है वह नर है। आप एक अर्थ को मानिये या दूसरे को एक बात निश्चित है कि नर बने बिना निर्वाह नहीं। नर बनोगे तो कर्म करते हुए भी कर्म लिपटेगा नहीं, नहीं बनोगे तो फिर यह कर्म पहले बन्धन को दृढ़ करता चला जायेगा। चित्त में बैठी हुई वासना ऐसे ऐसे कर्म करायेगी जिन्हें आप करना नहीं चाहते, कर के कई बार पछताते भी हैं।

जैसा कि मैंने आरम्भ में कहा वासना के चार कारणों मे
पहला कारण है कर्म। यदि कर्म में वासना नहीं और वासना
कर्म नहीं तो फिर वासना की समाप्ति निश्चित है क्योंकि
की नींव तो यहाँ से आरम्भ होती है, यहाँ से वह जन्म लेती
शरीर आयु और सुख दुःख का रूप धारण करके फल बनती
चित्त में बैठकर इन्द्रियों का सहारा लेकर आत्मा को जन्म म
के चक्र में घुमाती रहती है। इस का जन्म ही न होने दो
बेड़ा पार है।

यह वासना ही पहली रुकावट है जो आत्मा और परमा
के मध्य दीवार बन कर खड़ी है। यह है सब से बड़ा शत्रु,
से बड़ा पाप। इस से बचो। बहुत भयानक है यह। जब
इसका नाश नहीं होगा तब तक दुःखों का नाश भी नहीं हो
परन्तु यह स्वयं तो समाप्त नहीं होती। तीन अवस्थाएँ हैं जिन
होकर निकलना पड़ता है। पहली अवस्था है 'तत्वज्ञान'।
जानना कि ब्रह्म क्या है? प्रकृति क्या है? प्रकृति की ओर
हट कर ब्रह्म की ओर जाना। दूसरी अवस्था है 'मनोनाश'।
में उठते हुए संकल्प और विकल्प को जहाँ वे उत्पन्न हो
समाप्त कर देना और अन्तिम अवस्था है 'वासनाक्षय।' पहली
अवस्थाओं को पार किये बिना वासना का अन्त कभी होता नहीं

ऋग्वेद के मन्त्र में इस वासना को शराब कहा तो इस
कि शराब जिस प्रकार मस्तिष्क को खराब कर देती है
प्रकार यह वासना बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है। उसे सत्विक
कभी बनने नहीं देती। सदा कुबुद्धि बनाये रखती है। शराब
अर्थ है नशा। यह नशा केवल अंगूरों के सड़े हुए रस में भ

अफीम में या इस प्रकार का दूसरी वस्तुओं में ही नहीं कई अन्य वस्तुओं में भी होता है। धन का नशा भो एक नशा है। राज का नशा भी एक नशा है। कोरे ज्ञान का, यूनिवर्सिटियों की डिगरियों का नशा भी एक नशा है। एम० ए०, डी० लिट० 'इट पिट' ए टू जैड, पता नहीं कितनी ही डिगरियाँ हैं। परन्तु सुनो, ये सब नशे बुद्धि को भ्रष्ट करने वाले हैं। इन से अभिमान उत्पन्न होता है, अभिमान के होते ही व्यक्ति डूबता है—मैं बड़ा धनी, बड़ा ज्ञानी, बड़ा भारी भाष्यकार चाहे शब्द जाल तथा शब्द आडम्बरों के अतिरिक्त और कुछ न हो फिर भी अभिमान यह भयंकर है:—

लेने को हरि नाम है, देने क कोछ दान।
तारन को है नम्रता डूबन को अभिमान ॥

परन्तु इन में से प्रत्येक वस्तु अभिमान के नशे को उत्पन्न करती है। धन या सोने के सम्बन्ध में महा कवि बिहारी लाल ने बहुत सुन्दर बात कही।

कनक कनक ते सौ गुणो मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है, ये पाये बौराय ॥

कनक कहते हैं सोने को और कनक कहते हैं धतूरे को। बिहारी लाल कहते हैं कि धतूरे से सोने में सौ गुणा अधिक नशा होता है। धतूरे को मनुष्य खा कर पागल होता है, सोने को प्राप्त करके ही पागल हो जाता है।

यह सम्पति ऐसा अभिमान उत्पन्न करती है कि धन वाले को फिर कुछ सूझता ही नहीं। आत्मा भी कुछ है, ईश्वर भी कोई वस्तु है, यह उसे स्मरण नहीं रहता। अपनी मनुष्यता भी वह खो बैठता है:—

जफर आदमी उसको न जानियेगा चाहे हो वह कैसा ही फहमो ज़का।
जिसे ऐश में यादे खुदा न रही जिसे तैश में खौफे खुदा न रहा।

सम्पत्ति में विलासिता होती है, क्रोध होता है, अभिमान के कारण प्रभु नहीं होता।

यह 'दौलत' है दो लातों वाली। आती है तो एक लात मनुष्य की छाती पर मारती है और वह इस प्रकार अकड़ जाता है कि अपने अतिरिक्त उसे कुछ दिखाई नहीं देता। जाती है तो एक लात पीठ पर मारती है। मनुष्य इस प्रकार झुक जाता है। इस प्रकार इसकी कमर टूट जाती है, जैसे संसार समाप्त हो गया हो।

परन्तु सुनो दौलत के आने जाने से संसार समाप्त नहीं होता। दौलत को संसार या संसार का सुख समझने वाले उस यात्री की भांति हैं जो डूबती नौका में बैठा हो। शायद उन्हीं के सम्बन्ध में किसी ने कहा:—

कोई सोता हो जैसे डूबती किशती के तख्ते पर।
अगर कुछ है तो बस इतनी ही दुनिया में राहत है॥

हाँ जो सम्पत्ति को संसार और संसार का सुख समझ बैठे उनके लिये बस इतना ही सुख है अन्यथा आत्मा का संसार बहुत विशाल है। प्रकृति के जाल में फंसा मनुष्य उसे समझ नहीं सकता। उस की दशा यह है:—

सुनी हिकायते हस्ती तो दरमियाँ से सुनी।
न इब्तिदा की खबर है, न इन्तहा मालूम॥

नहीं यह कहानी बहुत लम्बी है, अनन्त। वासना की शराब से इसे गन्दा न करो, वासना तुम्हारी सब से बड़ी शत्रु है।

परन्तु केवल एक शत्रु तो नहीं। वासना के साथ साथ वह क्रोध भी रुकावट है जो गलत स्थान पर प्रयुक्त हो। ऐसा क्रोध प्रभु दर्शन के मार्ग में सब से बड़ी रूकावट है। आप कितना भी जाप कर लीजिये, तप कर लीजिये, योग के आसन कर लीजिये, यदि अपने क्रोध पर आप का नियन्त्रण नहीं तो फिर यह सारा जप, तप, योग ध्यान सब व्यर्थ है। क्रोध करने वाला क्या करता है यह जानना हो तो सोचिये कि एक कमरा है। आपने उसे बड़े यत्न से साफ किया है, बहुत प्रयत्न से उसे सजाया है। कहीं एक सुन्दर सोफा बिछा दिया है, फर्श पर कश्मीर का कालीन बिछा दिया है। खिड़कियों पर सुन्दर रेशमी परदे लटका दिये हैं। दीवारों पर बहुमूल्य चित्र लटका दिये हैं। फूलों के गुलदस्ते रख दिये हैं। एक एक स्थान को आपने रूमाल से रगड़ कर देखा है कहीं कोई धूल तो नहीं रही और सब कुछ हो जाने के पश्चात् आपने उसे आग लगा दी है। आग लगाने के पश्चात् क्या होगा यह तो आप भी जान सकते हैं। यह क्रोध भी अग्नि है, जो सारे जप, तप ज्ञान, ध्यान और योग साधन को जला कर राख बना देता है। क्रोध की अग्नि मस्तिष्क के उन सूक्ष्म तन्तुओं को जला देती है, जो सारे शरीर को चलाते हैं। कण्ट्रोलर का कार्यालय ही जल गया तब नगर का क्या बनेगा ? इसलिये क्रोध से बचो। आजकल के वैज्ञानिकों ने अनुसन्धान करके पता लगाया है कि जो व्यक्ति बराबर क्रोध करता है उसके रक्त में एक भयानक विष उत्पन्न हो जाता है। इस विष के कारण फोड़े फुंसियाँ निकलती हैं। त्वचा की बहुत सी बीमारियाँ हो जाती है, अतः बचो इस क्रोध से।

परन्तु आप कहेंगे आनन्द स्वामी ! तू कहता है 'क्रोध से बचो' परन्तु वेद तो कहता है, हे "भगवान् ! तू क्रोध है, हमको क्रोध दे ।"

तेजोऽसि तेजो मयिधेहि, वीर्यमसि वीर्यंमयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि ओजोऽसि ओजोमयि धेहि ,
मन्युरसि मन्यु मयिधेहि, सहोऽसि सहो मयि धेहि ।।
(यजु० १९ : ९)

हाँ भाई ! कहा है वेद ने, "तू मन्यु है, क्रोध है, मुझे क्रोध दे ।" परन्तु यह क्रोध किस लिए माँगा ? क्या अपने घर के लिए ? नहीं, बाहर के लिए, अन्याय के लिए, पाप के लिए, अत्याचार के लिए । उनके विरुद्ध क्रोध करना उचित है ।

पाकिस्तान बना तो हैदराबाद के निजाम ने पहले भारत सरकार को कहा कि मैं भारत में सम्मिलित होता हूँ । बाद में कुछ लोगों के कारण उसने कहना आरम्भ किया कि मेरे साथ शर्तें निश्चित कर लो । मिस्टर मुन्शी वहीं थे । वह जो भी बात कहते, निजाम उसमें मीन मेख निकाल देते । एक सप्ताह व्यतीत हो गया, दो सप्ताह चले गये, कई सप्ताह निकल गये इस बातचीत में जिसका कोई अन्त दिखाई नहीं देता था । इस के साथ ही हैदराबाद में दिल्ली के लालकिले पर आसफ शाही झण्डा लहराने के स्वप्न कासम रिजवी देखने लगा । जब शान्ति से प्यार से, प्रेरणा से किसी भी विधि से निजाम सीधे मार्ग पर नहीं आये । जब वह और उसके साथी भारत में रह कर भारत से शत्रुता की बातें सोचने लगे तब भारत के लोह पुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल का क्रोध जागा । आज्ञा दी उन्होंने पुलिस ऐक्शन कर दो ।

मैं उन दिनों शोलापुर के डी० ए० वी० कालेज में था ।

कासम रिजवी की डींगें पत्रों में छप रहीं थीं। समाचार आ रहे थे कि निजाम ने बाहरी देशों से काफी हथियार मंगवा लिये हैं। सब लोग चकित थे कि अब क्या होगा ? मैं भी चकित था। तभी शोलापुर की भारतीय सेना के कमाण्डर कैप्टन महाजन मिले। उन्होंने बताया कि वह भी सेना लेकर हैदराबाद में प्रविष्ट होंगे। मैंने पूछा 'कब ?' वे बोले, "अभी पता नहीं, परन्तु मैं आपको साथ ले चलूँगा, अपनी हथियार बन्द गाड़ी में।" तभी कुछ ही देर के पश्चात् उनको सन्देश मिला, "आप तैयार रहिये।" उनकी आर्मड़ Armed कार में मैं उनके साथ चला। हैदराबाद की सीमा में प्रविष्ट हुए तो एक नदी थी सामने उसे पार करना था। कैपटन महाजन बोले, 'अब आप मन्त्र पढ़िये, ईश्वर का नाम लेकर हम आगे बढ़ेंगे और यदि किसी ने रोकने का प्रयत्न किया तो भून कर रख देंगे।" मैंने कहा, "ठीक बात है यह।" नदी के किनारे खड़े होकर मैंने मन्त्र पाठ किया। कैपटन महाजन से बोला, 'अब चलिए, ईश्वर हमारे साथ है, वह हमारे देश को विजय देगा। आरम्भ हो गई चढाई। कहीं कोई रुकावट नहीं। भारतीय सेना हैदराबाद पहुँची तो निजाम साहब उसका स्वागत करने के लिए आ गये बोले, "मैं तो आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था, किसी भी शर्त की आवश्यकता नहीं हैदराबाद भारत का अंग है ! जैसे आप कहेंगे, वैसा मैं करूँगा।

यह है यथार्थ क्रोध, जो देश की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिये, न्याय की रक्षा के लिये किया जाये। इसके अतिरिक्त दूसरा क्रोध आत्म दर्शन के मार्ग में ऐसी रुकावट है जिससे बड़ी और कोई रुकावट नहीं। परन्तु अब समय हो गया है इसलिये......

॥ ओ३म् तत् सत् ॥

चौथा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनों !

कल मैंने वासना की चर्चा की थी। समझाया था कि यह वासना क्या है ? फिर भी आज एक भाई पूछने आया कि वासना क्या है ? प्रतीत होता है यह वासना पीछा नहीं छोड़ेगी। इसलिए आज एक बार पुनः वासना की बात सुनिए।

वासना का सीधा अर्थ है 'जो बस जाये।' इस लिए 'बू' को 'बास' भी कहते हैं क्यों कि वह 'बस जाती है। सुगन्ध बन कर वह रहती है फूल में।

तेरा प्रभु तुझ में बसे ज्यूँ फूलों में बास।

परन्तु फूलों को थोड़ी देर एक स्थान पर रखे रहिये फिर उठा कर दूसरे स्थान पर ले जाइये। जहाँ आपने उनको पहले रखा था वहाँ फूल नहीं हैं परन्तु बाहर से आने वाला कोई भी व्यक्ति उस स्थान को देख कर कहेगा, "क्या आपने यहाँ फूल रखे थे ?" यही नहीं यदि उसकी नाक ठीक है और जुकाम से बन्द नहीं हो गई है तो वह आपको यह भी बतायेगा कि आपने कौन से फूल वहाँ रक्खे थे। क्यों उसको यह बात ज्ञात हुई ? इसलिए भले ही फूल चले गये वहाँ से, परन्तु उनकी बास वहीं पर बस रही है, बैठ गई है। ठीक इसी प्रकार जो भी अच्छा या बुरा कर्म हम करते हैं उसका फल मिलता है अवश्य। फल उस भावना का मिलता है जिससे कर्म किया जाये। जैसी नीयत वैसा फल। परन्तु फल मिलने के

पश्चात् वह कर्म समाप्त नहीं हो जाता, उसकी वासना शेष रह जाती है। यूँ समझिये कि कर्म एक फूल है। फल उसकी सुगन्धि है। फूल और सुगन्ध के हटा देने के पश्चात् जो वस्तु शेष रह जाती है, वह वासना है।

सीधा सा फार्मूला यह है कि जैसी भावना वैसा फल, जैसा फल वैसी वासना।

मस्तिष्क में जिस प्रकार याद की लकीर बन जाती है इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर में वासना की एक लकीर बैठ जाती है।

एक ही कर्म को दो भिन्न भिन्न व्यक्ति यदि अलग भावना से करें तो कर्म का फल भी अलग होगा। उसकी वासना भी अलग होगी।

एक व्यक्ति चाँदनी चौक में चला जाता है। डेढ़ सौ रुपया उसके पास है। एक डाकू ने उस रुपये को देखा उस व्यक्ति के पीछे हो लिया, कि अवसर मिले तो यह रुपया छीन लूँ। रात्रि का समय है। भीड़ बहुत है नहीं। चाँदनी चौक से निकल कर वह व्यक्ति बाग में जाता है। डाकू उसके पीछे है। एक स्थान पर अन्धेरा देख कर वह अपना छुरा निकालता है। झपट कर उस व्यक्ति के आगे होता है। उसके पेट में छुरा घोंप देता है। वह व्यक्ति चिल्लाता है। डाकू चिल्लाहट को अनसुना करके उसकी जेब से डेढ़ सौ रुपया निकाल लेता है। परन्तु उसने देखा नहीं कि मरने वाले की चिल्लाहट सुन कर दो सिपाही वहां आ पहुँचे हैं। डाकू दौड़ना चाहता है, सिपाही उसे पकड़ लेते हैं। उसे थाने में लेजाया जाता है, मुकदमा चलता है फाँसी का दण्ड होता है।

अब एक और व्यक्ति की बात सुनिये। उसके पास भी डेढ़सौ

रुपया है परन्तु वह चाँदनी चौक में नहीं जा रहा अपने घर में खाट पर पड़ा है। उसका जीवन भार है, वह अस्पताल में जाता है। डाक्टर से कहता है यह रसौली निकाल दो। डाक्टर डेढ़ सौ रुपया लेता है। उसे लेने के बाद रोगी को आपरेशन टेबल पर लिटाता है। अपना नश्तर निकालता है। मरीज का पेट चीर देता है परन्तु रसौली बहुत बड़ी है, वह ठीक प्रकार से निकलती नहीं मरीज मर जाता है। तब क्या कोई डाक्टर को पकड़ेगा? उसे थाने में ले जायेगा? उस पर मुकदमा चलेगा। उसको फाँसी का दण्ड देगा। नहीं ऐसा कुछ नहीं होगा।

इन दोनों व्यक्तियों का कर्म एक है। दोनों ने दूसरे से डेढ़ सौ रुपया लिया है, उसके पेट में छुरा घोंपा है। दोनों ने व्यक्ति को मार दिया है फिर भी दोनों को फल अलग अलग मिलता है क्योंकि कर्म के एक होने पर भी दोनों की भावना अलग अलग थी।

परन्तु यह बात केवल चाँदनी चौक और अस्पताल में ही नहीं होती, प्रत्येक स्थान पर होती है। जैसी भावना हो वैसा फल मिलता है। वैसी ही वासना पीछे रह जाती है। अंग्रेजी के एक कवि ने इस बात को बहुत सुन्दर शब्दों में कहा है। उस के शब्द हैं:—

Sow an act you reap a habit.
Sow a habit you reep a character.
Sow a charactei you reap a destiny.

अर्थात् एक कर्म कीजिये उससे स्वभाव बनेगा। स्वभाव को बीजिए उससे चरित्र निर्माण होगा चरित्र को बीजिये तो उसका भाग्य बनेगा, जो बदलता नही। यह बात सौ प्रतिशत ठीक है। आपका भाग्य कहीं आकाश से नहीं आया। आपने स्वयं उस को

बनाया है। जैसा कर्म करेंगे और जैसी भावना से करेंगे उसका फल अवश्य मिलेगा।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

किया हुआ कर्म अच्छा है या बुरा उसका फल भोगे बिना चारा नहीं। कर्म करो फल मिलेगा। फल का अन्त हो जाने पर भी वासना शेष रहेगी। यह फिर उसी कर्म को करायेगी। फिर फल मिलेगा। वासना और भी दृढ़ हो जायेगी। तब वह फिर कर्म करायेगी फिर फल, फिर वासना, फिर कर्म—इसी प्रकार यह चक्र चलता जायेगा। वासना को समाप्त किये बिना इससे छुटकारा नहीं मिलेगा। इस बात को और भी खोल कर सुनिये।

कल मैं आप को बता रहा था कि वासना चित्र में रहती है, परन्तु यह चित्त क्या है ? किस से सम्बन्ध रखता है यह ? कौन इस का परिवार है ? कहाँ से उत्पन्न हुआ ? इसकी खोज की गई तो पता लगा कि एक समय था जब यह सब कुछ जो आज दृष्टि गोचर होता है, कुछ भी नहीं था। केवल प्रकृति थी सम अवस्था में, कोई रूप नहीं, रंग नहीं, बू नहीं, ध्वनि नहीं, कोई देखने वाला नहीं, दिखने वाला नहीं। यह था प्रकृति का पहला रूप जिसको अस्मिता कहते हैं। इस अस्मिता प्रकृति में भगवान् की सविता शक्ति से हलचल उत्पन्न हुई, गति आने लगी, उथल पुथल होने लगी तब इस अस्मिता से अहँकार उत्पन्न हुआ। अहंकार में और गति हुई तब चित्त बना। प्रकृति, अस्मिता, अहंकार और चित्त ये सब जड़ हैं। इन में कोई होश नहीं, बेहोश हैं सारे। चित्त यदि होश में प्रतीत होता है, चेतन सा दिखाई देता है, तो इस लिये कि उस में आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। यह आत्मा के साथ

रहता है। चुम्बक आपने देखा होगा। वह लोहे को खींच लेता है। यह उसकी शक्ति है, साधारण लोहे में यह शक्ति नहीं। परन्तु साधारण लोहे को चुम्बक के साथ रखिये, कुछ देर इसके साथ पड़ा रहने दीजिये तो इस टुकड़े में भी चुम्बक की शक्ति आ जाती है। छोटी छोटी सुइयों को वह भी खेंच लेता है। यह शक्ति उस की अपनी नहीं, बहुत देर तक रहेगी भी नहीं। उसी प्रकार चित्त के भीतर जो चेतन शक्ति सी प्रतीत होती है वह उसकी अपनी नहीं, आत्मा की है। बहुत समय तक रहेगी नहीं।

प्रायः मनुष्य समझता है मैं चित्त हूँ परन्तु जिसने चित्त की वास्तविकता को जाना है उसे पता है कि चित्त तो जड़ है। मैं जड़ नहीं हूँ। इसलिये मैं चित्त नहीं हूँ आत्मा हूँ।

इस चित्त की पाँच अवस्थायें हैं क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरुद्ध। पहली अवस्था वह है जब वह संसार के धन्धों में फंसा रहता है। दूसरी दशा में पागल की भांति अशान्त और व्याकुल होकर कार्य करता है। तीसरी अवस्था में मूर्ख व्यक्ति की भांति यही भूल जाता है कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। चौथी दशा वह है जब एक स्थान पर टिक जाता है, एक बिन्दु पर आकर एकाग्र हो जाता है। पाँचवी अवस्था वह है जब उस की सभी वृत्तियां एक केन्द्र पर आकर रुक जाती हैं। कोई हलचल नहीं रहती, कोई अशान्ति नहीं। महर्षि पतञ्जलि ने इस अवस्था को योग कहा है। योग को परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा:—

योगश्चित्त वृत्ति निरोधः (यो० द० १।२)

चित्त की वृत्तियों का निरोध अर्थात् रोक देना ही योग है।

ये हैं चित्त की पाँच अवस्थायें। अब इनका स्वभाव सुनिये।

चित्त का पहला स्वभाव प्रख्या अर्थात् देखी सुनी बातों का बार-बार चिन्तन। दूसरा स्वभाव है प्रवृत्ति अर्थात् देखी सुनी बातों के सम्बन्ध में बार बार सोचने से उनकी ओर झुकाव हो जाना। और तीसरा स्वभाव है स्थिति अर्थात् जिस बात की ओर झुकाव हुआ उस में लगाव हो जाना टिक जाना, ठहर जाना।

यह बीती बातों को बार बार स्मरण करना अच्छी बात नहीं है। ऐसे लोगों को आप मिलिये तो वे आप को अपने दुःख की कहानियाँ सुनायेंगे। वास्तव में वह दुःख समाप्त हो चुका परन्तु लोग अब भी उसे समाप्त होने देना नहीं चाहते। बार बार उसकी कहानी दोहराते हैं, स्वयं भी दुःखी होते हैं दूसरों को भी दुःखी करते हैं। इस लिये हमारे ऋषियों ने लोगों को जाप करने को कहा और उन्हें कहा कि याद ही करना है तो भगवान् के किसी नाम को बार बार याद करो। ओ३म् का जाप करो। उस की बात सोचो जो सब को बनाने वाला है इसी लिए वेद भगवान् ने कहा—

ओं क्रतो स्मर (यजु० ४०)

हे कर्म करने वाले आत्मा ! ओ३म् को याद कर।

चित्त के प्रख्या स्वभाव को बदल दीजिये, उत्तम मार्ग पर लगा दीजिये तो फिर यह ठीक मार्ग पर चलेगा। उचित बात में इस की प्रवृत्ति होगी। उस की ओर यह झुकेगा। ठीक बात में इसकी स्थिति होगी, उस में यह टिकेगा।

इस चित्त में वासना रहती है। इसको बदल दीजिये ऐसा बना दीजिये कि इसमें कोई बुरी बात न रह सके तो बुरी वासना के लिये इस में रहना असम्भव हो जायेगा।

इस सम्बन्ध में एक और बात कहनी भी आवश्यक है। दर्शन ग्रन्थों में चित्त का वर्णन करते हुए उस का एक और स्वभाव भी बताया गया है। स्वभाव यह है कि एक होने पर भी यह अनेक बातों में चला जाता है।

एकमनेकार्थमवस्थितम् चित्तम् ।

जाप कर रहे हैं गायत्री मन्त्र का या ओ३म् नाम का और यह श्रीमान् चल पड़ते हैं कहीं और। दर्शन कार कहते हैं कि यह चित्त ऐसा ही है। परन्तु ऐसा होना नहीं चाहिये:—

माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुख माँहि।
मनोराम चहुं दिश फिरे यह तो स्मरण नाहि ।।

सचमुच यह स्मरण नहीं। माला के मन के अंगुलियों पर फिसलते जा रहे हैं। जिह्वा प्रभु का नाम कह रही है और मन महाराज कनाट प्लैस की दुकानों का चक्र लगा रहे हैं। इस प्रकार स्मरण नहीं होता। बहुत बड़ी रुकावट है यह, बहुत बड़ी हानि। परन्तु इस चित्त को रोकें किस प्रकार ? इसका उत्तर महर्षि पतञ्जलि ने दिया। उन्होंने कहा:—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः ।

इस रुकावट को हटाने के लिये एक तत्व का अर्थात् ब्रह्म तत्व का अभ्यास करो। ओ३म् का जाप करो। लगातार करो किसी भी प्रकार से करो, निरन्तर जाप करने से अन्त में सफलता होगी अवश्य।

ओम् का स्मरण नित कर जिस विधि सिमरा जाय।
कभी तो दीन दयाल जी, बोलेंगे मुस्काय ।।

उसकी कृपा अपार है, उसकी ओर से निराश न हो जाओ। जो इतने बड़े विश्व को उत्पन्न करता है, करोड़ों अरबों सूर्य मण्डलों को बनाता है। जो प्रकाश देता है, वृष्टि करता है। पृथिवी की छाती से अन्न देता है, फलों में रस देता है वह निश्चित रूप से इस पुकार को भी सुनेगा। तुम पर भी कृपा करेगा। उसका नाम जपते जाओ फल मिलेगा अवश्य।

तुलसी अपने राम को रीझ भजो या खीज।
भूमि पड़े उपजेंगे ही उलटे सीधे बीज ॥

किसी भी प्रकार गिरें, खेत में गिरे हुए बीज आखिर उपजेंगे अवश्य। इसलिये प्रतिदिन जाप करो। भृकुटि में, माथे में नाक से ऊपर। उस जगह दोनों आँखों के बीच में ओ३म् को देखने का प्रयत्न करो। उपनिषद् कहता है कि ईश्वर का कोई रूप नहीं कोई रंग नहीं, इसलिये ओम् के रूप में उसे भृकुटि में देखने का प्रयत्न करो। चलते फिरते, उठते बैठते हर समय यह नाम लो ओम्तत्सत् ओम् तत्सत्—लगातार कहते जाओ। चित्त को रोकने का यह सरल उपाय है। निरन्तर अभ्यास करने से वह रुकता है।

परन्तु चित्त का वर्णन तो हो रहा था, वासना के कारण जो प्रभु दर्शन के मार्ग में सब से पहली रुकावट है। दूसरी रुकावट जिस पर हम कल विचार कर रहे थे क्रोध है। मैंने जहाँ यह कहा कि क्रोध सब से बड़ी रुकावट है, वहाँ यह भी कहा कि कई अवस्थाओं में क्रोध उचित और आवश्यक भी है। सरदार पटेल के क्रोध की चर्चा मैंने की, जिससे हैदराबाद में बैठे हुए

निजाम साहब के होश ठिकाने आ गये। अब एक और क्रोध की बात सुनिये।

महाराजा रणजीत सिंह के जरनैल सरदार हरिसिंह नलवा कश्मीर में थे। जब उन्हें महाराज का संदेश मिला कि पठानों की फौजें अटक के उस पार आ गई हैं वहाँ पहुँचो, उन्हें हटाओ सरदार हरिसिंह नलवा तेजी के साथ कश्मीर से अटक की ओर बढ़े। गढ़ी हबीबुल्ला के मार्ग से एबटाबाद की ओर बढ़ रहे वह, कि दो मील के निकट रहने वाले पठानों ने मार्ग देने से मना कर दिया। नलवा ने कहा, "तुम चाहते क्या हो? तुम्हारे साथ मुझे लड़ना नहीं।" पठानों ने कहा, "लड़ना हम भी नहीं चाहते। परन्तु हमारी कुछ शर्तें हैं उन्हें माने बिना आप आगे नहीं जा सकते। सरदार हरिसिंह नलवा ने सारी बात को मजाक समझा, पूछा, "क्या शर्तें हैं?" पठानों ने कहा, "आज शाम को हम आपस में फैसला करके बतायेंगे।" नलवा जी ने कहा, "कोई बात नहीं, आप शाम को बताइये, हम कल चले जायेंगे।" परन्तु जिस बात को नलवा ने मजाक समझा था वह उनके लिए समस्या बन गई। शाम हो गई कोई शर्त बताई नहीं गई। दूसरे दिन भी शर्तें तै नहीं हुई, तीसरे दिन भी नहीं हुई। पठान मार्ग रोके खड़े थे। नलवा जी उनसे बिना लड़े आगे बढ़ना चाहते थे। समय व्यतीत हुआ जाता था। शर्तों का निर्णय होने में नहीं आता था। हरिसिंह चकित थे करें तो क्या करें? एक रात वह सो रहे थे तो ठप ठप की आवाज सुनकर जाग उठे। पास खड़े पहरेदार से उन्होंने पूछा, "यह आवाज कैसी है?" पहरेदार ने कहा, "साहब वर्षा हो रही है।" हरिसिंह बोले, "वर्षा की

आवाज मैं भी सुनता हूँ परन्तु यह ठप ठप क्या हो रहा है ?" पहरेदार ने कहा, "सरकार सब लोग अपनी-अपनी छतों पर चढ़कर मिट्टी को कूट रहे हैं इस प्रदेश की मिट्टी ही ऐसी है कि कूटे पीटे बिना ठीक नहीं रहती ।" हरिसिंह एक दम चौंक उठे बोले, "क्या कहा तुम ने ? एक बार फिर कहो तो ।" पहरेदार ने कहा, "सरकार इस इलाके की मिट्टी ही ऐसी है, कूटे पीटे बिना दुरुस्त नहीं होती । नलवा जी हँसकर बोले, "यह मेरी गलती थी कि इस मिट्टी की विशेषता को मैं समझ नहीं पाया । सेना को आज्ञा दो कि इसी समय पठानों पर आक्रमण कर दो । जहाँ जो मिले उसको वहीं पीट डाले ।" थोड़ी देर में हर ओर मार पीट होने लगी । प्रातः काल होने से बहुत पहले कितने ही पठान गर्दनों में पल्लू डाले उनके पास आये । हरिसिंह गर्ज कर बोले, "क्या चाहते हो ?"?" पठानों ने सिर झुकाकर कहा, "कुछ नहीं श्रीमान् ।" हरिसिंह बोले, क्या शर्तें हैं तुम्हारी ?" पठानों ने कहा, "सरकार कोई शर्त नहीं। मार्ग साफ है, आप जाइये, कोई आप को रोकेगा नहीं ।" यह है ठीक और उचित क्रोध । जो घर से बाहर देश की रक्षा के लिये, उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये और धर्म की रक्षा के लिये किया जाये । वह क्रोध आत्मदर्शन के मार्ग में रुकावट नहीं । आत्मदर्शन के मार्ग में रुकावट है, वह क्रोध जो घर में किया जाये। स्वार्थं के लिये किया जाये । ऐसा क्रोध, घर को, परिवार को, जाति को, देश को सबको नाश कर देता है । ऐसा क्रोध बुद्धि को नष्ट करता है। बुद्धि के नाश होने से सर्वनाश होता है ।

विनाश काले विपरीत बुद्धिः

विनाश का समय जब आता है, तब बुद्धि मारी जाती है यह क्रोध ही वह सुरा या शराब है जो भक्त और भगवान् मध्य दीवार बन के खड़ी हो जाती है।

आज एक माँ कहने लगी आप घर में क्रोध न करने की बा करते हैं परन्तु करें क्या? बच्चे जब शैतानी करते हैं तो क्रो आ ही जाता है।" मैंने उन्हें हँसकर कहा, "माँ! बच्चे शैतानी की, आप ने क्रोध किया। तब दोनों में अन्तर क्या हुआ देखो मैं बच्चों की वकालत नहीं करता। मैं भी तो आखि पिता रहा हूँ, दादा रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि बच्चे ऊध मचाते हैं परन्तु उनके स्वभाव को सुधारने का उपाय यह नहीं कि क्रोध में आकर आप लट्ठ लेकर उसके सिर पर सवार हो जायें ऐसा करने से उसका स्वभाव सुधरेगा नहीं। उसमें विरोध की भावना जाग उठेगी। इसलिए जब वह शरारत करे तब उसे कुछ मत कहिये। जब क्रोध शान्त हो जाये तब प्यार से उसको समझाइये कहिये, सुन मेरे पप्पू! मेरे टप्पू! मेरे गप्पू! देख उस समय तूने शैतानी की उस से इतनी हानि हो गई। यह घर तेरा भी तो है। यह तेरी ही हानि है। आगे ऐसी गलती न करना। तब उसकी आँखें नीची हो जायेंगी। उसके हृदय में पश्चात्ताप उत्पन्न होगा वह सुधरने[१] लगेगा। यदि आप क्रोध में आकर मार पीट से काम लेगे तो वह रोयेगा अवश्य, चिल्ला येगा भी सुधरेगा नहीं।

१. पूज्य स्वामी जी का यह उपदेश केवल दूसरों के लिये नहीं। वे मेरे पिता हैं। मैंने देखा है कि इस उपदेश पर उन्होंने स्वयं आचरण भी किया। मैं छोटा सा था। लाहौर के डी

पिछले दिनों करोलबाग के एक सज्जन मेरे पास आये बोले, मेरे बच्चे मेरा सम्मान नहीं करते, मेरी बात भी नहीं मानते, आप चलकर उन्हें समझाइये। मैं उनके घर गया बच्चों से वार्तालाप किया तो ज्ञात हुआ कि ये महोदय गालियां बहुत निकालते हैं सारा घर उनकी गालियों से तंग है। उनके बच्चों ने बताया कि "गाली दिये बिना उन्हें भोजन नही पचता, तब इनकी बात सुने कौन ?" नहीं, इस प्रकार बच्चे सुनते नहीं, समझते नहीं।

ए० वी० स्कूल में पढ़ता था। स्कूल के हैडमास्टर साहब ने मेरे एक मित्र को उसकी किसी त्रुटि पर मारा। मैंने अनुभव किया कि उन्होंने मेरे मित्र को आवश्यकता से अधिक और अनुचित मारा है। लिखने की रूचि मुझे बचपन से है। स्कूल में ही बैठकर एक पत्र मैंने हैड मास्टर साहब को लिखा। अपने हृदय की सारी भड़ास उस में निकाल डाली इतना तीखा पत्र था कि उसे पढ़ने के पश्चात् हैड मास्टर महोदय को नींद नहीं आई होगी। उन्होंने मुझे तो कुछ नहीं कहा। उस पत्र को अपने एक शिकायती पत्र के साथ पिता जी के पास भेज दिया। अपने पत्र में लिखा कि आर्य समाज के इतने बड़े नेता का पुत्र यदि इस प्रकार धृष्टता करे और स्कूल के अनुशासन को भंग करे तो फिर आर्यसमाज का यह स्कूल चलेगा कैसे ?" मुझे पता नहीं लगा कि हैड मास्टर महोदय ने मेरे सम्बन्ध में मेरे पिता जी को पत्र लिखा है। मैं स्कूल से घर गया तो पिता जी के उस कमरे के निकट से निकल कर ऊपर जाने लगा जो सीढ़ियों के पास था। प्राय मैं दरवाजे में खड़ा होकर पिता जी को नमस्ते करता था।

उन्हें समझाना है तो प्यार से समझाइये। उनके हृदय को अपील कीजिये। एक विधि और भी सुनिये। आप के बच्चे को कोई बुरी आदत है तो जब वह सो रहा है तब प्यार से उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहिये, "देख बच्चे! तेरा यह स्वभाव ठीक नहीं इसे छोड़ दे।" बार बार यह बात कहिये, प्रतिदिन कहिये। धीरे धीरे उस का प्रभाव होगा। प्रभाव होने का

वे प्यार से पूछते थे, "क्या हाल है?" मैं कहता "अच्छा" और ऊपर चला जाता। प्रायः वे मुझे बीरम कहते थे। उन से अधिक प्यार मैंने और भी कहीं पाया है, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। परन्तु उस दिन मैं द्वार के पास पहुँचा तो उन्होंने बीरम कह कर नहीं बुलाया। रनवीर भी नहीं कहा। मेरी ओर देखे बिना बोले, 'आइये, रनबीर जी! मैं इस आइये और जी को सुन कर घबराया। वे बोले, "अन्दर पधारिये।" मैं और भी घबराया। वे कुर्सी उठाते हुए बोले, "यहाँ विराजिये।" मेरे लिये यह 'पधारना' जंजाल बन रहा था। मेरे बैठने पर उन्होंने कहा, "आप अंग्रेजी तो पढ़ सकते हैं?" मैंने कहा, "जी, कुछ कुछ पढ़ सकता हूँ।" वे बोले तो इस पत्र को देखिये। और उन्होंने हैडमास्टर महोदय का पत्र मुझे दे दिया। मैंने उसे पढ़ा। वे बोले पढ़ लिया आपने?" मैंने धीरे से कहा, "जी।" वे बोले, कुछ लज्जा आई?" मैंने सिर झुका कर कहा, "जी।" वे बोले, "तो जाओ, आगे से ऐसी बात न करना।" मैं चला आया परन्तु इस बात को आज तक भूल न पाया। सारे जीवन में क्रोध का सब से अधिक व्यवहार जो उन्होंने मेरे साथ केवल उस समय किया जीवन भर में इतना कभी भी नहीं। (रणवीर)

कारण यह है कि यद्यपि बच्चा सोया हुआ है परन्तु उसका मन जाग रहा है। बार बार कहने से आप की आवाज उस के मन में जाकर बैठ जायेगी। स्वयं उस का मन उसके स्वभाव के विरुद्ध प्रेरणा देगा और आदत छुट जायेगी। अमेरीका में इस बात का परीक्षण किया गया। एक छात्रावास में जहाँ बहुत छोटे बच्चे रहते थे अध्यापिका ने देखा कि एक बच्चे को नाखून चबाने की आदत है। एक दो बार उसने कहा, बच्चे का स्वभाव नहीं बदला। तब उसने यह विधि अपनाई। बच्चा सो गया तो वह उसके पास बैठ गई। धीरे से बोली, देख बच्चे तू तो बहुत अच्छा है, बहुत गुण हैं तुझ में, परन्तु तेरी यह नाखून चबाने की आदत अच्छी नहीं इसे छोड़ दे तो तू बहुत अच्छा हो जाये। देख! तू इस आदत को छोड़ दे।" एक बार यह बात उसने कही, सौ बार कही, दो सौ बार कही। प्रातः काल वह बच्चा उठा तो उसकी आदत समाप्त हो चुकी थी। उसके पश्चात् उसने कई दूसरे बच्चों पर परीक्षण किया जिन्हें दूसरी बुरी आदतें थीं, प्रत्येक बार उसे सफलता मिली।

यह बात आप को इसलिये सुनाता हूँ कि अंग्रेज के चले जाने पर भी हमारे देश से अंग्रेजियत नहीं गई। यूरोप और अमेरिका के लोग जब तक किसी बात को न कहें तब तक हमें वह ठीक ही प्रतीत नहीं होती वैसे यह उपाय बिल्कुल भारतीय है परन्तु आप भारतीय करके मानिये या अमेरीकन करके अपने बच्चे पर क्रोध मत कीजिये। घर में क्रोध न कीजिये। अपने कल्याण के लिये क्रोध कीजिये। यह क्रोध प्रभु दर्शन में सब से बड़ी रुकावट है। सारे जप तप अभ्यास का यह नाश कर देता है

वेद ने इसे 'वभीदक' कहा तो अकारण नहीं। वस्तुतः यह बहु भयानक है। साधना के सारे महल को जलाकर यह राख क देता है।

अब तीसरी रुकावट का वर्णन सुनिये। यह रुकावट लोभ। कितने देश इसने उजाड़ दिये, कितनी जातियाँ नष्ट क दीं, कितने परिवारों का सर्वनाश कर दिया। एक परिवार दो भाई हैं, जब तक लोभ उत्पन्न नहीं हुआ तब तक दोनों सुख से शान्ति से रहते हैं। चहुँ ओर लक्ष्मी खेलती है। आदर सम्मान है। लोभ के उत्पन्न होते ही दोनों परस्पर लड़े दोनों विनाश हो गया। इस प्रकार लोभ से विनाश का आखेट हो वाले कई लखपतियों को मैंने टूटे हुए जूते पहने और फटे हु कपड़े पहने रेल के तीसरे दर्जे में यात्रा करते देखा है। यह लो कहीं भी जागे विनाश को जगाता है इस लिये वेद भगवान् कहा:—

मा गृध कस्यस्विद्धनम् ॥ (यजु० ४०।१)

मत लालच कर किसी के धन का क्योंकि यह धन किस का भी नहीं यह तो केवल जीवन व्यतीत करने का साधन है इसका अधिक लोभ करोगे तो भला नहीं होगा। एक व्यक्ति था उसके पास एक मुर्गी थी प्रतिदिन सोने का एक अण्डा देती थी उसे बेच कर वह अपना जीवन निर्वाह करता था। एक दि उसने सोचा मुर्गी प्रतिदिन एक ही अण्डा देती है इसे मार क सारे अण्डे क्यों न निकाल लूं। मार डाला उसने। एक भी अण्डा नहीं मिला। पहले जो एक अण्डा प्रतिदिन मिलता था वह भ समाप्त हो गया। इसलिये शास्त्रों ने कहा लोभ मत करो, लो

से विनाश होता है। लोभ को हमारे ऋषियों ने पाप का बाप कहा है ! प्रत्येक पाप का जन्म इसी से होता है। इसी के कारण व्यक्ति चोरी करता है डाके डालता है अपने देश और जाति से विश्वास घात करता है इसके कारण बेटा पिता को, पति पत्नी को, पत्नी पति को, भाई भाई को कत्ल कर देता है। इसलिए कृपा करके इससे बचो। यह बहुत बड़ा शत्रु है।

परन्तु आज कल तो लोभ का प्रचार इतना बढ़ गया है कि लोग पैसे के अतिरिक्त और कोई बात सुनना ही नहीं चाहते, लोभ को हृदय में लेकर, क्रोध को सीने में बैठाकर, वासना का बोझ उठा कर वे चाहते हैं कि प्रभु के दर्शन हो जायें तो कैसे होंगे ये दर्शन ? एक बार एक सुनार महर्षि दयानन्द के पास आया बोला, "मुझे प्रभु दर्शन करा दीजिये।" महर्षि ने मुस्कराकर कहा, "तीन विवाह तू करा चुका है, प्रतिदिन सोने की चोरी करता है, एक विवाह और कराले, सोने की चोरी अधिक कर, हो जायेगा प्रभु दर्शन, प्रभु का न सही तो किसी और का तो होगा।" एक भंग पीने वाला उनके पास आया, उसने भी प्रभु दर्शन की बात कही तो महर्षि ने योग बल से उसकी वास्तविकता जान कर हंसते हुए कहा, "दो तोले भंग और पीलो भाई ! तुम्हें भगवान् से क्या लेना है ?"

स्मरण रखो इस प्रकार आत्म दर्शन नहीं होता। एक ओर प्रभु दर्शन है दूसरी ओर तुम हो। दोनों के मध्य में कुछ रुकावटें हैं। इन रुकावटों को दूर किये बिना, इन दीवारों को तोड़े बिना तुम अपने प्रीतम के पास पहुँच नहीं पाओगे। जिस लोभ जाल में, मोह जाल में तुम फंसे हो उस से बाहर निकले बिना, तुम्हारा

प्रभु कभी मिलेगा नहीं उस का पता भी मिलेगा नहीं। वहाँ पहुँचने के लिए तो प्रत्येक प्रकार की इच्छा को छोड़ देना पड़ता है इच्छायें छूट जायें, इस इच्छा को भी छोड़ देना पड़ता है—

बाकी अभी है तर्क तमन्ना की आर्ज़ू ।
क्यों कर कहूं कि कोई तमन्ना नहीं मुझे ।।

तब तो दादू के शब्दों में कहना पड़ता है—

खुशी तुम्हारी त्यों करूँ हम तो मानी हार ।
भावें बन्दा बखशिये भावें गही कर मार ।।

तब लोभ और लालच के लिये स्थान नहीं रहता कोई अपना पराया नहीं रहता, अपनापन भी नहीं रहता—

उन का पता मिला तो फिर अपना पता कहाँ ।
अब आशना कहाँ कोई न आशना कहाँ ।।

इसलिये भाई मेरे इन रुकावटों का वर्णन किया वासना क्रोध और लोभ। चौथी रुकावट है 'अचित्ति'। वह मोह जो नाश को पैदा करे। इस मोह से जितना विनाश होता है वह इस समय कहूँगा नहीं समय थोड़ा है और मुझे कहना बहुत कुछ है।

पाँचवीं रुकावट है भय। यह डर जो मन, बुद्धि, चित्त और शरीर सब को नष्ट करता है। आज संसार में इतना संघर्ष हम देखते हैं। इसका कारण भय के अतिरिक्त और क्या है। अमरीका को रूस का डर है रूस को अमेरीका का। दोनों एक दूसरे के भय के कारण सारे संसार को उस लक्ष्य की ओर लिये जाते हैं जहाँ विनाश निश्चित है। दोनों जिस बात से डरते हैं उसकी ओर दौड़े जा रहे हैं। इस पाकिस्तान को देखिये। हमारे देश ने उसे कभी कुछ नहीं कहा परन्तु वह इस के डर से अपना विनाश आप किये

देता है। निश्शुल्क हथियार लेने के लिये उसने अपनी स्वतन्त्रता को गिरवी रख दिया है। अपनी आर्थिक दशा को नष्ट कर लिया, अपने प्रजातन्त्र विधान का सर्वनाश करके डिक्टेटरशिप स्थापित कर ली। क्यों किया यह सब कुछ ? इसलिये कि अमेरीका से निःशुल्क सैनिक सहायता ले सके। और सैनिक सहायता क्यों ली। इसलिये कि उसे भारत से डर लगता हैं। व्यर्थ का भय। परन्तु इसका परिणाम इतना विनाशकारी। हमारा देश कहता है कि डरो नहीं परन्तु वह है कि भयभीत हुआ जाता है। उसे देखकर उस स्त्री की कहानी स्मरण ही आती है जो एक सड़क पर चली जाती थी। उसके निकट ही एक व्यक्ति चला जाता था। उसके एक हाथ में बड़ा सा तरबूज था दूसरे हाथ में दूध से भरा हुआ घड़ा, सिर पर एक भारी गठड़ी। स्त्री उसे देखकर चिल्लाई, "यह मुझे छेड़ेगा।" पास ही एक समझदार व्यक्ति जा रहा था उसने कहा, "भली मानस ! कैसे छेड़ेगा यह ? इसके हाथ खाली नहीं सिर पर बोझ है, दूर यात्रा पर उसे जाना है फिर तू क्यों डरती है ?" स्त्री ने कहा, "यह तरबूज को मुझे पकड़ा देगा, गठड़ी को पीठ पर बांध लेगा तब इस का एक हाथ खाली हो जायेगा फिर यह मुझे छेड़ेगा।" यह दशा पाकिस्तान की है अकारण डरा जाता है, विनाश के मार्ग पर चला जाता है।

कभी कभी इस भय से लाभ भी होता है, सुधार भी होता है। वर्षा और तूफानों का भय न होता तो ये मकान कभी बनते नहीं। सर्दी और गर्मी का भय न होता तो कपड़े न बनते, भूख का भय न होता तो खेती बाड़ी न होती। यह भय जिससे सुधार हो और जीवन स्थिर रहे वह अच्छा है शेष सब खराब।

इस भय के कारण कैसे कैसे तमाशे होते हैं। मनुष्य किस प्रकार नीचे गिरता है और किस प्रकार उल्टी बातें करता है। यह पिछले वर्ष हमने देखा। एक गलत बात हो रही थी। कई व्यक्तियों ने बड़े बड़े लोगों ने अनुभव किया कि यह बात अशुद्ध है फिर भी वे इसलिये चुप रहे कि दूसरे लोग कहीं निन्दा न करें। इस इच्छा से अशुद्ध बात की हिमायत करते रहे कि लोग उनकी प्रशंसा करें। अब वे कहते हैं कि वह बात तो गलत थी परन्तु उस समय जानते हुए भी उस बात को वे करते रहे, इस का साथ देते रहे। इस प्रकार निन्दा के भय से या प्रशंसा की इच्छा से किसी काम को करना मनुष्य को नैतिक पतन की ओर ले जाता है। यह भय भी एक रुकावट है जो आत्मा और परमात्मा के बीच विद्यमान है।

परन्तु यह भय केवल बाह्य जगत् में ही नहीं भीतर के उस जगत् में भी है जिसे साधक लोग ध्यान के समय देखते हैं। इस ध्यान में कभी कभी इतने सुन्दर दृश्य दिखाई देते हैं कि मनुष्य उन्हें देखते रहना चाहता है। परन्तु कभी कभी भयानक वस्तुएँ भी दिखाई देती हैं, बहुत भयावने दृश्य। उन्हें देख कर मनुष्य का हृदय दहल जाता है। एक भाई ने मुझे बताया कि वे ध्यान का अभ्यास करते हैं, कुछ उन्नति भी कर ली है, तभी एक दिन ऐसा ही एक भयानक दृश्य उन्हें दिखाई दिया। डर कर उन्होंने आँखें खोल दी उसके पश्चात् कभी ध्यान ही नहीं लगा। प्रयत्न करने पर भी कोई वस्तु दिखाई नहीं दी।

देखिये इस प्रकार ध्यान में जो भयानक दृश्य दिखाई देते हैं, वे बुरे नहीं उन से डरना या घबराना नहीं चाहिये। वास्तव में

ये भयानक दृश्य हमारे अपने मन की मैल हैं। ध्यान के साबुन से धीरे धीरे यह मैल धोई जाती है। इस लिए इस मैल को देखकर घबराना नहीं चाहिये। प्रार्थना करनी चाहिये कि वह शीघ्र दूर हो जाये। हलवाई लोग खाण्ड की चाशनी बनाते हैं तो थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात् उस में थोड़ा थोड़ा दूध डाल देते हैं। प्रति-बार जब वह दूध डालता है तब मैल ऊपर आती है हलवाई उसे निकाल कर बाहर कर देता है। इसी प्रकार बार बार करने में ऐसी चाशनी बन जाती है जिसमें मैल का चिन्ह भी नहीं रहता यही बात ध्यान में दिखाई देने वाले भयानक दृश्यों के सम्बन्ध में भी है। जाप के दूध से मन की चाशनी में यह मल ऊपर आती है इसे धीरे धीरे दूर करते जाइये अन्त में मन की यह चाशनी निर्मल हो जायेगी।

परन्तु यह तो अभी पाँच रुकावटों का वर्णन हुआ वासना, क्रोध, लोभ, मोह और भय। छटी रुकावट है चिन्ता।

विचित्र प्रकार की रुकावट है यह। इस से बनता कुछ भी नहीं बिगड़ता सब कुछ है। परन्तु बने या न बने चिन्ता करने वाले समझते तो नहीं कभी एक बात की चिन्ता कभी दूसरी बात की। यह संसार है इसमें सुख भी है, दुःख भी है कर्म के फल भोगे विना यहां से छुटकारा नहीं होता।

देह धरे का दण्ड है सब काहू को होय।
ग्यानी भुगते हंसि हंसि मूर्ख भुगते रोय॥

जब भुगतना ही है तो फिर रोना किस लिये : हँस कर भुगत लो और फिर चिन्ता की बात इस संसार में है क्या ? सब से बड़ी बात तो मृत्यु है न ? वह है निश्चित। रोते रहिये तो भी मरना है, हंसते रहिये तो भी।

रोवन हारे भी मरे मरे जलावन हार ।
हा हा करते वे मरे काहे करूँ पुकार ॥

रोने वाले बचे नहीं । हाहाकार करने वाले भो बचे नहीं फिर यह हाय तोबा किस लिये ?—

यह तो चला चली का मेला है भाई यहाँ चिन्ता करके मिलेगा क्या ?

जो उगा वह काटिये, फूला सो कुम्हलाय ।
जो बना सो गिर पड़े जो आया सो जाय ॥

जाना तो है ही चिन्ता करके जाओ या बिना चिन्ता के जाओ जाये बिना निर्वाह नहीं—

पानी का ज्यूं बुलबुला यूँ हमारी जात ।
एक दिन छिप जायेंगे तारे ज्यूं प्रभात ॥

नहीं, मृत्यु से भी डरो नहीं । इसकी चिन्ता भी मत करो, चिन्ता से कभी कुछ होता नहीं । भगवान् तो आनन्द रूप है आनन्द की ज्योति फैल रही है वहाँ, उन्हें मिलना है तो शोक और चिन्ता के इस अन्धेरे को दूर करके मिलना होगा । चिन्ता को त्याग देना स्वयं एक योग है—

सर्व चिन्ता परित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते ॥

सब चिन्ताओं को त्याग देने से और निश्चिन्त हो जाने से योग होता है ।

ये हैं प्रभु मिलन के मार्ग में रुकावटें, वासना, क्रोध, लोभ, मोह, भय, चिन्ता और शोक, इन्हें दूर कर दीजिये तो प्रभु का दर्शन होता है अवश्य । परन्तु यह सारा झगड़ा जहां से आरम्भ होता है वह है वासना । सब दुःखों की जड़ वह है, सब रुकावटों

की माँ। इस से बचने का एक ही उपाय है कि नर बनो नारी बनो। नर और नारी का अर्थ क्या है यह मैने पहले बताया। आत्म ज्ञान जिसका सारथी है और जिसने मन की लगाम को अपने वश में कर लिया है वह नर है वह नारी है उसे नारायण का दर्शन होता है। ये नर और नारायण आपस में मिलते हैं अवश्य।

इस सम्बन्ध में एक बात और कहना चाहता हूँ यह मेरे अनुभव की बात है। किसी कार्य में भी अति न करो : भगवान् के भजन में भी अति करना कभी कभी रुकावट का कारण बन जाता है। एक व्यक्ति है, विवाह कर लिया उसने। कुछ बच्चे हो गये। तभी प्रभु भजन का शौक जाग उठा अच्छी बात है यह। इस शौक का जागना सौभाग्य है। परन्तु यदि अपने बीवी बच्चों को भूल कर, अपने कर्तव्य को छोड़कर वह व्यक्ति हर समय प्रभु भजन में लगा रहे तो बहुत देर यह बात चलेगी नहीं। एक दिन ऐसी अशान्ति उसके हृदय में उत्पन्न होगी कि सब किया कराया चौपट हो जायेगा यह अति जिस प्रकार बुरी है उसी प्रकार यह अति भी बुरी है कि प्रभु को ही भूल जाये हर समय नावल, सिनीमा, सर्कस, नाच रंग और तमाशे ही देखता रहे। इस अति से भी विनाश होता है।

भगवान् बुद्ध से पूर्व यज्ञ की प्रथा बहुत जोरों पर थी। उस का रूप बिगड़ गया था। इस बिगड़े रूप की अति हो रही थी। पशुओं को इनमें काटा जाता था। कभी कभी नर बली भी दी जाती थी। बुद्ध ने इस बात को देखा। यज्ञ के विरुद्ध ही प्रचार कर दिया एक अति पहले हो रही थी दूसरी अति बुद्ध ने कर

दी । लोगों ने पूछा, "तुम यज्ञ को मानते हो ?" बुद्ध बोले 'नहीं ।' उन्होंने पूछा, "वेद को मानते हो ?" बुद्ध बोले, "नहीं ।" प्रश्न हुआ ईश्वर को मानते हो ?" बुद्ध ने उत्तर दिया "नहीं" संसार पहले एक अन्धकार में था तब दूसरे अन्धेरे में जा गिरा । बुद्ध के पश्चात् जगद्गुरु शंकराचार्य आये । उन्होंने एक और अति की । बुद्ध ने कहा था "ईश्वर नहीं है ।" शंकर ने कहा 'सब कुछ ईश्वर ही ईश्वर है उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं ।" शताब्दियों के पश्चात् महर्षि दयानन्द आये । उन्होंने वास्तविकता को संसार के समक्ष रक्खा । अति का मार्ग छोड़कर सत्य का मार्ग अपनाते हुए कहा ईश्वर भी है आत्मा भी है, प्रकृति भी है । प्रकृति सत् है, आत्मा सत् चित् है ईश्वर सत् चित् और आनन्द है । यह अति सदा कार्य को बिगाड़ती है ।

अति रूपेण वै सीता अति गर्वेण रावणः ।
अति दानात् बलिर्बद्धो ऽति सर्वत्र वर्जयेत् ॥

बहुत रूपवती होने से सीता संकट में फंसी बहुत अभिमानी होने से रावण । बहुत दान करने से महाराज बलि बांधे गये । यह अति अच्छी नहीं अंगरेजी भाषा में भी कहा:—

Too much of every thing is bad,

अति हर बात में बुरी है:—

अति का भला न बोलना, अति की भली न चुप्प ।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धुप्प ॥

इन सब की सब रुकावटों को दूर करके भक्त प्रार्थना करता है:—

अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥

(ऋ० ८ ७।८६।७)

इस मन्त्र का अर्थ है:—

"ओ मेरे प्रभु ! मेरे आनन्द को देने वाले देवता ! मैं पापों को छोड़कर तेरा दास बनकर, तेरे पास आ गया हूँ। मेरे चमकते हुए परमेश्वर ! कृपा कर, तू दानियों का दानी महा दानी है, सब का पालन करने वाला है, सब का स्वामी है। जो अन्धेरे में भटकते हैं उन्हें तू प्रकाश देता है, उन के अज्ञान को ज्ञान में बदल कर, उन्हें अविद्वान् से विद्वान् बना कर उनके भक्ति भरे गीत सुनता हुआ तू उन्हें उस मार्ग पर ले जाता है जिस का लक्ष्य आनन्द है, परम आनन्द है।"

और सुनो यह अज्ञान को ज्ञान से बदलने की बात। अन्धेरे में भटकते हुए प्रकाश दिखाने की बात। केवल कविता नहीं यह सत्यता है। ईश्वर बोलता है। आवाज देता है। स्पष्ट रूप से कहता है "ऐसा कर, ऐसा न कर।' महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में स्पष्ट लिखा है:—

"जब आत्मा मन और इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता व चोरी आदि बुरी व परोपकार आदि...अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है। उसी समय जीव की इच्छा ज्ञान आदि इसी इच्छित विषय पर झुक जाती है, उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय निश्शंकता और आनन्द उत्साह उठता है जो जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।

(सातवाँ समुल्लास)

ईश्वर प्रति क्षण प्रेरणा देता रहता है। हर समय सावधान

करता है। हर समय उसकी आवाज आती है, "रुक जाओ, आ न बढ़ो, खतरा है।"

कई भाई कहते हैं कि हम को तो ऐसी आवाज सुनाई न देती। वस्तुतः उन्हें सुनाई नहीं देती। परन्तु इस का यह अर्थ न कि उनके भीतर यह ध्वनि उत्पन्न नहीं होती। आप एक क में बैठे हैं, बिल्कुल एकान्त है, बिल्कुल नीरवता शान्ति। दीव पर लगी घड़ी की आवाज के अतिरिक्त कोई आवाज नहीं। टि टिक टिक लगातार वह चल रही है। तभी नीचे बाजार से जलूस निकलने लगता है। उसके बाजों की आवाज कान प डालती है। नारे लगाने वालों ने आसमान सिर पर उठा र है। आप को घड़ी की आवाज आनी बन्द हो जाती है। आ आश्चर्य से दीवार की ओर देखते हैं "क्या घड़ी बन्द हो गई नहीं बन्द हुई तो प्रतीत नहीं होती। उस का पैण्डुलम हि रहा है फिर आवाज क्यों नहीं आती ? तभी आप को ध्य आता है आप उस खिड़की को बन्द कर देते हैं जो बाजार ओर खुलती है। उस के बन्द होते ही नीचे से आने वाला को हल बन्द हो जाता है। घड़ी की आवाज फिर सुनाई देने लगती

सुनो मेरी माताओ ! सुनो मेरे बच्चों। जब तक बाहर वाले इस कोलाहल की आवाज को, क्रोध की आवाज को, वा की आवाज को, लोभ, मोह, भय आदि की आवाज को रो नहीं तब तक हृदय के अन्दर बैठे हुए प्रभु की आवाज सुनाई देगी। यह आवाज सुननी है तो उस खिड़का को बन्द कर दो संसार के बाजार की ओर खुलती है—

सुमरन सुरत लगाइके मुखते कछु न बोल।
बाहर के पट बन्द कर अन्दर के पट खोल ॥

तब आयेगी आवाज। प्रभु तो वहाँ बैठे हैं, बाहर जाने की
ावश्यकता नहीं ढूँढ ने की आवश्यकता नहीं।

दादू जिन कंकर पत्थर सेविया सो अपना मूल गंवाय।
अलख देव अन्दर बसे, बाहर काहे जाये।
कई तो दौड़े द्वारका, कई काशी को जायें।
कोई मथुरा को हैं चले, साहब घट के मांहि ॥
वह तो अन्दर बैठा है, जागो ! उस की आवाज सुनो—
ज्यों तिल मांही तैल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा प्रभु तुझ में बसे जाग सके तो जाग ॥

जाग कर सुनो उसकी आवाज सुनाई देगी। उसका दर्शन
ी होगा। तब माँग लेना जो मांगना है। सब कुछ मिलेगा उस
रबार से।

ओं प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्तेऽस्तु वयं स्याम पतयो रयिणाम् ॥

राम नाम का धन मिलेगा तब। ऐसा धन जो इस संसार में
ी काम आता है, परलोक में भी। जिसके बाद कुछ माँगने की
ावश्यकता नहीं रहती। शायद इसी दशा की ओर संकेत करके
र्दू के एक कवि ने कहा था:—

देने वाले तुझे देना है तो इतना दे दे।
कि मुझे शिकवाये कोताही दामा हो जाये ॥

परन्तु यह शिकायत की बात फिर सही। अब समय हो गया
सलिये,.....   ॥ ओ३म् तत् सत् ॥

पांचवां दिन

प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

परसों वासना की बात बताई थो, कल भी व
आज फिर एक सज्जन को शंका हो गई है। वे पूछते हैं कि व
के बिना कर्म कैसे हो सकता हैं? प्रतीत होता है कि वासना
झगड़ा सरलता से समाप्त नहीं होता। वासना के बिना कर्म
अर्थ है निष्काम कर्म। ये भाई पूछना चाहते हैं कि निष्काम
कैसे हो सकता है? कोई न कोई इच्छा तो कर्म के साथ रह
है फिर वासना से छुटकारा कैसे मिले?

परन्तु सुनिए निष्काम कर्म भो होता है संसार में। वास
बिना कर्म से संसार चलता भी है। ऐसे कर्म से जीवन भी
है। जीवन दो प्रकार का है एक Objective अर्थात् संसार के
उसके भोग विलास के लिए, उसके दृश्यों के लिए, शब्दों के
गन्धों के लिए. दूसरा Subjective अर्थात् आत्मा के लिए।
बातों के लिए जिनसे आत्मा का उत्थान और भला होत
पहली प्रकार का जीवन वह है जिसमें व्यक्ति संसार के जंज
भी ऊपर नहीं उठ पाता। प्रातः से शाम तक, सायं से प्रात
एक ही चिन्ता रहती है उसे कि धन को किस प्रकार इकट्ठा
शक्ति चाहिए, शासन शाहिए, मकान चाहिए, सम्पत्ति च
सन्तान चाहिए, धन चाहिए फिर और धन चाहिए तब
चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य फंसा रहता है। देखता नहीं कि
दिन लोग मर रहे हैं। देखता नहीं कि;—

आये हैं सो जायेंगे राजा रंक फकीर।
इक सिंहासन चढ़ चले इक बँधे जात जंजीर॥
माटी कहे कुम्हार को क्या तू रूँधे मोय।
एक दिन ऐसा आयेगा मैं रूँधूँगी तोय॥
एक दिन ऐसा आयेगा कोउ काउ को नाहिं।
घर की नारी का कहे तन की नारी नाहिं॥
माली आवत देख कर कलियाँ करें पुकार।
फूलि फूलि चुन लिए कल हमारी बार॥
कबीरा रसरी पाँव में का सोवे सुख चैन।
सांस नगारा कूँच का बाजत है दिन रैन॥
दस द्वारे का पींजरा ता में पंछी पौन।
रहने को अचरज महा जाये अचम्भा कौन॥

यह सब कुछ वे देखते हैं परन्तु देखकर भी कुछ नहीं देखते। इस संसार को इकट्ठा करने का यत्न करते हैं जो कभी किसी के साथ गया नहीं। इसके लिये पाप करते हैं। बेईमानी करते हैं, रिश्वत लेते हैं, ब्लैक मार्किट करते हैं, खाने पीने की वस्तुओं में मिलावट करते हैं। देश के साथ द्रोह करते हैं, देश की एकता को मिटाने के लिये ऐसे कार्य करते हैं जो अमरीका वाले चाहते हैं। निर्धन और दुर्बल पर अत्याचार भी किये जाते हैं। यह सब कुछ इस विश्वास के साथ कि यह शक्ति, यह शासन, धन और सम्पत्ति पत्नी और बच्चे सब को साथ ले जायेंगे परन्तु साथ तो कुछ भी जाता नहीं। एक दिन संग्रह करने वाला ही रिक्त हस्त चला जाता है। कोई गठड़ी बाँधकर कुछ भी साथ नहीं ले जाता। हां

केवल आँसू इसके नेत्रों में भरे रहते हैं केवल पाप उसके साथ
है। यह है एक प्रकार का जोवन। दूसरी प्रकार का जीवन
है जिस में मनुष्य कर्म करता है तो कर्तव्य की भावना से।
विश्वास के साथ कि सब कुछ यहीं रह जाता है। इसके लिए पाप
करूँगा। अन्याय नहीं करूँगा। किसी को कष्ट नहीं दूँगा।
व्यक्ति नौकरी करता है तो रिश्वत नहीं लेता, दुकानदारी कर
तो ब्लेक मार्किट नहीं करता। देश का लीडर है तो देश के
विश्वासघात नहीं करता। कोई भी काम करे उसे करते
यह नहीं भूलता कि मैं आत्मा हूँ। इस प्रकार आत्म भाव से
हुआ कर्म बन्धन को पैदा नहीं करता। उससे कोई वासना नहीं
जब वासना नहीं बनती तो आवागमन का चक्र भी नहीं बनता

यह है निष्काम कर्म। यह है वह काम जो वासना के
होता है।

परन्तु अब वासना को छोड़िये उस भक्त की पुकार
जिसका वर्णन मैं कल कर रहा था जिसने ऋग्वेद के (७।८
मन्त्र में कहा है—

महाराज! मुझे दोषों का पता लग गया। अब मैं तेरे
गा रहा हूँ। ये सुन्दर मन मोहने गीत। अब कृपा कर ये
मेरे हृदय में बैठ जायें फूलों की सुगन्ध जैसे वस्त्रों में बस जाती
वैसे ये गीत मेरे अन्दर बस जायें और कृपा कर इन गीतों
गाता गाता मैं तुझ से मिल जाऊँ।

योग का अर्थ है मिलाप। इसी मिलाप की चाहना क
है यह भक्त।

यजुर्वेद में इसी मिलाप का वर्णन करते हुए कहा—

"तेरे साथ मेरा मिलना कड़वा न हो जाये। तेरे साथ मेरी मित्रता बूढ़ी न हो जाये।"

परन्तु इस मिलाप का साधन क्या है? जिसे हम मिलना चाहते हैं वह कहीं दूर तो है नहीं। गुरु नानक जी ने बड़ा सुन्दर कहा है कि:—

पुष्प मध्य ज्यूं बास बसत है, मुकर माहीं ज्यूं छाईं।
तैसे तुम में हरि बसत है, घट ही खोजो भाई॥

हमारे चहुँ ओर है वह। ऊपर वह है, नीचे वह है भीतर वह है, बाहर वह है। हमारी दशा उस मनुष्य की भाँति है जो पानी के बीचमें खड़ा हो और चिल्लाता जाता हो कि मुझे प्यास लगी है।

पानी हर तरफ, पीने को एक बूंद नहीं। जल के आर पार वार में मीन प्यासी घूम रही है। परन्तु पानी का अर्थ केवल पानी नहीं ईश्वर भी है। हर तरफ आनन्द का वह भण्डार विराजमान है; उसके भीतर हम बैठे हैं, उसके अन्दर लेटे हैं उस में सांस लेते हैं, सोते हैं, जागते हैं और उसी के बिना प्यास से बेचैन हुए जाते हैं। परन्तु ऐसा होता क्यों है केवल इसलिये कि प्यास की अग्नि नहीं जली। प्रीतम के प्रेम की आग जब प्रज्वलित होगी, जब उससे मिलने को मन तड़प उठेगा जब उसके बिना सब बेसूद, बेरस, व्यर्थ प्रतीत होने लगेगा तब उस निर्जल वायु में, सूखे होठों की प्यास बुझाने के लिये आँसुओं का पानी जाग उठेगा। यह प्रकृति का नियम है जब गर्मी बहुत होती है तब वर्षा आती है। वर्षा आये तो वायु में फैली हुई धूल स्वच्छ हो जाती है, मल दूर हो जाता है निर्मलता जाग उठती है इसलिये जब प्रीतम के वियोग में आंसू बहें तो घबराओ नहीं, ये आंसू तुम्हारी सफ-

लता का पहला चिन्ह हैं। ये तुम्हारे मन की मैल को धो देंगे और मैल के धुल जाने पर वह प्रीतम स्वयं मुस्कराता हुआ दिखाई देगा जो तुम्हारे भीतर और बाहर है, ऊपर और नीचे है, चहुँ ओर है। ईश्वर पाषाण हृदय नहीं, निर्दयी नहीं वह तो अनन्त दया का भण्डार है। प्यार की अग्नि जब प्रज्वलित हो जाती है, वियोग की गर्मी जब जलाने लगती है और उस गर्मी के कारण जब उमड़ते बादलों की भांति आँसू बरसने लगते हैं तब वह अतिशय सुन्दर मन मोहन प्रीतम स्वयं आगे बढ़कर कहता है "आओ मेरे भक्त ! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।

कबीरा मन निर्मल भया जैसे गंगा नीर।
पाछें पाछे हर फिरें कहत कबीर कबीर ॥

परन्तु भक्त कहीं गया नहीं, भगवान भी कहीं गये नहीं। दोनों पहले भी यहीं थे। यह ज्ञान भी था कि ईश्वर हर तरफ, प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक वस्तु में है। यह भी पता था कि मनुष्य के शरीर को, संसार के शरीर को, सृष्टि के शरीर को वह परम पिता परमात्मा अपनी अनन्त शक्ति से चला रहा है।

तब प्रभु प्रतीक्षा किस की कर रहे थे, केवल इस बात की कि भक्त के हृदय में ज्वाला जल उठे। परन्तु यह प्यार अकेला तो कुछ नहीं करता। अकेला ज्ञान भी कुछ नहीं करता। अकेला ज्ञान उस मशीन की भांति है जिसे तेल नहीं दिया गया, चलते ही यह मशीन टूट जायेगी, विनाश जाग उठेगा। अकेला प्यार उस तेल की भाँति है जो मशीन से दूर पड़ा है इस से भी कुछ होगा नहीं, अन्धकार छा जायेगा हर तरफ। कोरा शुष्क ज्ञान व्यर्थ है, कोरा प्रेम अन्धेरे में चिल्लाती हुई

पुकार की भाँति हैं। दोनों जब मिलते हैं तब वह अवस्था उत्पन्न होती है जिस में भगवान आगे बढ़कर कहते हैं, "आओ मेरे भक्त ! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।"

इसी बात को अथर्ववेद के दसवें काण्ड में बहुत सुन्दरता से कहा गया है—

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः ॥

वह महान् प्रजापति मनुष्य की बुद्धि को उसके हृदय के साथ सी कर, माथे से ऊपर सिर से भी ऊपर, प्राण रूप होकर प्रत्येक वस्तु को चलाता है गति देता है।

इस सी देने का अर्थ क्या है। मनुष्य के शरीर में हृदय और मस्तिष्क स्थूल और सूक्ष्म नाड़ियों से आपस में जुड़े हुए हैं, परन्तु सी देने का अर्थ केवल जोड़ देना नहीं। मस्तिष्क में तर्क रहता है, ज्ञान रहता है, हृदय में श्रद्धा का और प्यार का निवास है। वह महा शक्ति इस ज्ञान और प्यार को मिला कर प्राण रूप होकर सारे संसार को चला रही है। इस का पता तब लगता है जब मस्तिष्क में बैठा हुआ ज्ञान और हृदय में बैठा हुआ प्यार दोनों एक हो जाते हैं।

नवयुवक श्री मुन्शी राम महर्षि दयानन्द के पास गये बोले, "मैं ईश्वर को नहीं मानता आप बताइये कि ईश्वर क्या है?" महर्षि ने अपना विस्तृत ज्ञान उसके समक्ष रख दिया उनकी प्रत्येक युक्ति का उत्तर दे दिया उन्हें निरुत्तर कर दिया। लाला मुन्शी राम बोले, "महर्षि मेरा मस्तिष्क तो मान गया है परन्तु मेरा हृदय नहीं मानता।" महर्षि हँसते हुए बोले, "हृदय भी मान

जायेगा मुन्शी राम उसमें प्यार की ज्वाला जलेगी तो श्रद्धा की ज्योति जाग उठेगी ।" और अन्त में यह ज्योति जगी । यही अवस्था पं० गुरुदत्त की हुई—वह भी नास्तिक थे, परन्तु गुरुदत्त के लिये यह ज्योति जगी उस समय जब ऋषि अन्तिम सांस ले रहे थे । उन्होंने देखा कि महर्षि अपने शरीर के अन्त की प्रतीक्षा कर रहे हैं। फोड़ों ने शरीर को दर्द की छावनी बना दिया है । देखा कि इस भयानक दर्द के होते हुए भी महर्षि इस प्रकार शान्त हैं जैसे कुछ हुआ ही न हो । इस प्रकार मुस्करा रहे हैं जैसे मृत्यु नहीं अपितु अनन्त प्रसन्नता उनके निकट आ रही है । उस समय उनके हृदय का द्वार खुल गया वह श्रद्धा जाग उठी जो कोरे ज्ञान से युक्ति और तर्क से कभी जागती नहीं । गुरुदत्त को ऐसा प्रतीत हुआ कि जिस महाशक्ति को वे खोजते फिरते थे वह उनके सामने खड़ी है । हाथ फैलाये कह रही है "आओ मेरे भक्त ! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ ।"

यह है हृदय और मस्तिष्क को सी देने का अर्थ । हृदय में श्रद्धा उत्पन्न कर, मस्तिष्क में ज्ञान दोनों को सी दे । फिर जो आवाज सुनाई देगी उसके अनुसार चल, ईश्वर मिलेगा अवश्य। प्रेम जब बढ़ता है तो ज्ञान का रूप धारण कर लेता है, ज्ञान में जब सचाई आती है तो प्यार जाग उठता है प्रेम ज्ञान का रस है, ज्ञान प्रेम की ज्योति गाढ प्रेम से ज्ञान उत्पन्न होता है और अगाध ज्ञान से प्रेम जागता है । दोनों जब मिलते हैं तब कल्याण जाग उठता है । अंग्रेजी भाषा के एक कवि ने इस बात को बहुत सुन्दर शब्दों में कहा—

Wisdom is the lamp of love,
And love is the oil of the lamp,

ज्ञान प्यार का दीपक है, परन्तु इस दीपक में जो तेल जलता है वह प्यार है। प्रेम के बिना ज्ञान कुछ नहीं, ज्ञान के बिना प्रेम कुछ नहीं। दादू जी ने कोरे ज्ञान को बात कहते हुए गाया—

मसी कागद के आसरे, क्यों छुटे संसार।
प्रभु बिना छुटे नहीं, दादू भ्रम विकार॥

कोरे ज्ञान से बड़ी बड़ी बातें कहने से और बड़े बड़े लेख लिखने से तो यह जन्म मरण का बन्धन समाप्त नहीं होता वह तो प्यार से समाप्त होता है और यह प्यार बहुत सरल नहीं मेरे भाई।

प्रेम प्याला जो पिये सीस दक्षिणा देय।
लोभी सीस न दे सके नाम प्रेम का लेय॥

इसी बात को गुरु गोविन्द सिंह जी ने कहा था कि:—

जो तोहे प्रेम करन का चाव।
सिर धर तली, गली मोरी आव॥

सिर देना पड़ता है इसमें, इस में, अपने आप को मिटा देना पड़ता है:—

कबीरा यह घर प्रेम का खाला का घर ना हीं।
सीस उतारे कर धरे सो पैठे घर माहीं॥

यह तो सिर देने का सौदा है भाई—

प्रेम न खेती ऊपजे प्रेम न हाट बिकाय।
राजा प्रजा जस रुचे सिर दे सो ले जाय॥

प्रेमी हैं भी वही जो मरने से न डरे—

जब लग मरने से डरे तब लग प्रेमी नाहीं ।
बड़ी दूर है प्रेम घर समझ लेवो मन माहीं ॥

परन्तु देखो यह सौदा मंहगा नहीं, यह सिर एक न एक दिन जायेगा अवश्य । इसे रहना है नहीं । प्रभु के प्यार में दे दो तो वैसे ही ज्योति जाग उठेगी जैसे दीपक की बत्ती का सिर काटने से उसकी लौ तेज हो उठती है नहीं तो सिर भी जायेगा अन्धेरा भी रहेगा—

सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की कटे उजियारा होय ॥

विचित्र संसार है प्रेम का । यहाँ मृत्यु में जीवन मिलता है विनाश में निर्माण जागता है अपना मन मिटा दो । अहंकार को समाप्त कर दो । अपने आपको प्रभु के अर्पण कर दो फिर प्रभु भी मिलते हैं । यह मरा हुआ अहंकार जन्म मरण के बन्धन को खा जाता है । यह हथेली पर सिर को रख कर आगे बढ़ता हुआ प्यार परम आनन्द के उस जगत् को जगा देता है जिससे अधिक सुन्दर और कोई वस्तु नहीं—

घर जालूं घर उबरे ।

घर को जला दूँ तो घर बच जायेगा ।

घर राखूँ घर जाई ॥

और इस घर को बचाने का प्रयत्न करूँ तो यह जलेगा अवश्य एक दिन चिता में धधक उठेगा ।

एक अचम्भा देखिया मरा काल को खाय ।

यह है आश्चर्य । प्रेम में अपना आप मिटा दो तो यह मरा हुआ अपना पन जन्म मरण के बन्धन को समाप्त कर देता है काल

का महाकाल बन कर उसको खा जाता है।

दिया अपनी खुदी को जो हम ने मिटा।
वह जो पर्दा सा बीच में था न रहा॥
रहा पर्दा में अब न वह परदा नशीं।
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा॥

कई लोग आकर कहते हैं कि "प्रभु दर्शन करा दो।" मैं कहता हूँ दर्शन हो सकता है परन्तु मूल्य दोगे ?" तो वे आश्चर्य से कहते हैं "प्रभु दर्शन का भी लगेगा, क्या मूल्य मूल्य होता है क्या ?" हाँ भाई प्रभु दर्शन का भी मूल्य देना पड़ता है। बहुत मूल्यवान् वस्तु है वह। सिर देने पर यदि वह मिल जाये तो समझना कि बहुत सस्ती मिल गई है।

परन्तु आज सिर देने की बात सुनता कौन है ? आज तो लोग चाहते हैं कि मूल्य दिये बिना ही सब कुछ हो जाये। महर्षि दयानन्द ने ऐसे लोगों को अपने ग्रन्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में बहुत सुन्दर उत्तर दिया है:—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां आत्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬस्वर यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्॥

इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए महाराज ने कहा "उस ईश्वर के अर्थ सब कुछ अर्पण कर देना चाहिये। सब मनुष्य अपनी आयु को ईश्वर की सेवा और उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करें अर्थात् अपना प्राण भी ईश्वर के अर्पण करें। देखना सुनना, वाणी मन और विज्ञान, चारों वेद पढ़कर जो पुरुषार्थ किया है,

जो प्रकाश जो सब सुख जो उत्तम कर्मों का फल और स्थान यह सब परमात्मा की प्रसन्नता के लिये समर्पित कर देना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य अपनी सब वस्तुएं परमेश्वर के अर्थ समर्पित कर देता है उसके लिये परमात्मा सब प्रकार के सुख देता है। अपना सब कुछ उसी प्रभु के अर्पण कर दो।''

महर्षि ने कहा जब तक पूरी तरह से आत्म समर्पण नहीं करोगे तब तक प्रभु दर्शन की आशा न करो। प्रेमी बनना चाहता है भाई तो कुछ भी छिपा नहीं। सब कुछ प्रीतम को दे दे। यह सब कुछ तेरा है नहीं, यह तो उसी का है उसे छिपा के न रख।

तू छिपा छिपा के न रख इसे, तेरा आइना है वह आइना।
कि शिकिस्ता हो तो अजीज तर है निगाह आइना साज में॥

आगे बढ़ो आत्म समर्पण करने के लिये:—

सारी दुनिया से हाथ धो कर देखो।
जो कुछ भी रहा सहा है खो कर देखो॥
क्या अर्ज करूँ कि इसमें क्या लज्जत है।
इक मर्तबा किसी के होकर देखो।

और सचमुच अपना है भी क्या सब कुछ उसी का तो है। मीरा के शब्दों में:—

तात मात भ्रात बन्धु अपना नहीं कोई।
छोड़ दी है लोक लाज होनी हो सो होई॥

तब चिन्ता किस की? भय किस का? वियोग की धरती पर आंसुओं के जल से सींच सींच कर प्यार की बेल भक्त ने बो दी है। वह प्यार ही उसका सब कुछ है—

आंसुओं जल सींच सींच प्रेम बेल बोई।
अब तो बेल फैल गई अमृत फल होई ।।

फैल गई यह बेल, अब भक्त के लिये चैन कहाँ ? शान्ति कहाँ ? धैर्य से बैठ जाना कहाँ—

हे रे मेरे पार निकल गया, साजन मारया तीर।
बिरह ज्वाल लगी उर अन्तर प्राण धरत नहीं धीर ।।

तीर लग गया तब धैर्य कहाँ रहेगा ? मूलशंकर को लगा यह तीर। शिव पूजा की रात को वे रात्रि भर जागते रहे आँखें खोले, ताकि भगवान् शंकर के दर्शन हो जायें यह दर्शन नहीं हुआ तो अशान्ति और भी बढ़ गई। पिता ने सोचा इस की बेचैनी की चिकित्सा विवाह है। विवाह हो जाये तो इसका मन शान्त हो जायेगा। परन्तु मूल शंकर तो अपनी बेचैनी के कारण को जानते थे। उन्होंने देखा कि यह मिठाइयाँ नहीं बन रही हैं, कपड़े नहीं बन रहे, बाजे नहीं बज रहे अपितु उनके लिये जंजीरें तैयार हो रही हैं। मन ही मन में उन्होंने कहा, "मैं ये जंजीरें नहीं पहनूँगा। जिसे खोजने का निर्णय किया है उसे खोजे बिना शान्ति से बैठूँगा नहीं।" और बजते रहे बाजे। सिलते रहे कपड़े, बनती रही मिठाइयाँ वे सब को छोड़ कर चले गये। कहाँ कहाँ पहुँचे ? एक धुन को लेकर, यही एक गीत को अपनाते हुए—

जिस ने बनाई बांसुरी गीत उसी के गाये जा।
सांस जहां तक आये जाये एक ही धुन बजायेजा ।।

तब तक उन्होंने चैन नहीं लिया। जब तक दर्शन नहीं हो गये, हृदय को ग्रन्थियाँ नहीं खुल गई।

भिद्यते हृदय ग्रन्थि छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।।

जब तक यह अवस्था उत्पन्न नहीं हो गई। यह है प्यार की महिमा, प्यार की आग को उत्पन्न करो। प्रभु के दर्शन होंगे अवश्य। अपनापन मिटा दो, अहंकार को समाप्त कर दो तो वह मिलेगा अवश्य। जिसके मिल जाने के पश्चात् किसी से मिलने की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु ये सिर देने की बातें, यह अपने आप को न्यौछावर कर देने की भावना। यह प्यार में पागल हो जाने की अवस्था सब सरल तो नहीं। इस का आधार है आत्म समर्पण, अपने आप को भूल कर अपने आपको प्रीतम के चरणों में अर्पित कर देना। परन्तु आज लोग प्यार पीछे करते हैं यह प्रश्न पहले पूछते हैं कि "मुझे क्या मिलेगा ?" परन्तु प्यार में व्यापार कभी होता नहीं, इसलिये व्यापार की भावना से किया हुआ प्यार कभी सफल भी नहीं होता। सफलता चाहते हो तो ऐसा प्यार करो जिस में स्वार्थ नहीं, अपना पन नहीं। ऐसा प्यार भगवान् के साथ नहीं, भगवान् के बनाये हुए प्राणियों के साथ भी करो वेद भगवान् ने ईश्वर को विश्व रूप कहा है। यजु० १६।२५ मन्त्र में भक्त हाथ जोड़ कर मस्तिष्क झुकाकर कहता है।

नमो विरूपेभ्यों विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ।।

नमस्कार है उस अनन्त रूप को, उस विश्व रूप को। यह सारा उसी का तो है। इसे भी स्वार्थ भावना को छोड़कर प्यार करो। ऐसा करने से वह विश्व प्रेम उत्पन्न होगा जो वर्तमान संसार की प्रत्येक समस्या की चिकित्सा है। इस विश्व प्रेम के कारण महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के नियम बनाते समय लिखा है कि:—

"संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

इस नियम को ध्यान से देखिये। इस में कहीं भी किसी सम्प्रदाय का, किसी देश का, किसी जाति का वर्णन नहीं। इस में यह नहीं कहा कि केवल हिन्दुओं की उन्नति करना आर्य समाज का उद्देश्य है। यह भी नहीं कहा कि किसी विशेष भाषा की उन्नति के लिए आर्य समाज को जन्म दिया गया है। यह भी नहीं कि आर्य समाज को पंजाब बंगाल बिहार या उत्तर प्रदेश की उन्नति करके चुप हो जाना चाहिये, अपितु स्पष्ट शब्दों में कहा कि "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।" शेष सभी उद्देश्य छोटे हैं। विश्व प्रेम की इस विशाल भावना को लेकर महर्षि ने आर्य समाज की नींव रक्खी। हम यदि महर्षि के मुख्य उद्देश्य को भूल कर आर्य समाज को छोटी छोटी सीमाओं में सीमित कर दें तो यह महर्षि के साथ अन्याय है। आर्य समाज के साथ भी अन्याय है। इसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये महर्षि ने आगे चल कर इन्हीं नियमों में फ़िर कहा:—

"प्रत्येक को (प्रत्येक आर्य समाजी को) केवल अपनी उन्नति में ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये, अपितु दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।"

यह था महर्षि का विश्व प्रेम जो उन्होंने वेद भगवान् से प्राप्त किया। ऋग्वेद में मन्त्र आता है:—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥
(ऋ० ५।६०।५)

मन्त्र का अर्थ यह है कि तुम में से कोई बड़ा नहीं कोई छो नहीं, तुम सब भाई भाई हो, मिल कर आगे बढ़ो, सौभाग्य लिये उन्नति के लिये, शान्ति के लिये। ईश्वर तुम्हारा पिता उत्तम दूध अन्न देने वाली धरती तुम्हारी मां है तुम से पराया नहीं, तुम सब भाई भाई हो। इस प्रकार रहने वाले लिए दिन अच्छे आते हैं।"

बोलो, बोलो, क्या इस से बड़ा समाजवाद भी कहीं मिले इससे बड़ा साम्यवाद भी कहीं विद्यमान है ? यह है हमारा वै विक धर्म जिसकी नींव है विश्व प्रेम। यह विश्व प्रेम संघ नहीं आता, डिक्टेटरी से नहीं, क्रूरता से नहीं, अन्याय से तलवार से नहीं। यह उत्पन्न होता है उस समय जब भक्त भगवान् को विश्व रूप में देखता है। हर किसी में उसकी ज्यो देखकर प्रत्येक को अपना निस्वार्थ प्यार देता है। प्रभु को प्र करने का सब से सरल उपाय यह है। किसी मां को प्रसन्न क है तो सीधा उपाय यह है कि उसके बच्चे को प्यार कीजि प्रभु को प्रसन्न करना है तो उसकी विधि यह है कि उसके ब हुए प्राणियों से प्यार कीजिये।

खुदा के बन्दे तो हैं हजारों,
बनों में फिरते हैं मारे मारे॥
मैं उसका बन्दा बनूंगा जिस को,
खुदा के बन्दों से प्यार होगा॥

यही बात श्री कृष्ण ने गीता में भी कही! उन्होंने क ईश्वर को वह प्राप्त करता है जो दूसरों के हित में सदा त रहता है ? और यह समझ में आने वाली बात भी है। जो ह

हृदय से जनार्दन को प्यार करता है, वह उस जनता को प्यार क्यों न करे जो जनार्दन की कृति है ? महर्षि दयानन्द के विश्व प्रेम का आधार इसी विश्व रूप का प्रेम था । फ़रुखाबाद में गङ्गा के किनारे महर्षि एक झोंपड़े में रहते थे । एक दिन उनके मित्र स्वामी कैलाश आश्रम वहां आगये । स्वामी कैलाशाश्रम ने महर्षि के दरवाजे पर आकर कहा, "दयानन्द ! मैं तुम से एक बात कहने आया हूँ, अन्दर आ जाऊँ ।" महर्षि हँसते हुए बोले, "अवश्य आत्रो महात्मा, इस छोटे से झोंपड़े में यदि कैलाश पूरा आ सकता है तो आओ अवश्य ।" कैलाश जी अन्दर आकर बोले, "दयानन्द ! मैं तुम से पूछने आया हूँ कि इतना तप करने के पश्चात्, इतना योग साधन करने के बाद और मोक्ष का अधिकारी बनने के अनन्तर तुम यह किस धन्धे में फंस गये हो ? क्यों सारे संसार की चिन्ता तुम्हें अशान्त किये देती है ?" महर्षि ने इस बात को शान्ति से सुना, गम्भीर आवाज में बोले, "सुनो कैलाश ! जो कुछ तुम ने कहा उसे मै समझता हूँ परन्तु में केवल अपने लिए मोक्ष नहीं चाहता मैं इस जलते हुए संसार के लिए शान्ति चाहता हूँ । इस संसार में जाकर देखो यह आँसुओं के सागर में डूबी जाती है, सुलगती है तड़पती है, मैं इसे छोड़ कर जाऊँगा नहीं, मुक्त होऊँगा तो सब को साथ लेकर, नहीं तो यह मुक्ति मुझे चाहिये नहीं ।

यही बात आज से लगभग दो अढाई हजार वष पहले एक महापुरुष ने भी कही थी उनका नाम था श्री शंकर नम्बूदरीपाद । केरल की धरती पर विशाल परियार नदी के किनारे कालड़ी नाम के ग्राम में उनका जन्म हुआ । पीछे चलकर संसार ने उन्हें जगद्गुरु शंकराचार्य कहा । उन्होंने भी संसार के कल्याण के लिये मोक्ष को लात मार दी ।

मैंने जब से यह भगवाँ वेष पहना है तब से बहुत स्था
पर गया हूँ—गंगोत्तरी, जमुनोत्तरी, कैलाश। गंगोत्री में कुछ
महात्मा रहते हैं जो बहुत उच्च कोटि के हैं। कई कई वर्ष
गये है उन्हें वहां रहते हुए एक महात्मा हैं जो तेरह वर्ष से
धारण करके बैठे रहे मुझे उनका स्वरूप बहुत अच्छा लगा
गंगोत्तरी गया तो प्रतिदिन उनके दर्शन के लिए जाता एक गुफा
नंग धडंग वे बैठे रहते साढे दस हजार फुट की ऊंचाई पर।
के ढेरों के मध्य में रहते हुए भी वे कोई वस्त्र नहीं पहन
सात मास वहाँ बर्फ जमी रहती है इन दिनों में भी कोई
उनके पास नहीं होता। मैं प्रतिदिन उनकी गुफा के पास
उनके पास पहुंच कर उन्हें देश और विदेश का हाल सुना
बताता कि देश स्वतन्त्र हो गया है, अंग्रेज चला गया है
भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया है, लोग बहुत दुःखी हैं। बताया
संसार में अमेरीका और रूस एक दूसरे के भय से व्याकुल
जाते हैं, एटम बम्ब और हाइड्रोजन बम्ब बन रहे हैं, संसार वि
की ओर बढ़ा जाता है।" प्रतिदिन इसी प्रकार की कितनी ही
उन्हें सुनाता। प्रतिदिन वे सुनते, मौन रहते। ऐसा प्रतीत
जैसे मैं कथा कर रहा हूँ और वह अकेले श्रोता चुपचाप
जाते हैं। एक दिन मैं उनके पास गया तो हाथ जोड़कर
"आज एक कड़वी बात कहना चाहता हूँ आप बुरा तो नहीं
येंगे।" उन्होंने मुस्कराते हुए संकेत किया, "नहीं।" मैंने
उग्रता से कहा, "इतने दिनों से मैं आप को संसार की अ
सुना रहा हूँ, आप से प्रार्थना कर रहा हूँ कि संसार के इस
की चिकित्सा कीजिये और आप हैं कि सब कुछ सुनकर भी

पत्थर की भांति मौन बैठे रहते हैं। आप में और इस पत्थर में क्या अन्तर है ?" वे फिर मुस्कराये संकेत से उन्होंने पूछा, "तू क्या चाहता है ?" मैंने कहा, "केवल यह चाहता हूँ कि अपने इस मौन को तोड़िये, मेरे लिए बोलिये, देश के लिये बोलिए, संसार के कल्याण के लिये बोलिये।" उन्होंने आँखें मूँद लीं, थोड़ी देर तक मुंदे रक्खीं तब मुस्कराती आँखों से मेरी ओर देखते हुए बोले, "आनन्द स्वामी !" मैंने आश्चर्य से कहा, "आप मेरा नाम कैसे जानते हैं ?" मैंने तो अपना नाम आप को बताया नहीं।" वे बोले, "मैं यहां वर्षों से बैठा हूँ तो क्या व्यर्थ ही। सब कुछ मुझे ज्ञात है। मुझे पता है कि तुम्हारा पहले नाम खुशहालचन्द था, तुम्हारे पिता का नाम श्री गनेशदास था, तुम्हारा जन्म पंजाब के एक गांव जलालपुर जट्टां में हुआ।" उस समय मैंने समझा कि वे महात्मा कितने बड़े योगी हैं। उस समय मुझे महर्षि दयानन्द का वह वचन याद आया, जो उन्होंने यजुर्वेद भाष्य में "येनदं भूतं" के भावार्थ में लिखे हैं—कि "जिस योगी ने योग के साधनों और उप साधनों द्वारा अपने चित्त को सिद्ध कर लिया है, वह तीनों कालों भूत भविष्य और वर्तमान का जानने वाला हो जाता है।" अब भी ये पूज्य महात्मा गङ्गोत्तरी में रहते हैं। मैं जाता हूँ तो कई बातें पूछते हैं।" पिछली वार गया तो बोले, "आनन्द स्वामी ! संसार के झंझट छोड़ यहां गंगोत्री में आकर रह। तू चला जाता है तो गंगोत्तरी सूनी सी हो जाती है।" मैंने उन्हें कहा, "आप मुझे यहाँ रहने के लिए कहते हैं, मैं आप से कहता हूँ कि नीचे चलिए, संसार बहुत बिगड़ गया उसे बचाने का प्रयत्न कीजिए।" उन्होंने कहा, "नहीं आनन्द स्वामी अभी नीचे

चलने का समय नहीं आया। अभी यह संसार मेरी बात सुने नहीं। तेरी बात भी नहीं सुनेगा। अभी इसे और बिगड़ना है काफी विनाश होगा तब इसे होश आयेगा। और जो तू नी चलने की बात कहता है तो स्वामी दयानन्द भी एक बार इ गङ्गोत्तरी से नीचे गये थे। तुम्हारे संसार ने उनके साथ क्या व्यवह किया। पत्थर फैंके उन पर, ईन्टें फेंकी, गालियाँ दी उन्हें और अ में विष दे दिया और फिर स्वामी दयानन्द के साथ ही क्यों? इ संसार ने किस-किस के साथ अत्याचार नहीं किया, गांधी जी साथ, श्रद्धानन्द के साथ, लेखराम के साथ क्या वर्ताव किया इ ने? इस संसार को अपनी मौज मनाने दो, मुझे उनके पास जा नहीं।"

मैंने प्यार के साथ उन्हें कहा, "महाराज! आप तो साधु है सन्त हैं, और महात्मा, आप ही यदि संसार पर कृपा न करेंगे फिर कौन करेगा? आप तो जानते हैं—

तरवर फले न आपको, नदी न उपजे नीर।
पर स्वारथ के कारने सन्तन धरा शरीर॥

अनेक प्रकार से उन्हें निवेदन किया परन्तु वे माने नहीं, दूसरे महात्माओं से भी मेंने कहा वे भी नहीं माने। जीवन मुक्ति का सुख साधारण सुख नहीं ऐसा सुख है वह, जिसे कोई व्यक्त न कर सकता।

कोई उसको समझ भी ले तो फिर समझा नहीं सकता।
जो इस हद पर पहुँच जाता है वह खामोश रहता है॥

ऐसा है यह आनन्द। इसे छोड़ कर आना सरल नहीं, लात मारी तो जगद्गुरु दयानन्द ने, जगद्गुरु शंकराचार्य ने।

महर्षि के जीवन की एक घटना है, कठिन तप के पश्चात् घोर अभ्यास के अनन्तर जब उनके लिए मुक्ति का द्वार खुल गया तो उन्होंने सोचा कि अब इस शरीर को जीवित रखने का कोई लाभ नहीं। गङ्गोत्तरी के निकट एक चोटी पर वे पहुँचे, इस इच्छा के साथ कि चोटी से कूद कर शरीर को छोड़ देंगे परन्तु तभी भीतर से आवाज आई, "दयानन्द यह क्या कर रहे हो अपने लिए मोक्ष का द्वार खुल गया, इससे तुम्हें शांति मिल गई? नीचे इस जलते हुये संसार को देखो। ये अग्नि की लपटें, ज्वालाओं के समुद्र क्या इन करोड़ों लोगों पर तुम्हें दया नहीं आती? क्या उनके सम्बन्ध में तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं। आगे बढ़। इस अग्नि को शान्त करने का प्रयत्न कर।" तभी एक दूसरी आवाज ने कहा, "मैं एक छोटी सी बून्द इस विशाल ज्वाला को कैसे बुझा पाऊँगा?" और पहली आवाज ने अधिकार के साथ कहा, "यह अग्नि बुझे या न बुझे, तुम्हारा कर्तव्य यह है कि इसे बुझाने का यत्न करो भले ही ऐसा करते हुये राख हो जाओ परन्तु कर्तव्य यही है।

सचमुच कर्तव्य यह है परन्तु यह भावना उस समय जागती है जब विश्वरूप का प्रेम विश्वप्रेम में बदल जाता है। विश्व प्रेम की भावना जाग उठे तो विश्व रूप का प्रेम स्वयं उसमें आ जाता है परन्तु एक शर्त है कि यह विश्व प्रेम दिखावे के लिए न हो, वास्तविक हो। संसार का दुःख तुम्हारा दुःख बन जाये। संसार के आँसू तुम्हारी आँखों से बहें, जब ऐसा हो तो प्रभु दर्शन देते हैं जरूर, क्यों कि वे कहीं दूर तो हैं नहीं जो सब से अधिक निकट है, उससे भी

अधिक निकट है वह। हर ओर हैं, हर समय हैं, प्रत्येक स्थान पर हैं।

प्यार की इस भावना को जगा कर ओ३म् का जाप करो लगातार, लगातार करते जाओ। ओ३म् के अक्षर को अपनी भृकुटि में देखने का प्रयत्न करो। धीरे-धीरे वहाँ प्रकाश जायेगा। यह प्रकाश ही निरन्तर अभ्यास से उस परमानन्द को प्रकट करेगा जिसका आज तक कोई वर्णन नहीं कर सका। प्रभु दर्शन की विधि यह है परन्तु—

एक दिन एक सज्जन मेरे पास आये बोले, "आपके पास आ जाऊँ।" मैंने कहा, "आइये, पधारिये, मेरे पास बैठने के लिये कोई परमिट तो नहीं लेना पड़ता।" वह बैठ गये तो मैंने कहा, "बताइये आपकी क्या सेवा करूँ?" वह बोले, "मुझे ईश्वर का दर्शन करा दो।" मैंने आश्चर्य से कहा, "अभी।" वह बोले, "हाँ अभी करा दो तो अच्छी बात है फिर मुझे काम पर जाना है, देर हो जाती है। मैंने पूछा क्या काम करते हैं आप?" वह बोले, ठेकेदारी करता हूँ।" मैंने पूछा ठेकेदारी में तो कुछ लोग उल्टी सीधी बातें करते हैं, क्या आप भी ऐसा करते हैं?" वह बोले, "यह तो व्यापार है, व्यापार में सब कुछ करना पड़ता है।" मैंने हँसते हुये कहा "तो जाइये अपना व्यापार कीजिये ईश्वर दर्शन के झगड़े में आप क्यों पड़ते हैं, व्यापार कीजिये, खूब धन कमाइये और दान भी देते रहिये। दूसरों का अधिकार छीनने, अपने लिये ही जीने और अपने ही सुख की सामग्री एकत्रित करते रहने से प्रभु दर्शन के मार्ग पर चलना कठिन है। प्रभु दर्शन का मार्ग उसके लिए बड़ी कठिनता से खुलता है। हाँ खुलता तो है परन्तु पहले काफी प्राय-

श्चित करना पड़ता है। चन्द्रायण व्रत जैसे व्रत रखने पड़ते हैं, प्रभु दर्शन करना हो तो अपने हृदय में दूसरों का उपकार करने की इच्छा उत्पन्न करो! इस प्रकार दूसरों से प्यार करो जिस प्रकार अपने आप से करते हो। सारे सँसार को अपना समझो, संसार के प्रत्येक बच्चे को अपना समझो, प्रत्येक देश को अपना देश, प्रत्येक जाति को अपनी जाति, प्रत्येक पराये को अपना सगा सम्बन्धी, ऐसा करने से ही सच्चा प्रेम उत्पन्न होता है। ऐसा करने से ही मनमोहन प्रीतम दिखाई देने लगता है।

विश्व प्रेम की इस भावना के जागते ही कोई पराया नहीं रहता, तब प्रत्येक रूप में वह दिखाई देता है, प्रत्येक आवाज उसकी आवाज, प्रत्येक रूप में उसकी झलक, तब सब को प्यार कर्ता भक्त सब के लिए अपने आपको न्यौछावर करता हुआ केवल उसकी चाहना करता है, केवल उसकी राह देखता है, केवल उसको पुकारता है। आँख भिखारी बनकर केवल उसको खोजती है:—

पलक पसारे हैं खड़े बैरागी दो नयन।
मांगे दास मधुकरी, खुले रहें दिन रैन॥

परन्तु यह प्यार मेरे भाई सब के भाग्य में नहीं आता। बहुत अच्छे कर्म किये हों तब यह विश्व प्रेम और विश्वरूप का प्रेम जागता है।

मोहब्बत के लिये कुछ खास दिल मखसूस होते हैं।
यह वह नग़मा है जो हर साज पर गाया नहीं जाता॥

ईश्वर के लिए प्यार भी ईश्वर की कृपा से पैदा होता है, किस प्रकार प्रकट होता है इसे समझना सरल नहीं—

मोहब्बत मायनी व अलफाज़ में लाई नहीं जाती।
यह वह नाजुक हकीकत है जो समझाई नहीं जाती॥

एक अद्भुत टीस है इसके भीतर, एक विचित्र दर्द एक अनोखा आनन्द इस दर्द में—

इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया।
दर्द की दवा पाई, दर्द ला दवा पाया ॥

और जब यह प्रेम जाग उठता है तब कितने ही प्रकार के धारण करता है, कितने ही विभिन्न आधार बना लेता है, दास ने गोपियों को आधार बना कर अपने प्यार की कहानी सुना भवभूति ने सीता के होठों से अपने राम को प्यार के गीत सुना कालिदास ने शकुन्तला का सहारा ले लिया, मीरा के हाथ गिर गोपाल आ गये, मूल शंकर के हृदय में शिव को देखने की जाग उठी परन्तु सब में भावना एक है आत्म समर्पण की भावना इस भावना से प्रभु का दर्शन होता है अवश्य, इसके बिना होता नहीं।

परन्तु प्रेम की यह बात कभी समाप्त न होगी। न हो अच्छा है, मैं उस प्यार की आग को जलाये देता हूँ आपके हृ में, बुझाने वाला कोई और आयेगा परन्तु कल्याण इसमें है इसे जलने दीजिये, बुझाइये नहीं इस अग्नि के प्रकाश में मिलेंगे और जब वे मिल जायें तब ऋग्वेद ७।८६ के अन्ति मन्त्र के शब्दों में भक्त कहता है—

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

हे वरुण देव! मेरे गीत केवल तेरे लिए हैं। मेरे हृदय बैठी हुई पूजा केवल तेरे लिये, मेरे प्यार का केन्द्र तू है, मेरा तू है, शान्ति तू है। हर ओर से मिले हुए विद्वानों के आशी मेरी रक्षा करते हैं, तेरी कृपा को मैंने पा लिया है।

और अब—परन्तु समय तो पूरा हो गया। शेष बात कल सही

छटा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

इस कथा का आरम्भ करते समय मैंने आप को बताया कि पिछले डेढ सौ वर्षों में विशेषकर सन् १८८० के पश्चात् विज्ञान ने जो उन्नति की उसने बहुत से आविष्कार संसार को दिये परन्तु इन आविष्कारों ने मानव को कोई सच्चा सुख दिया हो ऐसा तो प्रतीत नहीं होता। छोटा सा बच्चा जैसे सरकस को देखकर अपने आप को भूल जाता है, उसी प्रकार विज्ञान के इस सरकस को देखकर अपने आप को भूल गये हम। परन्तु मानव के जीवन का जो उद्देश्य है वह तो पूरा नहीं हुआ। मनुष्य चाहता क्या है ? शरीर का सुख, मन की शान्ति और आत्मा का आनन्द। यही तीन बातें तो वह चाहता है। विज्ञान की उन्नति से तीनों में कोई भी बात मिली हो ऐसा तो दिखाई नहीं देता। विज्ञान के प्रत्येक आविष्कार ने मनुष्य को शारीरिक सुख देने का प्रयत्न किया है अवश्य। प्रकाश सरलता से हो जाता है, गर्मियों में बर्फ मिल जाती है, सर्दियों में हीटर जल उठते हैं, मासों की यात्रा घण्टों में हो जाती है। सहस्रों मील दूर बैठे लोगों से हम बातें कर लेते हैं, टेलीविजन की सहायता से मीलों दूर के किसी स्टूडियों में होने वाले कार्यक्रम को देख लेते हैं। मनुष्य के लिए पहले की अपेक्षा बहुत सी सरलताएं हो गईं हैं अवश्य परन्तु शरीर का सुख मिल गया हो ऐसी बात तो हुई नहीं बीमारिया आज भी हैं, बुढ़ापा आज भी है, मृत्यु आज भी है फिर विज्ञान का दिया हुआं यह शारी-

रिक सुख है क्या ? और यह शरीर क्या है जिसके लिये विज्ञा[n] ने इतना संघर्ष किया। मैं यह नहीं कहता कि शरीर को आरा[m] देना बुरा है इसे सुख दो, इसे सात्विक भोजन दो, इसके स्वास्थ्य को ठीक रक्खो अच्छी बातें हैं ये परन्तु देखो भाई इसे सुख [से] रक्खो या दुःख से एक दिन इसे जाना है अवश्य।

कबिरा नौबत आपनी दस दिन लेओ बजाय।
ये पुर पट्टन ये गली बहुरि न दीखन आय ।।

यह सब कुछ जायेगा अवश्य, बड़े बड़े राजाओं और महा-राजाओं का चला गया, योद्धाओं और सेठों का चला गया, फि[र] दूसरों की कौन कहे। यहाँ से थोड़ी ही दूर तो महरौली के खण्डहर हैं, तुगलकाबाद का सुनसान किला है, हौज खास का उजाड़ प्रदे[श] है, कभी वहाँ भी लोग रहते थे उनके भी शरीर थे, वे भी अप[ने] शरीर को सुख पहुँचाने का यत्न करते थे। उनके घरों में शह-नाइयां बजतीं थीं, राग अलापे जाते थे और आज—

सातो शबद जो बाजते, घर घर होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े, बैठन लागे काग।

इस शरीर का अभिमान किस लिए, इसे सुख से रक्खो [या] दुःख से। एक दिन—

हाड़ जले ज्यों लाकड़ी, केस जले ज्यों घास।
सब तन जलता देखकर, भया कबीर उदास ।।

परन्तु उदास होने से लाभ क्या ? यह तो कच्चा घड़ा [है] भाई टूटेगा अवश्य—

यह तन कांचा कुम्भ है, लिये फिरे तू साथ।
ढीका लागा फूटिगा, कछू न आया हाथ ।।

और फिर थोड़ी देर के लिए मान लो शरीर का सुख मिल गया तो भी हुआ क्या ? वास्तव में यह सुख मिला नहीं, कुछ सरलतायें मिली हैं अवश्य, सुख नहीं मिला परन्तु यदि मिल भी जाये तो इस सुख का मूल्य क्या है ? सुख और दुःख की वास्तविक अनुभूति तो मन में होती है, मन में सुख न हो, मन में शान्ति न हो तो शरीर के सुखों का एक कौड़ी भी मूल्य नहीं। अब यह मानसिक सुख और मानसिक शान्ति आप के पास है या नहीं यह स्वयं सोचकर देखिये, अपने हृदयों में झाँकिये सोचकर देखिये कि क्या आप के मन में शान्ति है ? सुख है ? प्रायः हम कहते हैं कि मैं तो दुःखी हूँ परन्तु दूसरे लोग सुखी हैं। सुनो, सुनो, यह बात बिल्कुल असत्य है। महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने संसार की वास्तविकता को बहुत सुन्दरता से व्यक्त किया—

नदीर ए पार कहे करया पुकार,
जे शुख जगते शै शकल ओ पारे।
ओ पार कहे छाड़या दीघ श्वास,
शुखेर शकल खानी परे पार॥

"नदी का यह किनारा पुकार कर कहता है कि संसार में जितना भी सुख है वह सब का सब दूसरे किनारे पर है, मैं ही दुःखी हूँ, सुख दूसरी ओर है और दूसरा किनारा भी श्वास ले लेकर कहता है कि सुख का भण्डार तो परले किनारे पर है, मेरे पास कुछ भी नहीं।

अपनी बुद्धि, दूसरे का धन सब को अधिक प्रतीत होता है, परन्तु ध्यान से देखिये तो पता लगेगा कि यहाँ कोई भी सम्पत्ति वाला नहीं, सब कंगाल हैं, प्रत्येक हृदय में दुख की ज्वाला है,

प्रत्येक आँख में आंसू है, इस बात को शेख फरीद ने देखा वह पुकार उठे:—

फरीदा मैं ताँ जानियां, मैं दु:खी सुखी सब जग।
ऊँचे चढ़ चढ़ देखियां तां घर घर ए हो अग्ग ॥

तुम्हारा विज्ञान किसी के भी मन को शान्ति नहीं दे सः प्रत्येक घर में आग जल रही है, देखो या न देखो प्रत्येक घ धुआँ उठ रहा है। शारीरिक सुख मिला नहीं, मानसिक शां मिली नहीं और आत्मिक आनन्द इस का तो अर्थ भ विज्ञ वालों को पता नहीं फिर वह मिलेगा कहाँ से ? इसलिए मैं क हूँ कि पिछले डेढ़ दो सौ वर्ष में विज्ञान ने जो उन्नति की देखकर मनुष्य अपने आपको इस प्रकार भूल गया है, जैसे कस का खेल देखकर बच्चा थोड़ी देर के लिए प्रसन्न हो जा है, इसके अतिरिक्त और कुछ हुआ नहीं, मनुष्य जीवन के वा विक उद्देश्य से इस विज्ञान का और इसके आविष्कारों का भर भी सम्बन्ध नहीं।

मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है, यह भी पिछले दिनों बताया। वेद भगवान् ने प्रश्न और उत्तर के रू इस उद्देश्य का वर्णन किया है।

प्रश्न होता है "कस्त्वा युनक्ति" किसने जोड़ा है तुझे ? म का यह शरीर किसने दिया है ?

उत्तर मिलता है "स त्वा युनक्ति" उसने जोड़ा है तुझे, मा शरीर उस प्रभु ने दिया है।

तब प्रश्न होता है "कस्मैत्वा युनक्ति" किस लिए जोड़ा है तु और उत्तर मिलता है "तस्मैत्वा युनक्ति" उसी के लिए

है तुझे, उस ईश्वर को प्राप्त करने के लिए, उसका दर्शन पाने के लिए, उसे अपना बनाने के लिए यह शरीर मिला है।

ऐसी दशा में शरीर की ओर से प्रमाद करना, उसकी रक्षा न करना और उद्देश्य को प्राप्त किए बिना उसे नष्ट करने का प्रयत्न करना बिल्कुल गलत है। शरीर की रक्षा होनी चाहिए इसके स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए, परन्तु इस बात को भूलना नहीं चाहिये कि यह शरीर केवल एक साधन है, लक्ष्य नहीं। मानव जीवन का लक्ष्य है प्रभु दर्शन—

इयं ते यज्ञिया तनूः

यह शरीर प्रभु दर्शन पाने के लिए मिला है क्योंकि और किसी भी शरीर में प्रभु का दर्शन नहीं होता। यह शरीर अन्नमय कोश कहलाता है, इस में सूक्ष्म मनोमय कोश रहता है। इससे आगे बुद्धि मण्डल है और फिर इस से आगे प्राणमय कोश और प्राणमय कोश के आगे विज्ञान मय कोश और फिर आनन्द मय कोश में आत्मा के साथ साथ परमात्मा रहता है। साथ साथ रहने पर भी आत्मा तब तक परमात्मा को देख नहीं पाता जब तक इस की मैल दूर न हो जाये। सूर्य को किरणों को देखिये, वे प्रकाश देती हैं, गर्मी देती हैं, आग नहीं लगातीं परन्तु उन किरणों को दाहक शीशे पर केन्द्रित करके एक स्थान पर डालिए तो वहाँ आग जल उठती है, यही दशा मन की है, उसे सीधा करके ठीक अवस्था में रक्खो तो प्रभु का दर्शन हो जाता है, इस ही शरीर में हो जाता है कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती—

मन मथुरा दिल द्वारका, काशी काया जान।
दस द्वारे का देहरा ता मैं ज्योति पहचान॥

इतना निकट रहने पर भी यदि वह दिखाई नहीं देत इसलिए कि स्वयं आत्मा में कुछ दोष आ गये हैं। ये दोष हैं और किस प्रकार दूर होते हैं यह हमने ऋग्वेद के ७।८६ में देखा तब अथर्ववेद के छटे मण्डल में भक्त को यह प्रार्थना करते हुए सुना कि––

उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्षमादय ।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ।।

(अथर्व ६।१३०

ऐ वायु पागल बना दो, ऐ आकाश मुझे उन्मत्त कर अय अग्नि मुझे प्रेम विभोर कर दे और मेरे साथ साथ ईश्वर को भी प्यार से व्याकुल कर दो जिसे मैं प्यार करता

और सत्य ही वह ईश्वर आत्मा से प्यार करता है, यदि आत्मा से प्रेम न होता, तो यह सुन्दर संसार कभी उत्पन्न होता। यह पृथिवी, ये तारे, ये सूर्य और चन्द्र, फूल और नदियाँ और पर्वत सब उसने आत्मा के लिये तो बनाये हैं, लिए तो उसे आवश्यकता नहीं। सब को बनाकर सब के वह बैठा है––

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।
मृल सुक्षत्र मृलय ।। (ऋ० ७।८९।४)

दायें बायें, ऊपर नीचे बाहर भीतर सब ओर तू ही है पीतम ! फिर मैं तुझे देख क्यों नहीं पाता। पानी के अपार वार में रह कर भी मैं प्यासा क्यों हूं ? मेरी प्यास मिटा दे स्वामिन् मेरी रक्षाकर, और सत्य ही वह रक्षा करता है।

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
(ऋ० २।२३।४)

परमात्मा अच्छे मार्ग पर ले जाता है, उसकी रक्षा करता है जो अपने आप को उसके लिए समर्पित कर देता है।

सुपर्दम बनो मायेक ख्येश रा ।
तो दानी हिसाबे कमो बेश रा ॥

जो उस पर भरोसा कर के, उसे अपना सुनेता मान कर और अपना सर्वस्व समझ कर चलता है, प्रभु भी उसे अपनाते हैं।

अग्ने नय सुपथा, राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम ॥
(यजु० ४०।१६)

हे अग्नि देव ! हे प्रकाश स्वरूप ! ले चल जिधर तू ले जाना चाहता है, मेरी अपनी कोई इच्छा नहीं, मेरा अपना कोई ज्ञान नहीं, मेरा कल्याण किस में है यह तू जान, मैंने अपने आप को तेरे समर्पित कर दिया।

जब इस प्रकार भक्त आत्मसमर्पण कर देता है, तब ईश्वर का उत्तरदायित्व हो जाता है कि उसे ठीक मार्ग पर ले जाये। उसे भले और बुरे की पहचान कराये, बुराई से रोक कर भलाई की ओर ले चले। यही नहीं, अपितु आत्म-समर्पण करने वाले के योग-क्षेम की जिम्मेदारी भी प्रभु पर आ जाती है। ऋग्वेद में स्पष्ट कहा है—

अहं दाशुषे विभजामि भोजनम् । ऋ० १०।४८।१ ।

मैं तो नाशवान (आत्म समर्पण करने वाले) पुरुष को भोजन (भोग्य पदार्थ) बाँटता फिरता हूँ।

कल मैंने महर्षि दयानन्द के वे शब्द सुनाये थे जो उन्हों सत्यार्थ प्रकाश में लिखे और जिसमें उन्होंने बताया कि ईश्वर कि प्रकार आत्मा को मार्ग दिखाता है।

फिर यह भी बताया कि आत्मसमर्पण का अर्थ क्या है? कि प्रकार यह आत्मा समर्पण होता है? सच्चे प्रेम से? ईश्वर के लि सच्चा प्यार जाग उठे तो आत्म समर्पण स्वयमेव हो जाता है। त मार्ग मिलता है, प्रभु का दर्शन भी होता है। उसके लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। किसी मन्दिर मस्जिद या ती में जाने की आवश्यकता नहीं। मानव शरीर के इस मन्दिर में तुम्हारे भगवान् बैठे हैं। परन्तु देखो केवल तुम्ही मनुष्य नहीं, केव तुम्हारा शरीर ही ईश्वर का मन्दिर नहीं, प्रत्येक मनुष्य शरी भगवान् का मन्दिर है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर वह मन मोह बैठे हैं। इसलिए निश्चय करो कि किसी भी मनुष्य से, भगवान् किसी भी मन्दिर से हम घृणा नहीं करेंगे। सब के कल्याण का य करोगे। इसीलिए महर्षि दयानन्द ने कहा कि "सारे संसार उपकार करना हमारा कर्तव्य होना चाहिये महर्षि के इस मह सन्देश को समझने का प्रयत्न करो। उन्होंने वेद को संसार सामने रक्खा तो इसलिए कि वेद किसी एक सम्प्रदाय के लि नहीं। उसमें कहीं भी यह नहीं लिखा कि तुम हिन्दु बनो, ईसा बनो, बौद्ध, जैनी या मुसलमान बनो अपितु बार-बार यही लिखा कि अच्छे मनुष्य बनो। महर्षि दयानन्द ने वेद की इस भावना लेकर कहा, "मनुष्य उसको जानना जो दूसरों के हानि और ला में अपना हानि और लाभ समझे।" विश्व प्रेम की यह भाव उत्पन्न हो जाये। अमेरीका यदि समझे कि रूस का लाभ अमेरी

का लाभ है और रूस यदि समझे कि अमेरीका की हानि रूस की हानि है तो सोच कर देखो इन एटम बम्बों और हाइड्रोजन बम्बों की आवश्यकता कहाँ रहती है ? इन युद्ध की तय्यारियों और सैनिक संगठनों का कोई भी कारण कहाँ रहता है।

परन्तु यह विश्व प्रेम और विश्वरूप का प्रेम कोरे ज्ञान से तो उत्पन्न नहीं होता। कोरी श्रद्धा से भी उत्पन्न नहीं होता, कोरा ज्ञान उस मशीन की भांति है जिस के पुर्जो को तेल नहीं दिया गया। कोरी श्रद्धा उस तेल की भान्ति है जिस के पास कोई मशीन ही नहीं। तेल और मशीन दोनों हों तब कार्य चलता है, ज्ञान और श्रद्धा दोनों का मिलाप हो तब वह विश्व प्रेम और विश्वरूप का प्रेम उत्पन्न होता है जिससे भगवान् के दर्शन होते हैं:—

रैन का भूषण इन्दु है, दिवस का भूषण भानु।
दास का भूषण भक्ति है, भक्ति भूषण ज्ञानु॥

ज्ञान के साथ साथ भक्ति का श्रद्धा का होना आवश्यक है। ऋग्वेद के श्रद्धा सूक्त में श्रद्धा की अपार महिमा वर्णन की गई है। भक्त वहाँ पर प्रार्थना करता है कि मुझे प्रातः काल के समय श्रद्धा दे, सायं काल श्रद्धा दे, दिन के समय दे, रात्रि के समय दे ? सुख में दे दुःख में दे, किसी भी समय श्रद्धा को मुझ से पृथक न होने दे क्योंकि इसके बिना कोई भी कार्य नहीं चलता। श्रद्धा के बिना मनुष्य उस तालाब की भाँति है जिसमें पानी सूख गया हो। ऐसे तालाब को तालाब कौन कहेगा। आज के संसार में एक ओर तो कोरी तर्क की आग में श्रद्धा को जला कर राख कर दिया गया है। और दूसरी ओर कोरी श्रद्धा के नशे में तर्क को जला डाला गया। परन्तु ज्ञान भी हो, श्रद्धा भी हो, विश्वरूप का प्यार भी हो,

विश्व प्रेम भी हो, तब करना क्या ? क्या हाथ पर हाथ धर बैठ जाना ? नहीं ऐसा करने से भगवान् का दर्शन नहीं मिलत वह परम आनन्द भी नहीं मिलता जिस के लिए मनुष्य भटक फिरता है। ज्ञान श्रद्धा, विश्व प्रेम और विश्वरूप का प्रेम सब सब मिल जायें तब भगवान् को विश्वरूप समझ कर अपने आ दूसरों की सेवा में लगा दो, निष्काम भावना से, फल की चि किये बिना, इच्छा किये बिना सेवा धर्म को अपनाओ।

परन्तु आज तो कई लोगों ने सेवा को भी दुकानदारी लिया है। पत्रों में आपने कई बार चित्र देखें होंगे कि कुछ हाथ में झाड़ू लेकर किसी गली या बाजार की सफाई कर रहे अच्छी बात है यह। सेवा का एक ढंग है। परन्तु जिस उद्देश्य यह सेवा की जाती है वह तो किसी से छुपा नहीं। किसी से उधार लिया जाता है, फोटो ग्राफर को पहले फोन कर दिया ज कि हम फलाँ स्थान पर झाड़ू देने जा रहे हैं वहाँ पहुँच कर ह तस्वीर खेंच लो। चित्र खिच जाने के साथ ही झाड़ू देने का बन्द हो जाता है कह सुन कर चित्र समाचार पत्र में छपवा जाता है तब चुनाव का समय आने पर मोहल्ले के लोगों को दिखाया जाता है कि देखो हमने तुम्हारी सेवा की थी हमें वोट यह तो सेवा है नहीं, दुकानदारी हैं। इसका दो कौड़ी भी नहीं सेवा करनी हो तो निष्काम भाव से, बिना किसी स्वार्थ करो प्रत्येक मनुष्य भगवान् का मन्दिर है, मनुष्य की सेवा प्र सेवा है ऐसी सेवा से निश्चित रूप से ऊपर उठता है। संसार इतिहास ऐसे निष्काम सेवाओं के उदाहरणों से भरा पड़ा है।

सेवा का एक और उपाय है—दान ! मनु महाराज ने कहा

दानं एकं कलौ युगे ॥

कलियुग में दान धर्म सब से बड़ा साधन है। मरने के पश्चात् भी निष्काम भावना से दिया हुआ दान ही काम आता है। परन्तु आजकल किसी व्यक्ति को दान देने की बात कहिये तो वह उत्तर देगा, साहब अपनी ही आवश्यकता पूरी नहीं होती दान कहाँ से दें? यह "आवश्यकता पूरी नहीं होती" भी एक विचित्र तमाशा है। बुद्धिमत्ता की बात यह है कि जितनी आय हो व्यय उस से कम रक्खा जाये। अपनी आवश्यकताओं को कम कर दिया जाये और आय कम हो या अधिक उस में से एक भाग दान के लिए सुरक्षित रख दिया जाये अवश्य। परन्तु आज एक नया सिद्धान्त जागृत हो गया है कि अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाओ जिससे तुम्हारी आय बढ़े। खाओ, पीओ, ऐश करो का सिद्धान्त संसार का सिद्धान्त बन गया है। हर समय, हर ओर, प्रत्येक स्थान पर एक ही ध्वनि सुनाई देती है और लाओ, और लाओ। ऐसी अवस्था में दान कौन करे? परन्तु यह विधि ठीक नहीं। जो लोग मन की शान्ति चाहते हैं, उन्हें समझना चाहिये कि जो व्यक्ति अन्धाधुन्ध खर्च करता है और अपनी आवश्यकताओं को लगातार बढ़ाये चला जाता है, जो आय से अधिक व्यय करने के पश्चात् आय को बढ़ाने का यत्न करता है उसे शान्ति कभी मिलेगी नहीं। मन की शान्ति के लिए आवश्यक है कि व्यय को आय के नीचे रक्खो। आत्मा की उन्नति के लिए आवश्यक है कि जो ग़रीब और दुःखी हैं उन्हें दान देकर उन की निष्काम सेवा करो।

ये सब बातें मैंने पिछले पाँच दिनों में आपके सामने रक्खीं

परन्तु इन सब बातों को सुनने के पश्चात् भी आप कह सकते कि इन में प्रभु दर्शन कहाँ है ? भक्त और भगवान् की बात आपको सुनाता रहा। भक्त को कैसा होना चाहिए यह बता दिया भगवान् कहाँ है यह भी बता दिया परन्तु उनका दर्शन कैसे हो है यह तो बताया नहीं। अब सुनिये कि दर्शन कैसे होता है?

तीन विधियाँ हैं इस कार्य के लिये। पहली विधि के बच्चों का खेल है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं, दूसरा उपाय बहलाने का एक ढंग है केवल, वास्तव में कुछ नहीं। तीसरी विधि वास्तविक विधि है।

पहली विधि तो आप इसी समय अपना सकते हैं। आँखों बन्द करके दोनों पुतलियों को अंगुलियों से दबाइये। आँखों एक प्रकाश सा दिखाई देगा। कई लोग इस प्रकार से श्रद्धा लोगों को भ्रम में डाल देते हैं। बेचारा भक्त समझता है उसे ईश्वर दर्शन हो गये। वास्तव में वह प्रकाश ईश्वर नहीं, देर तक रहता भी नहीं। जो लोग इस प्रकार से ईश्वर द करायें उनसे होशियार रहिये। समझिये कि वास्तव में वे भी नहीं जानते। दूसरी विधि हठ योग की क्रियाओं की है। विधि से भी प्रकाश दिखाई देता है, ध्वनियां भी सुनाई देती मनुष्य को नींद सी आने लगती है परन्तु यह प्रकाश या ध्व ईश्वर नहीं, उसकी सहायता से मन एकाग्र होता है अवश्य। बढ़ने में सहायता मिलती है परन्तु जो कुछ दिखाई या सु देता है वह न तो ईश्वर है न आत्मा। वह केवल अन्नमय कोश आन्तरिक खेल है। जो नींद सी आने लगती है वह भी सम नहीं। बिल्कुल ऐसे हैं जैसे कोई व्यक्ति बहुत थक कर या तेज

पीकर सो गया हो। इस विधि से आगे जाकर प्राण वायु को अपान वायु से मिला कर उड्यान बन्ध लगाया जाता है। मूलाधार चक्र से सुषुम्णा नाड़ी में प्रविष्ट होकर आज्ञा चक्र तक पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है वहाँ से ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच कर परमात्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। परन्तु इस बात को कहना जितना सरल है करना उतना आसान नहीं। योगी लोग हठ योग की इन क्रियाओं में वर्षों खर्च कर देते हैं। प्रायः वर्षों व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी उन्हें कुछ मिलता नहीं। तीसरी विधि है क्रिया योग। महर्षि पतञ्जलि ने क्रिया योग की प्रशंसा करते हुए लिखा है:—

तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः।

तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग है॥

अब सुनिये कि तप क्या है? प्रायः तप का अर्थ समझा जाता है अपने आप को तपाना और शारीरिक कष्ट देना परन्तु ऐसा समझना उचित नहीं। जान पूछ कर शारीरिक कष्ट भोगना किसी वृक्ष से पांव बाँध कर उलटे लटक जाना। दायें या बायें हाथ को ऊपर उठाकर रखना और उठाये उठाये सुखा देना। जान बूझ कर कांटों या सलाखों पर लेटना। गर्मियों, में अकारण आग तापना या शर्दियों में अकारण ठण्डे पानी में डुबकियां लगाना। हाथों के होते हुए भी हाथ से भोजन न करना और इस प्रकार की दूसरी बातें करना तप नहीं है। तप का वास्तविक अर्थ है सहन शीलता। दृढ़ इच्छा शक्ति और रुकावटों की चिन्ता किये बिना आगे बढ़ते जाने की भावना। एक संकल्प हमने किया। सोच समझ कर किया तब

गर्मी या सर्दी, दुःख या सुख, सधनता या निर्धनता, सम्मान या अपमान, जीवन या मृत्यु किसी की भी चिन्ता किये बिना आगे बढ़ते चले जाना और लक्ष्य तक पहुँचे बिना कहीं भी रुकना नहीं कहीं भी डगमगाना नहीं, कहीं भी संकल्प को शिथिल न होने देना यह है तप। इसके बिना आत्मा और परमात्मा के मिलाप में कभी सफलता नहीं मिलती।

नातपस्विनो योगः सिद्ध्यति।

जो अतपस्वी है, जिस में तप की भावना नहीं उसका योग कभी सिद्ध नहीं होता। तप की इस भावना के बिना उस वासना का भी अन्त नहीं होता जो जन्म जन्म से चित्त के साथ चली आती है और जिसका वर्णन मैने पिछले दिनों किया।

अनादि कर्म क्लेश वासना चित्रा प्रति उपस्थित विषय जाला।
चाशुद्धि अन्तरेण तप् संभेदमापद्यत इति तपस उपादानम्॥

अनादि काल से दुःख देने वाली कर्मों की वासना के जो चित्र शरीर में बने हैं और वर्तमान विषय में फंसे कर्मों की जो मैल आत्मा पर जमी है उसे दूर करने का तप के बिना और कोई मार्ग नहीं है।

परन्तु यह तप शरीर को अकारण कष्ट देने वाला, मन में दुःख पैदा करने वाला और पीड़ा देने वाला नहीं होना चाहिये अपितु ऐसा होना चाहिए जिससे मन में शुद्धता और निर्मलता उत्पन्न हो इस बात की प्रसन्नता हो कि एक मैल और कट गई—एक और कलंक दूर हो गया। ब्रह्मचर्य को सब से बड़ा तप कहा गया है, सत्य पर आरूढ़ रहकर कष्ट सहन करना भी तप है। ऐसे तप बुद्धि, मन, चित्त की मलीनता को दूर करते हैं।

संसार के त्रिविध तापों से संतप्त मनुष्यों के लिये योगाभ्यास को अचूक औषधि बतलाया गया है:—

भव तापेन तप्तानां योगो परमौषधम् ॥

"संसार के (त्रिविध तापों से) तप्त होते हुए मानवों के लिए योग साधन एक अचूक औषधि है।"

अब सुनिये कि स्वाध्याय क्या है ? आज कल कुछ लोगों ने स्वाध्याय का भी उल्टा अर्थ समझ लिया। स्वाध्याय का वास्तविक अर्थ है स्व अर्थात् आत्मा को पढ़ना, जानना, देखना और समझना या ऐसे ग्रन्थों का पाठ करना जिन से आत्मा का ज्ञान मिलता हो। परन्तु कुछ लोगों ने स्वाध्याय का अर्थ समझ लिया है केवल पढ़ना। चाहे उपन्यास पढ़ो या कहानी, समाचार पत्र पढ़ो या वह विचित्र सी पुस्तकें जिन्हें 'कामिक' कहते हैं इस का नाम स्वाध्याय हो गया। सुनो यह स्वाध्याय नहीं, स्वाध्याय का अर्थ है वेद, उपनिषद्, गीता सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि को ध्यान के साथ सोच समझ कर न केवल पढ़ना अपितु उन उपदेशों को अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न करना और उस के साथ ही साथ अपने आप को पढ़ना, यह देखना अपने अन्दर क्या है ? कितने गुण हैं, कितने अवगुण हैं ? गुणों को बढ़ाने का प्रयत्न करना, बुराइयों को दूर करने का यत्न करना। कुछ लोगों को यह दूसरा स्वाध्याय सरलता से समझ में नहीं आता। वे कहते हैं कि वेद आदि अच्छे ग्रन्थ तो पढ़े जाते हैं, अपने आप को कैसे पढ़े ? अपना आप कोई पुस्तक तो है नहीं कि उस पर कुछ लिखा हो, जब लिखा ही नहीं तब पढ़े कैसे ? परन्तु सुनो यह अपना आप पुस्तक भी है पढ़ा भी जाता है और जो न पढ़े उसे एक दिन विवश

होकर पढ़ना पड़ता है। यह शरीर है न ? इसके भीतर एक और शरीर है जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं। बाहर का शरीर इस जन्म में मिला है इसी जन्म में समाप्त हो जायेगा। इसे साबुन मलो या इत्र तैल, इसे रसीले भोजन खिलाओ या मीठे पकवान, इसे रेशमी कपड़ों में लपेटो या भव्य प्रासादों में रक्खो अन्त में यह जायेगा अवश्य। यह तुम्हारा साथी नहीं। यह तो बिल्कुल ऐसे है जैसे नदी को पार करते समय किसी ने लकड़ी का तख्ता पकड़ लिया हो। दूसरे किनारे पर वह तख्ते को छोड़ देगा, तख्ता उस को छोड़ देगा। बहुत संघर्ष होते हैं इसके लिये, बहुत झगड़े होते हैं। पृथिवी और आकाश को एक किया जाता है परन्तु यह है तो मिट्टी:—

यूँ अगर देखिये क्या कुछ नहीं यह मुश्ते गुबार।
और अगर सोचिये तो खाक भी इन्साँ में नहीं ।।

इस का मूल्य पूछना हो तो उस बेटे से पूछिये जो अपने पिता के मृत शरीर को अपने हाथ से आग लगा देता है उस पत्नी से पूछो जो मरे हुए पति को देख कर रोती है, चिल्लाती है, बिलखती है परन्तु साथ ही साथ यह भी कहती है "उठाओ इसे, लेजाकर आग लगा दो बहुत देर हुई जाती है।" उस पिता से पूछो जो अपने लाड़ले बच्चे की लाश को गोद में उठा कर नदी में फैंक देता है क्योंकि अब वह केवल शरीर है उस का बच्चा नहीं—नहीं तुम यह शरीर नहीं, यह शरीर तुम्हारा साथी भी नहीं यह तो कुछ दिनों का साधन मात्र है।

रणवीर ने एक बार एक प्रश्न का उत्तर देते हुए सूर्य मण्डल के ग्रहों का वर्णन किया था और अन्य ग्रहों पर रहने वाले मनुष्य

की आयु का हिसाब लगाया था। हमारी यह पृथिवी सूर्य के गिर्द एक चक्कर ३६५ दिन ६ घण्टे और कुछ सैकिण्ड में लगाती है अर्थात् हमारी पृथिवी पर एक वर्ष ३६५ दिन और ६ घण्टे का होता है हमारी पृथिवी से सूर्य नौ करोड़ तीस लाख मील के अन्तर पर है परन्तु सूर्य मण्डल के कई ग्रह इस से भी अधिक दूरी पर हैं। सूर्य से मंगल की दूरी चौदह करोड़ सत्तरह लाख मील, बृहस्पति की दूरी ४८ करोड़ ३९ लाख मील, शनिश्चर का अन्तर ८८ करोड़ ७९ लाख मील। सूर्य मण्डल का सब से अंतिम ग्रह है यम। अंग्रेजी वाले इसे 'प्लेटो कहते हैं। वह सूर्य से ३ अरब ६७ करोड़ मील की दूरी पर है। जो ग्रह सूर्य से जितनी दूरी पर है उसे सूर्य का एक चक्कर लगाने में उतना ही अधिक समय लगेगा अर्थात् उस का एक वर्ष उतना ही बड़ा हो जाता है इस गणित के अनुसार मंगल का एक वर्ष पृथ्वी के एक वर्ष साढ़े नौ मास के बराबर होता है। शनिश्चर का एक वर्ष हमारे २९ वर्ष और छः मास के बराबर होता है और सब से अन्तिम ग्रह यम का एक वर्ष पृथिवी के २४७ वर्ष और साढ़े सात मास के बराबर है। अर्थात् जितनी देर में यम तारे पर एक वर्ष व्यतीत होता है उतनी देर में हमारी पृथिवी पर २४७ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, उसके साथ साथ सात मास और पन्द्रह दिन भी। और पृथिवी पर रहने वाले मनुष्य की आयु क्या है ? केवल ४० वर्ष भारत में ४० भी पूर्ण नहीं होते। यहाँ पहले आयु का मध्यभाग था २२ वर्ष अब नेहरू जी ने बहुत से प्रबन्ध किये तो आयु हो गई तीस वर्ष। तनिक सोच कर देखिये कि तारे के हिसाब से ये तीस वर्ष कितनी देर में समाप्त हो जाते हैं। यम तारे का एक वर्ष है

लगभग २४८ वर्ष का, छः मास हुए १२४ वर्ष के, तीन मास हुए ६२ वर्ष के, एक मास हुआ लगभग २० वर्ष का अर्थात् भारत के व्यक्ति की आयु यम तारे के हिसाब से केवल ४५ दिन है।

यह है मानव शरीर की वास्तविकता जिसको हम अपना आप समझ बैठे है, अपना साथी मान बैठे हैं। यह अपना आप है नहीं, बहुत समय का साथी भी नहीं, यह तो केवल कुछ दिनों का खेल खेल है। तुम्हारा वास्तविक अपनापन है आत्मा और उसका साथी है वह सूक्ष्म शरीर जो इस शरीर के भीतर रहता है, जो जन्म जन्म से इस के साथ चला आता है। बाहर का यह शरीर आता है और चला जाता है, आत्मा इसके साथ चला नहीं जाता। आत्मा के साथ केवल सूक्ष्म शरीर जाता है और यह सूक्ष्म शरीर ही वह पुस्तक है जो स्वाध्याय के लिए पढ़नी चाहिए। जन्म जन्म से इस पुस्तक में प्रत्येक वह बात लिखी जा रही है, जिसे आपने किया या सोचा प्रतिदिन इस पुस्तक में नई बातें लिखी जाती हैं इसलिए प्रतिदिन इसे पढ़िये। यदि इसमें कोई अच्छी बात लिखी गई, किसी आवश्यकता वाले को दान देने, किसी दुःखी की सेवा करने या किसी निर्बल को सहायता देने की बात लिखी गई तो प्रभु से प्रार्थना कीजिये कि इस प्रकार की अच्छी बातें और हों और कोई खोटा कर्म हो गया है तो भी प्रार्थना कीजिये कि ऐसा कर्म फिर न होने पाये।

यह है स्वाध्याय का अपने आपको पढ़ने का अर्थ। इस स्वाध्याय का महत्व कितना है यह समझना हो तो शास्त्र के ये शब्द सुनिये:—

"सारी पृथिवी को उसके सागरों और पर्वतों के समेत यदि

कोई सोने से ढक दे और इस सोने के साथ पृथिवी का दान कर दे तो इस दान को जो फल होता है वह स्वाध्याय का फल है।"

परन्तु सुनो, जो लोग इस प्रकार स्वाध्याय नहीं करते, सूक्ष्म शरीर की पुस्तक को नहीं पढ़ते और इसमें आई हुई बुराइयों को दूर करने का यत्न नहीं करते उन्हें भी एक दिन यह पुस्तक पढ़नी होती है अवश्य। एक दिन:—

दस द्वारे का पींजरा ता में पछी पौन।
रहने में अचरज है, जाये अचम्भा कौन॥

एक दिन जाना पड़ता है और तब सूक्ष्म शरीर की यह पुस्तक पन्ना पन्ना करके खुलती है। एक के पश्चात् दूसरा पन्ना आत्मा की आंखों के सामने आता है मनुष्य उसे देखता है और रोता है परन्तु उस समय यह पुस्तक रोने की परवाह तो नहीं करती। जले अक्षरों में, जले चित्रों में इस जन्म की और पिछले जन्म की कहानी को वह आत्मा के समक्ष रख देता है। पढ़ते २ पन्ना उलटते २ अन्तिम पन्ना आ जाता है जिस पर इस मानव चोला से निकलने और दूसरे चोले में जाने की आज्ञा लिखी है, जब वह पढ़ता है कि अब बिच्छु या सुअर या साँप के चोले में जाना होगा तो रोता है परन्तु अब रोने का क्या लाभ? जब तू कुत्ते की भाँति काम वासना में फंसा रहा धर्म, समाज, नीति किसी को तू ने नहीं देखा, अब कुत्ते के शरीर में जाना होगा तुझे चल वह बाजार में खड़ी कुतिया तेरी माँ बनने की प्रतीक्षा कर रही है। उठ तेरा समय हो गया है—इस प्रकार वह पुस्तक कहती है। उस समय मनुष्य रोता और चिल्लाता है पछताता है, परन्तु अब पछताने से होगा क्या? अरे जिस समय पछताना चाहिये था, उस पुस्तक को पढ़ना चाहिए था, त्रुटियों

को सुधारना चाहिए था उस समय तो तू ने ऐसा किया नहीं अब रोने से क्या होगा। जब बुरा कर्म किया तब सोचा नहीं। अब फल सामने है तो रोने से वह बदलेगा नहीं। ईश्वर को गालियां देने से समाप्त नहीं होगा।

परन्तु यह पुस्तक केवल पाप करने वाले को नहीं पढ़नी पड़ती धर्मात्मा को भी पढ़नी पड़ती है है। अन्तिम समय पर इसके सूक्ष्म शरीर का पुस्तक भी खुल जाता है। एक पन्ना सामने आता है उस पर लिखा है तू ने दान दिया, बहुत अच्छा किया दूसरे पृष्ठ पर लिखा है तू ने निर्धनों के लिए औषधालय बनाया था बहुत अच्छा किया, तीसरे पर लिखा है तू ने नंगे को कपड़ा दिया, एक लंगड़े की सहायता की। इस प्रकार प्रत्येक पृष्ठ पर कोई न कोई अच्छी बात लिखी है प्रत्येक बार यह भी लिखा है अच्छा किया। अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है अब तुझे देवताओं का शरीर मिलेगा क्योंकि तू देवता बन कर अपना जीवन व्यतीत करता रहा और मरने वाले के मुखमण्डल पर मुस्कराहट खेलने लगती है।

जा मरने ते जग डरे मेरे मन आनन्द।
मरने ही ते पाइये पूर्ण परमानन्द॥

लोग रोते हैं उस समय, मरने वाला नहीं रोता—

जब तुम आओ जगत् में जग हँसे तुम रोय।
ऐसी करनी कर चलो तुम हँसो जग रोय॥

ऐसी करनी कर मेरे भाई—

वह चाल चल कि उमर खुशी से कटे तेरी।
वह काम कर कि याद तुझे सब किया करें॥

जो जिकर हो तेरा ही हो जिकरे खैर ही।
और नाम तेरा लें तो अदब से लिया करें॥

परन्तु यह सब कुछ तभी होगा जब प्रतिदिन इस पुस्तक को पढ़ोगे जो इस शरीर में विद्यमान है जो आत्मा को लपेटे बैठा है। जो जन्म जन्म से इसके साथ चला आ रहा है और तब तक साथ रहेगा जब तक आत्मा को जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति नहीं मिल जाती। यह है स्वाध्याय और उसका फल।

क्रिया योग की तीसरी आवश्यक बात है ईश्वर प्रणिधान अपने आपको ईश्वर के अर्पण कर देना—योग की भाषा में इसे ईश्वर प्रणिनिधान कहते हैं। भगवान् कृष्ण ने गीता में इसको शरणागति कहा। महर्षि ने इसे उपासना का नाम दिया। भारत के सन्तों ने इसी को दासता और भक्ति कह कर इसका प्रचार किया कबीर ने कहा:—

मुक्ति मुक्ति मांगू नहीं भक्ति दान दे मोहे।
और कोई जांचू नहीं, निस दिन जांचू तोहे॥

और यह भक्ति भगवान् को कितनी प्यारी है इसका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा—

जल ज्यूँ प्यारा माछली लोभी प्यारा दाम।
माँ को प्यारा बालका, भक्त प्यारा राम॥

भक्ति की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा:—

और कर्म सब कर्म हैं भक्ति कर्म निष्कर्म।
कहे कबीर पुकार के भक्ति करो तजि भ्रम॥

और दादू महाराज ने इसी भक्ति का वर्णन करते हुए कहा, "हे गोविन्द! तू ही मेरा गुरु है, तू ही मेरा गोस्वामी, तू ही मेरा ज्ञान है तू ही मेरा देवता, तू ही ध्यान तू ही मेरी पूजा है तू ही

आरतो, तू ही मेरा तीर्थ है तू ही मेरी जाति तू ही मेरा शील है, सन्तोष है, मुक्ति है, तेरे अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये क्योंकि दूसरे के लिए अब स्थान ही नहीं।

और प्रभु भक्त देव दयानन्द आर्याभिविनय में प्यारे प्रभु को कितने ही नामों से पुकारते हुए भगवान् से कहते हैं—'हे परम मित्र ! जो (भक्त) आप को आत्मादिदान (आत्मसमर्पण) करता है, आप उसको व्यवहारिक तथा परमार्थिक सुख अवश्य प्रदान करते हो। हे प्राण प्रिय ! अपने भक्तों को परमानन्द प्रदान करना आप का सत्यव्रत है। प्रभो ! यही आपका स्वभाव हम को सदा सुखदायक है। हे परमैश्वर्यवान् प्रभु हम हृदय से अत्यन्त प्रेमपूर्वक आप को गावें, आप की स्तुति करें, आपकी कृपा से हमारा परमैश्वर्य बढ़ता रहे और परमानन्द को प्राप्त हों।"

और ईश्वर प्रणिधान का अभिप्राय लिखते हुए भक्त दयानन्द आदेश देते हैं कि:—

"ईश्वर में विशेष भक्ति होने से, मन का समाधान हो के मनुष्य समाधियोग को शीघ्र प्राप्त हो जाता है।"

यह है ईश्वर प्रणिधान, अपने आपको उसके अर्पण कर देना! सच्चे हृदय से पूरे विश्वास के साथ कहो कि मुझे तेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये। मेरा यह कर्म तेरे अर्पण है, मैंने अपना हाथ तेरे हाथ में दे दिया, जिधर तू चाहे उधर ले चल। माना कि मैं भूला रहा प्रभो ! माना कि मैल चढ़ गई मुझे परन्तु अब तो ओ दीन दयाल ! ओ दया सागर ! करुणा निधि !

माना कि तेरी दीद के काबिल नहीं हूँ मैं।
तू मेरा शौक देख, मेरा इन्तज़ार देख॥

देख कि मेरा तेरे अतिरिक्त कोई नहीं, मुझे तेरे अतिरिक्त किसी की चाह नहीं।

ये तीन बातें—तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान हो जायें तब ईश्वर का दर्शन मिलता है अवश्य। यह कहना ठीक नहीं कि ईश्वर दिखाई नहीं देता। दिखाई देता है अवश्य परन्तुः—

दीदार की तलब के तरीकों से बेखबर।
दीदार की तलब है तो पहले निगाह मांग॥

हाँ तप स्वाध्याय और आत्म समर्पण के द्वारा अन्तरात्मा की दृष्टि को उत्पन्न करो तो प्रभु दर्शन होगा अवश्य। इसी शरीर में होगा कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। बाहर भटकना चाहते हो तो भटको, विज्ञान के आविष्कारों में अपना मन लुभाओ, सरकस का खेल देखते रहो परन्तु स्मरण रक्खो माया के इस संसार में शान्ति नहीं मिलेगी।

सकूने दिल जहाने बेश वो कम में ढूँढने वाले।
यहाँ हर चीज मिलती है सकूने दिल नहीं मिलता॥

माया के इस संसार में चलना चाहते हो तो चलो, दौड़ना चाहते हो तो दौड़ो परन्तु लक्ष्य नहीं मिलेगा अन्त में कहना पड़ेगा।

हम थक के गिरे गिर के उठे उठ के चले भी।
तुझ पै असंर ए दूरीये मञ्जिल नहीं होता॥

बना लो बड़े बड़े राकेट, एटम बम्ब और हाइड्रोजन बम्ब परन्तु लक्ष्य सदा दूर रहेगा, क्योंकि इस मार्ग में लक्ष्य है ही नहीं। यह मार्ग ही मार्ग है, भटकना ही भटकना। लक्ष्य पर पहुँचना है तो क्रिया योग के मार्ग को अपनाओ। तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान—यह क्रिया योग है।

अब सुनिये यह दर्शन किस प्रकार होगा ? पाल्थी मार कर कमर को सीधी करके बैठ जाइये। गरदन को इस प्रकार रखिये कि कमर और गर्दन एक सोध में हों। तब बाहर की आँखों को बन्द कर लीजिए। बन्द आँखों के अन्दर उस स्थान पर जहाँ दोनों आँखें नाक के मूल में आकर मिल गई हैं, थोड़ा ऊपर होके प्रकाश को देखने का प्रयत्न कीजिये। आरम्भ में यह प्रकाश दिखाई नहीं देगा परन्तु घबराइये नहीं। प्यार से श्रद्धा के साथ उसे देखने का यत्न करते रहिये। मन में ही प्रभु का नाम लेते रहिये उसे पुकारिये कहिये:—

गो मैं हूँ तुझसे दूर तेरी आरजू तो है।
तेरा पता मिले न मिले जुस्तजू तों है॥

परन्तु चिन्ता मत कीजिए। लग्न सच्ची है तो पता मिलेगा अवश्य। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो कुछ दिनों, कुछ सप्ताहों कुछ वर्षों के पश्चात्। इसी स्थान पर पहले साधारण सा प्रकाश दिखाई देगा जैसे दूर कोई जुगनू टिमटिमाता हो। फिर बुझती और जगती हुई, जगती और बुझती हुई--तीव्र प्रकाश जैसे विद्युत चमक रही हो तब और तीव्र ज्योति जैसे एक विशाल चिंगारी उठ रही हो। इसके सहारे अभ्यास करते करते अन्नमय कोश के आन्तरिक भाग का, प्राणमय कोश का, मनोमय कोश का, विज्ञान मय कोश का और अन्त में आनन्दमय कोश का दर्शन होगा जिस के भीतर वह परम सुन्दर परम आनन्द पूर्ण, परम शक्ति विराज मान है।

परन्तु दो बातों का ध्यान रखना पड़ेगा। एक यह कि आरम्भ में जो निराशा हो उससे घबरा नहीं जाना, थक कर अभ्यास को नहीं छोड़ देना, यह मत कहना कि:—

न पूछो कौन हैं, क्यों राह में लाचार बैठे हैं।
मुसाफिर हैं सफर करने की हिम्मत हार बैठे हैं॥

नहीं साहस मत छोड़ना, ओम् का, गायत्री मन्त्र का, परमात्मा के पवित्र नाम का जाप करते जाना, माता को पुकारते जाना मन्त्र के भाव को जीवन में ढालते जाना। अन्त में वह प्रकाश मिलेगा अवश्य और दूसरी बात जिस का ध्यान रखना है वह यह है कि मन को डगमगाने नहीं देना, इसमें विकार नहीं आने देना। मन को गिराना सरल है, पाप की अग्नि से उजाड़ना सरल है, आबाद करना कठिन है।

दिल का उजड़ना सहल सही, बसना सहल नहीं भाई।
बसती बसना खेल नहीं बसते बसते बसती है॥

इसलिये इस मन से सावधान रहना चाहिये।

महाराज गोपीचन्द अपने देश में शासन करते थे प्रत्येक सुख विद्यमान था। तभी गुरु गोरखनाथ घूमते घूमते राजा के महल में जा पहुँचे। राजा ने उनका उपदेश सुना तो वैराग्य हो गया। अपनी माता से बोले "मां! मैं संन्यास लेना चाहता हूँ।" माँ ज्ञानवती थी उसने कहा, "यदि तेरा मन दृढ़ है तो अवश्य ले ले संन्यास परन्तु पहले अपने गुरु के साथ कुछ समय रह कर देख यदि समझे कि मन को शान्ति मिलती है तो संन्यासी हो जाना अवश्य।" गोपीचन्द ने ऐसा ही किया। राज्य त्याग कर गुरु के साथ चल पड़े। प्रभु भजन का आनन्द आया तो अपना वेष भी बदल लिया, संन्यासी हो गये। देश देश में घूमते हुए वे फिर अपने देश में वापिस आये तो भिक्षा का पात्र लेकर महल में पहुँचे। जाकर आवाज दी 'अलख निरंजन'। माँ ने इस आवाज को सुना

भागती हुई द्वार पर आई। आश्चर्य के साथ बोली 'अरे गोपी। गोपीचन्द भिक्षा के पात्र को आगे करके बोले "माँ मैं भिक्षा हूँ, भिक्षा लेने आया हूँ।" माँ ने सोचते हुए कहा, "ठहर मैं तु भिक्षा दूंगी।" अन्दर जाकर वह चावल के तीन दाने ले आई एक एक करके तीनों दाने भिक्षा पात्र में डाल दिये। गोपीचन्द आश्चर्य से उन दोनों को देखा बोले, "मां ! मैं इस भिक्षा अर्थ नहीं समझा।" माँ ने कहा "नहीं समझा तो सुन। इन प्रत्येक दाना एक आज्ञा है। तू संन्यासी हो गया, फिर भी मैं ते माँ हूँ मेरी आज्ञा का पालन करना।"

गोपीचन्द बोले "क्या आज्ञा है मां !"

माँ ने कहा, "पहली आज्ञा यह है कि जैसे घर में सुरक्षि होकर रहता था, वैसे ही बाहर भी रहना।"

गोपीचन्द बोले, "परन्तु यह कैसे हो सकता है माँ ! मैं अ राजा नहीं, सिपाही और मन्त्री नहीं रख सकता पहरा देने लिये।"

मां ने कहा, "सिपाहियों और मन्त्रियों की आवश्यकता न परन्तु स्मरण रक्खो कि काम क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार डाकू हर समय तेरे आस पास रहते हैं उनसे बचने के लिए सत्स का, सत् विचार का, सत् आहार का, सत् आचार का किला ब कर रहेगा तो, ये डाकू तेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकेंगे।"

गोपीचन्द ने पूछा, "और दूसरी आज्ञा ?"

माँ ने कहा, "यह कि यहाँ घर में तेरे लिये जिस तरह ना प्रकार के भोजन तैयार होते थे और तू स्वाद से खाता था उ प्रकार जंगल में खाना।"

गोपीचन्द बोले, "परन्तु जंगल में ऐसा भोजन बनाएगा कौन ?'

मां ने कहा, "जब तू दिन भर परिश्रम करेगा, योगाभ्यास करेगा, तब भूख चमकेगी, जो कुछ भी रूखा सूखा खायेगा उसी में तुझे रस भरे पकवानों का स्वाद आयेगा। स्वाद पकवानों में नहीं भूख में है।"

गोपीचन्द ने पूछा, "तीसरी आज्ञा ?"

माँ ने कहा "घर में तेरे पास कितने ही नौकर चाकर थे। सुन्दर झूले में तू झूलता था। सेवक सेवा करते थे। दासियाँ गीत गातीं थीं, उन की मधुर ध्वनि से तू गहरी नींद में सो जाता था। उसी प्रकार बन में भी गहरी नींद सोना।"

गोपीचन्द बोले "यह कैसे होगा" ?

मां ने कहा "जब तेरे विचार अच्छे होंगे, जब योग के आसनों से तेरा शरीर थक जायेगा और ध्यान लगा लगा कर मन थक जायेगा तब गहरी निद्रा आयेगी अवश्य। नींद नौंकरों के कारण नहीं आती थकावट के कारण आती है।

ये तीन आज्ञाएं गोपीचन्द की माता ने उस को दीं।

मैं एक संन्यासी हूँ, आज्ञा तो नहीं दे सकता, चेतावनी दे सकता हूँ अवश्य कि यदि प्रभु दर्शन करने हैं, यदि शान्ति की इच्छा है और परम् आनन्द की अभिलाषा है तो मन को इस माया में फंसने नहीं देना। यह जो कुछ भी दिखाई देता है यह वास्तव में परिवर्तनशील है और जो दिखाई नहीं देता वही वास्तव में स्थिर और सब कुछ है। उसे न दिखाई देने वाले को देखने का, उस से मिलने का, उस का दर्शन पाने का मार्ग मैंने आप को बताया। और देखो, मैं एक साधू हूँ, बहुत योग्यता मुझ में है नहीं, परन्तु मैं

ने इस संसार को बहुत देखा है। देखने के पश्चात् दावे से कहता कि यदि कोई व्यक्ति शान्ति चाहता है और सच्चा सुख चाहता तो इस माया ठगनी से बचकर तप की भावना से वासना को करके, लगातार स्वाध्याय करते हुए, परन्तु कर्म करने और ईश्व के सामने अपने आप को समर्पण कर देने के सिवाय ईश्वर प्राप्ति का प्रभु दर्शन का और कोई मार्ग नहीं है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽ यनाय॥

जानता हूँ मैं उस परम पुरुष को, उस महान् को, उस ज्योति रूप को, जो माया के इस अन्धकार से परे आदित्य की भांति चमक रहा है। उस को जानने से ही मृत्यु की जन्म मरण के इस बन्धन की समाप्ति होती है इस के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।

वस्तुतः दूसरा कोई मार्ग नहीं। उसे जानने से ही सुख मिलेगा शान्ति मिलेगी। शेष रहा यह विज्ञान, तो यह अच्छा है भाई! मैं इस की निन्दा नहीं करता परन्तु मत भूलो कि यह केवल माया है सुख इस में है नहीं सुख का छलावा है केवल, सुख नहीं। यदि इस में सुख होता तो आज अमेरिका और रूस वाले संसार में सब से अधिक सुखी होते परन्तु वे यदि सुखी हैं तो एक दूसरे के भय से मरे क्यों जाते हैं ये एटम बम्ब और हाइडरोजन बम्ब, राकेट बम्ब और कोबाल्ट बम्ब क्यों बना रहे हैं।

सफाइयां हो रहीं हैं जितनी दिल उतने ही हो रहे हैं मैले।
अन्धेरा छा जायेगा सरासर अगर यही रोशनी रहेगी॥

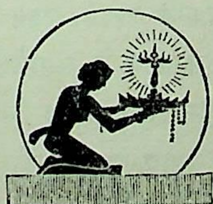
यह प्रकाश नहीं, यह तो अन्धकार की पूजा है। इसमें प्रकाश कभी आयेगा नहीं। ये सब के सब लड़ाई और झगड़े ईर्ष्या द्वेष

और घृणा अन्धकार की पूजा के कारण हैं। आज का संसार आत्मा को भूल गया है। जब तक उसे खोजेगा नहीं और पायेगा नहीं तब तक उसे शान्ति नहीं मिलेगी।

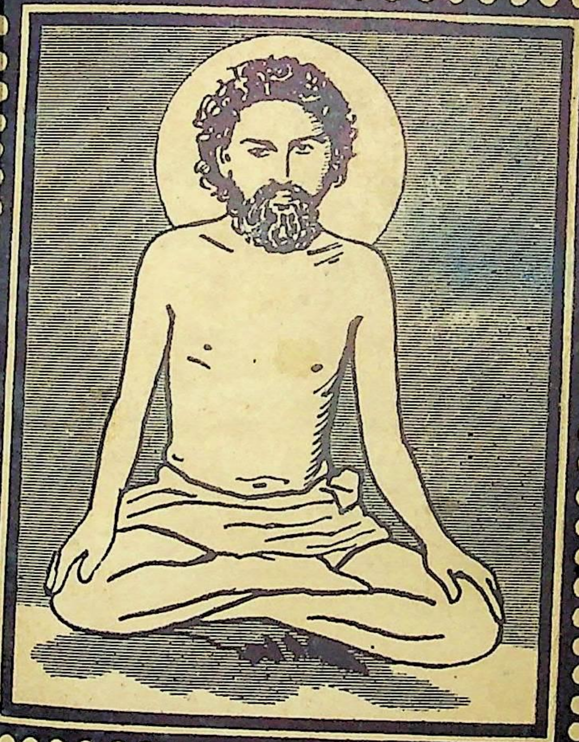
आओ आज बचन दो कि आप लोग प्रति दिन अपना कुछ न कुछ समय आत्मा को मैल को धोने और परमात्मा के निकट जाने में लगाओगे। तुम्हारे अन्दर जन्म जन्म से चैन को पुकारता हुआ सुख की खोज में व्याकुल और शान्ति के लिये, उन्मत्त आत्मा बैठा है, भगवान् को भूला हुआ, भक्ति से भरपूर भक्त प्रयत्न करो कि यह भक्त माया के बन्धनो को तोड़ कर अपने भगवान् को पाले। इसी में इसका सुख है, इसी में उसकी शान्ति। स्मरण रखो भक्त और भगवान् का यह मिलाप मनुष्य के इसी शरीर में होता है और किसी शरीर में होता नहीं। बहुत कठिनता से यह शरीर मिला। बहुत समय व्यतीत हो गया अब और समय नष्ट न करो यह वापस नहीं आयेगा जागो! जागो! और देखो कि:—

दूर प्यारे की पुरी है दिन किनारे आ गया।
चल नहीं तो इस झमेले में पड़ा पछतायेगा॥

॥ ओ३म् तत् सत् ॥



मुद्रक—बैंगाई प्रैस, देहली।



सम्पादक
कृष्ण कुमार

स्वामी सियारामजी के सदुपदेश

[मोक्ष-साधन]

मोक्ष-साधन

स्वामी सियारामजी

के

सदुपदेश

•

सम्पादक
कृष्णकुमार

•

वितरक
अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक :
राधाकृष्ण सहगल,
पोस्टबाक्स नं० १५,
भदोही (वाराणसी)

•

दूसरी बार : २,०००
सितम्बर, १९५९
मूल्य : एक रुपया

•

मुद्रक :
ओम्प्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी (बनारस) ५५२३-१६

समर्पण

महाराज के ज्येष्ठ व श्रेष्ठ शिष्य
तत्त्वदर्शी महात्मा सदानन्दजी
की
सेवा में सादर समर्पित

कृष्णकुमार

चेतावनी

अपने जीवन को उन्नति के मार्ग पर ही लिये जाते रहो। कोई बुद्धिमान् मनुष्य कभी समय को नष्ट नहीं करता। जो समय गुजर गया, फिर हाथ नहीं आ सकता।

बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेय।
जो बनि आवे सहज में, ताही में चित देय॥

अब लौं नसानी, अब ना नसैहौं।



अन्तिम आदेश

जिनकी सच्ची चाह है, वे जान भिड़ाकर कोशिश करेंगे, और सफलता प्राप्त करेंगे; परन्तु जिनके मन में विषयों की लालसा है, उनके लिए कठिन है।

—सियाराम

सम्पादक का निवेदन

श्रीस्वामी सियारामजी के उपदेशों का यह संग्रह भेंट करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष होता है। तीन वर्ष के थोड़े समय में ही श्रीस्वामीजी के जीवन-चरित्र और उपदेशपूर्ण-पत्र करीब-करीब समाप्त हो गये। मेरी यह हार्दिक इच्छा थी कि सत्संगियों तथा जिज्ञासुओं की सेवा में मैं महाराज के असूल्य उपदेशों को ऐसे रूप में रखूँ कि वे इसको दैनिक पठन-पाठन तथा कथारूप में काम ला सकें। साथ ही यह भी इच्छा थी कि इसके द्वारा संकट में पड़े साधक को शीघ्रातिशीघ्र उचित उपदेश तथा गुरु सन्देश पाना सुलभ हो जाय। इसमें मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, यह कहना कठिन है। पाठक स्वयं ही इस बात का निर्णय कर सकेंगे। श्रीगुरुदेव की अपार कृपा की स्मृति ने ही इस कार्य में मुझे बराबर प्रेरणा और उत्साह दिया और उसीके सहारे मैं इसे पूरा भी कर सका हूँ। मैं स्वयं इन उपदेशों को जीवन में उतारने की चेष्टा कर रहा हूँ। परन्तु जब तक जीवन सर्वपाशों से मुक्त नहीं होता, दोनों कार्य अधूरे ही रहेंगे। न तो कृतज्ञता सिद्ध होगी और न पूर्ण ज्ञान ही। इतना विश्वास अवश्य है कि मेरे सुहृद सज्जनों तथा गुरु-भक्त नर-नारियों का आशीर्वाद मुझे गुप्त तथा प्रकट रूप से मिल रहा है। उसीके सहारे मैं यह थोड़ी सेवा करने में समर्थ हुआ हूँ, यद्यपि मैं जानता हूँ कि मैं इसका सर्वथा अनधिकारी हूँ।

आशा है कि जिस रूप से मैं महाराज के सदुपदेशों को अब जनता के सम्मुख रख रहा हूँ, वह अधिक रोचक तथा सुलभ होगा और अपरिचित स्त्री पुरुषों के लिए अधिक लाभदायक होगा।

अध्यात्मशास्त्र प्रत्यक्षवाद ही है, परन्तु अधिकतर गुरु-गम्य है। योग-साधन तथा अन्तरीय अभ्यास का मार्ग बिना योग्य गुरु की सहायता

के भयावह, दुरूह तथा कठिन है। इसलिए योग-सम्बन्धी प्रकरण तो पाठकों को रुचि दिलाने के लिए ही रखा गया है। योग की क्रियाओं को बिना अनुभवी गुरु पाये केवल पुस्तक के आधार पर शुरू कर देना खतरे से खाली नहीं है। सभी पाठक-पाठिकाओं से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे बिना योगी गुरु पाये केवल पुस्तक पढ़कर योग की क्रियाएँ शुरू न करें, वरना उससे लाभ के बदले भयानक हानि हो सकती है।

कार्य जितना महान् मैंने उठाया है, उसके योग्य मैं अपने को नहीं पाता। ऐसी दशा में त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक ही है। योग्य साधक, विद्वान् पाठक और सुहृद सज्जन उनको स्वयं सुधार लेंगे तथा मेरे दोषों को क्षमा करते और सहते हुए अपने आत्म-लाभ के लिए गुणग्राहक वृत्ति को धारण कर सन्मार्ग की खोज करेंगे।

जहाँ तक सम्भव हो सका है, महाराज के अपने शब्दों में कम-से-कम परिवर्तन किया गया है। अनेक पत्रों में से एक ही विषय के उपदेशों को एकत्र करने में जहाँ-तहाँ वाक्यों तथा विचारों में सम्बन्ध ठीक करने के लिए थोड़े बहुत परिवर्तन की जरूरत पड़ी है। यह संग्रह असम्भव होता यदि श्रीस्वामीजी के अनेक शिष्यों तथा भक्तों की श्रद्धा इसमें सहायक न होती। उनकी अगाध श्रद्धा ने ही उन्हें गुरुदेव के पत्रों तथा उपदेशों को सम्हाल कर रखने की प्रेरणा दी, जिसके आधार पर यह संकलन तैयार हो सका है। इसके लिए मैं उन सबका आभारी हूँ। सभी मुझे आशीर्वाद दें ताकि मैं उनकी अधिकाधिक सेवा कर सकूँ।

—कृष्णकुमार

ज्ञान-सार

संसार में दुःख ही प्रधान है। जिसे हम सुख कहते हैं वह केवल दुःख की निवृत्ति है। वास्तव में हम दुःख का ही इलाज करते हैं। दुःख के घटते जाने को सुख-प्राप्ति समझ बैठे हैं। दुःख दो प्रकार के हैं। एक वास्तविक, दूसरा मानसिक। एक आधिदैविक, आधिभौतिक, दूसरा रिवाजी अथवा कल्पित। जो दुःख असली है वह सबको एक-सा भुगतना पड़ता है—बालक को, वृद्ध को, मूर्ख को, पुरुष को, स्त्री को, जब तक शरीर है, यह दुःख बना रहेगा। इसका न्यूनाधिक भान व कष्ट अपनी सहन-शक्ति पर है, जो अभ्यास और ब्रह्मचर्य्य आदि व औषधादि सेवन से प्राप्त होती है। शरीर के रहते-रहते इस दुःख का अभाव असम्भव है, यह अटल है। हाँ, योग-बुद्धि दृढ़ करने से अथवा अन्य कई साधनों से इसकी पीड़ा की मात्रा घट जाती है। इसका अत्यंताभाव शरीर के अत्यन्ताभाव से होता है, जिसका विचार आगे दिया है।

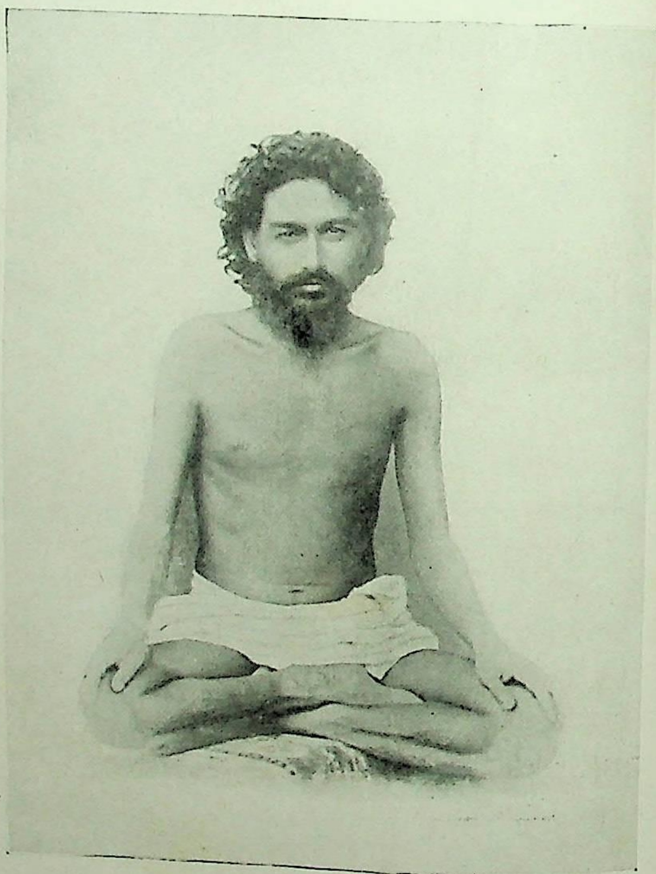
दूसरा दुःख मानसिक व कल्पित होने से इस शरीर ही में नाश्य है, क्योंकि इसका कारण मन का मिथ्या बोध है—जहाँ यथार्थ बोध हुआ, मन के खेल (संकल्प-विकल्प-रूप) बन्द हुए, वस्तु ज्यों-की-त्यों प्रतीत होने लगी। मिथ्या-बोध का आधार मन का अपने खेलों को न बन्द करना है। मन को अनादि काल से आदत पड़ी है कि अपने व्यवहार में निर्पेक्षता से काम नहीं लेता, अपनी ओर से ऊँच-नीच करता रहता है। चलायमान जल में जैसे आभास यथार्थ नहीं होता, ठीक इसी प्रकार चंचल मन में यथार्थ बोध नहीं हो सकता। राग-द्वेष (अनुकूल-प्रतिकूल) के भाव झट खड़े हो जाते हैं, जो चित्त (अन्तःकरण) को विक्षिप्त करते हैं। ज्ञान इन्द्रियों द्वारा रूप-रस-गन्धादि विषयों की केवल प्रतीति (बोध) होनी चाहिए, यदि मन निर्पेक्ष होकर देखे। ऐसा न होने से उल्टा बोध

होता है जो दुःख का कारण है। विषयों में सुख-बुद्धि उल्टा बोध है, यथार्थबोध प्राप्त करने के लिए पहले विषयों से सुख-बुद्धि हटनी चाहिए।

विषयों में सुख नहीं है, इसका अनुभव गुरुगम्य है, जिसके लिए वे सब साधन प्रतिपादन किये जाते हैं, जिनसे मन की मैल धुलती है। मन के मलिन संस्कार जो यथार्थ बोध का नाश कर रहे हैं, यम-नियम पालन से मिट जाते हैं। फिर चित्त शुद्ध होता है। शुद्ध व्यवहार, ब्रह्मचर्य्य सेवन, विषय-वासना-त्याग आदि सब इनके अन्तर्गत समझने चाहिए। इधर यह सब बाह्य साधन चलते हैं, उधर साथ ही अभ्यास अन्तरीय साधन चलता है; जिनसे अन्तःकरण के विकारों का नाश होने से, मिथ्या बोध (अविद्या) के नाश होने से वस्तु का स्वरूप प्रकट अनुभवित होता है—सब संशय, दुःख के रूप कट जाते है।

तीन दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति ही परम पुरुषार्थ है। वैराग्य और प्रभु-भक्ति ही इसके एकमात्र साधन हैं।

—सदानन्द



योगीराज श्री स्वामी सियाराम जी महाराज

स्वामी सियारामजी : एक जीवन-झाँकी

"जो हो चुका और जिसे हम टाल नहीं सकते, जिसका कोई इलाज भी नहीं, उस पर शोक प्रकट करना व्यर्थ है। आप तो सब बुद्धिमान् हैं। व्यर्थ के काम में समय और शक्ति को लगाना नासमझी ही मालूम होती है!"

पत्नी के देहावसान पर प्रोफेसर सियाराम के मुख से ये शब्द सुनकर रणधीर कालेज, कपूरथला के उनके सहयोगी-प्रोफेसर चकित रह गये। गये थे बेचारे समवेदना प्रकट करने और सुनने को मिला उपदेश!

× + ×

सियारामजी का जन्म हुआ जिला बाँदा के साथी गाँव में ३१ मार्च १८७३ को। पिता श्रीअंशुप्रसाद की जमींदारी तो छोटी-सी थी, पर दबदबा काफी था। स्वभाव कुछ कड़ा था। जो ठान लेते उसे पूरा करके ही मानते। माता मोहनी सरलता और सहृदयता की मूर्ति। सियारामजी ने पिता से दृढ़ता ली, माता से सरलता।

पढ़ने की धुन आपको बचपन से ही थी। गणित था आपका प्रिय विषय। बाँदा से आपने मिडिल पास किया। १८९५ में आपने मैट्रिक किया, १८९९ में आगरा के सेंटजान्स कालेज से बी० ए०। १९०१ में आपने डी० एस-सी० के प्रथम खण्ड की परीक्षा पास की। १९०३ में द्वितीय खण्ड की परीक्षा में बैठे तो प्रश्नपत्र में ही गलतियाँ निकाल दीं। अतः परीक्षक ने आप पर चिढ़कर आपको फेल कर दिया।

१९०३ में आप कपूरथला के रणधीर कालेज में गणित और विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त हो गये।

× × ×

चित्रकूट आने-जानेवाले साधु-सन्त साथी ग्राम में कभी-कभी आया करते थे। सियारामजी बचपन से ही उन्हें देखते और उनसे प्रभावित होते थे। तभी से साधना की ओर इनकी प्रवृत्ति हुई। गणित और विज्ञान के भक्त होने के कारण भावना में बहना तो इनके लिए सम्भव था नहीं। किसी भी बात को कसौटी पर कसे बिना स्वीकार न करते।

आगरा कालेज में पढ़ते समय एक दिन आप रोने लगे। खाना न पीना; पढ़ना न लिखना; रोना, सिर्फ रोना ! बहुत पूछने पर बोले—'संसार की समस्या का कोई हल नहीं सूझता। पता नहीं ईश्वर ने हमें इस सृष्टि में क्यों भेज दिया ?'

इनके शुभचिन्तक ने कहा कि घबराना व्यर्थ है। कोई-न-कोई 'कामिल' मिल ही जायगा जो इन सारी गुत्थियों को सुलझा देगा।

तब से सियारामजी अच्छे पथ-प्रदर्शक की तलाश में जोरों से लग गये।

सादगी, सत्यप्रियता, कष्टसहिष्णुता तो आप में बचपन से ही पनप रही थी। कपूरथला में प्रोफेसरी करते समय उसे भलीभाँति विकसित होनेका मौका मिला। यहाँ का छह साल का जीवन आपका साधना-काल माना जा सकता है। इस बीच आपने ऐसे-ऐसे साधन किये जिनसे आपकी साधना दृढ़ हो गयी, वैराग्य में परिपक्वता आ गयी और विषय-वासना निवृत्त हो गयी। काम, क्रोध और मोह के प्रबल झंझावातों का आपने जमकर सामना किया और उन पर धीरे-धीरे विजय भी प्राप्त कर ली।

× × ×

एक साधारण किसान परिवार में आपका जन्म हुआ था। जातिगत रूढ़ियों के कारण बिलकुल बचपन में ही आपका विवाह कर दिया गया था। पत्नी मिली दुनियादार। आप मोक्ष-मार्ग के पथिक, वह गहने-गुरिया, बेटे-बेटी की लालसा रखनेवाली ! आप समझा-बुझाकर उसे राहे-रास्त पर लाने का प्रयत्न करने लगे। एक बेटा हुआ, पर वह भी जाता रहा और उसकी माँ भी। बहुत खुश हुए आप—

भलुं थयुं भांगी जंजाळ। सुखे भजीशुं श्रीगोपाल ॥

चिता की भस्म माथे पर लगाकर बोले—'जैसे तू सती हो गयी, मैं भी साधु हो जाऊँगा।'

और दरअसल आप साधु हो गये।

पर कैसे साधु ?

न आपने कपड़े रँगे, न कफनी ओढ़ी। नौकरी भी नहीं छोड़ी। अपने गाँव पर भी आते-जाते रहे। पर आपकी साधना चलती रही

अविरत रूप से। षड्विकारों पर आपने विजय प्राप्त करने का निश्चय कर लिया और जी-जान से उसमें जुट गये।

× × ×

पत्नी का शरीर छूटने पर आपने सोचा कि अब ऐसी जगह चलना चाहिए जहाँ जीवन कुछ अधिक सरलता और सुगमता से कट सके। स्वामी श्रद्धानन्द का बहुत दिनों से तकाजा था, इसलिए आप कपूरथला छोड़कर १९०९ में गुरुकुल कांगड़ी में आ गये। वहाँ आप केवल ५२) लेने लगे। बाद में देखा कि इतना पैसा भी जरूरत से ज्यादा है, इसलिए केवल ३५) मासिक लेने लगे।

पहले आपका विचार था कि भिक्षा में शुद्ध अन्न नहीं मिलता, इसलिए अपनी नेक कमाई का कुछ रुपया बचाकर रखा जाय और उसीके सहारे फिर साधना की जाय, ताकि पराये दूषित अन्न से छुटकारा रहे, परन्तु बाद में आपके एक शुभेच्छु ने कहा कि 'शुद्ध अन्न की बात तो ठीक है, पर ऐसा करने से कुछ अहंकार और राग बना ही रहता है। जब सब-कुछ आप ईश्वर पर छोड़ रहे हैं, तो इसका भार भी उसी पर छोड़ दीजिये।'

बात आपको पट गयी। बची-खुची सम्पत्ति खर्च कर डाली। और एक दिन गुरुकुल से भी विदा लेकर चल दिये यह कहकर—

मालिक तेरी रजा रहे औ तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे!

× × ×

सच्चे जिज्ञासु को गुरु भी मिल ही जाता है। आपको भी सद्गुरु की प्राप्ति हुई। आपकी साधना परिपक्वावस्था को पहुँच गयी। योग की ओर आप विशेष रूप से झुके और षड्चक्रवेधन करके रहे। पैंतीस वर्ष की अल्पायु में ही आपने ब्रह्मनिष्ठा की उच्च स्थिति प्राप्त कर ली।

और उसके बाद आपने बीस वर्ष तक अनवरत रूप से अपना यह प्रसाद जनता-जनार्दन को मुक्तहस्त से लुटाया।

× × ×

जो जैसा साधक मिलता सियारामजी महाराज उसकी पात्रता के

अनुकूल उसे सही रास्ता दिखाते। किसीको जप बताते, किसीको मूर्ति-पूजा। किसीसे व्रत कराते, तो किसीसे हठयोग की क्रियाएँ। किसीको प्राणायाम बताते तो किसीको नाम साधन। उत्साही भक्तों से आप बहुत प्रसन्न रहते। आलसी भक्तों से आप प्रायः कहा करते— माया का मर्दन करना वीरों का काम है, कायर कुछ नहीं कर सकते !'

× × ×

आपकी तपस्या और तितिक्षा, सादगी और सरलता अद्भुत थी। मानापमान की कोई चिन्ता नहीं। किसीसे कुछ लेना-देना नहीं। विरोधियों के चरण छूकर प्रणाम कर लेते और प्रभु से प्रार्थना करते कि उसका कल्याण करें !

× × ×

जून सन् १९२९ में आप अपने कुछ भक्तों के साथ कैलाश-यात्रा पर निकले। शरीर अस्वस्थ था। एक भक्त को लिखा—'मन में कभी कहीं की इच्छा हो जाती है, कभी कहीं की। यदि इससे पूछा जाय कि इस इच्छा के पूरी होने से क्या लाभ होगा, तब कोई जवाब नहीं मिलता। परन्तु कोई-कोई इच्छा इतना तंग करती है कि निरर्थक सिद्ध होने पर भी नहीं जाती। ऐसी ही यह कैलाश-यात्रा की इच्छा है। अच्छा, जैसी प्रभु की मर्जी होगी, वही होगा।'

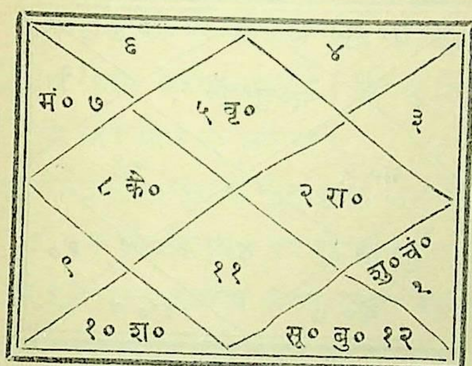
और यही यात्रा आपकी महान यात्रा सिद्ध हुई। ४ जुलाई १९२९ को प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में धारचूला में आपका पंचभौतिक शरीर शान्त हो गया !

× × ×

स्वामी सियारामजी महाराज ने अपने साधुचरित्र से आजीवन लोगों को प्रेरणा दी, उनके सदुपदेश युग-युग तक हमारा मार्ग-दर्शन करते रहेंगे !

काशी,
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, २०१६ } श्रीकृष्णदत्त भट्ट

स्वामी सियारामजी की जन्म-कुण्डली



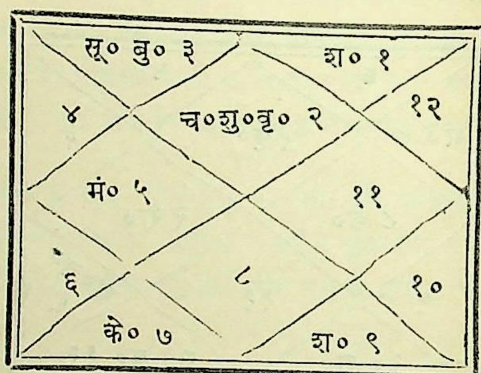
तृतीया, चन्द्रवार, शुक्ल पक्ष, चैत्रमास, १९३० सम्वत्
समय २८ घड़ी, ३६ पल
३१ मार्च, १८७२; ४ बजकर, २६ मिनट, सायंकाल

सार : ग्रहों की स्थिति देखकर साधारण रूप से ऐसा दिखलाई देता है कि ग्रह-बल सांसारिक विषय में साधारण, परन्तु मानसिक और आध्यात्मिक विषय में बहुत ही अनुकूल हैं।

ग्रहों के विशेष योग : धर्म-स्थान में चन्द्र, शुक्र योग है। वृहस्पति की दृष्टि पंचम पर और नवम पर पूर्ण है। चन्द्र, शुक्र, वृहस्पति का त्रिकोण योग होता है। नवम का स्वामी मंगल अपने स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है। राहु, केतु, शनि स्वस्थान में बलवान् हैं। सिंह लग्न में वृहस्पति है, और उनके अष्टम स्थान में सूर्य हैं। व्ययेश भाग्य स्थान में हैं।

प्रभाव : मानसिक उन्नति, उच्च आदर्श, आनन्द-प्राप्ति, स्वतन्त्र विचार, उदारता, योग-अभ्यास में रुचि, पराक्रम, धृति, वैराग्य और दूसरों को प्रभावित करनेवाला चरित्र आदि गुणों की ओर निर्देश करते हैं।

निर्वाण-कुण्डली



द्वादशी, बृहस्पतिवार कृष्ण पक्ष, आषाढ़ मास, १८८६ संवत्
४ जुलाई, १९२९ बृहस्पति, ३॥ बजे, प्रातःकाल

विशेषता : लग्न में उच्च का चन्द्र व स्वग्रह का शुक्र बृहस्पति के साथ संयोग करते हैं। राहु, केतु, शनि बलहीन द्वादश, षष्ट और अष्टम में हैं। मंगल, शत्रु ग्रह में चतुर्थ में होकर लग्न को देखता है। सूर्य्य की पूर्ण दृष्टि अष्टम स्थान में शनि पर है।

प्रभाव : पित्त के आधिक्य से दस्त, कै उदर-रोग और वायु का कुपित होना दिखलाई देता है। मन की स्थिति शान्त, आनन्दमय और चित्त का ध्येय में मग्न होना और मोक्षदायक गति मालूम पड़ती है। बृहस्पति, चन्द्र, शुक्र का योग ही विशेष है और पुण्य-सूचक है।

मोक्ष-साधन-सार

१. पाँच ज्ञान-इन्द्रियों से केवल ज्ञान ही होता है, इनसे यथार्थ बोध प्राप्त करना चाहिए। विषय-भोग में पड़ने से यथार्थ बोध नहीं प्राप्त हो सकता।

२. सब ज्ञान-इन्द्रियाँ शरीर के निर्वाह के अर्थ हैं।

३. इससे शरीर के निर्वाह मात्र पर ही दृष्टि रखनी चाहिए।

४. दुःखों को हर समय स्मरण करते रहना चाहिए।

५. द्रष्टा रहने का स्वभाव दृढ़ करते रहना चाहिए।

६. भजन नियमपूर्वक होना चाहिए।

७. संसारी पुरुषों के संग से दूर रहना चाहिए।

८. इन्द्रियों और मन के विषयों से सर्वदा उपराम रहो।

९. अभिमान से बचो, नहीं तो गिर जाओगे।

१०. स्वतन्त्रता के लिए हर समय उपाय करना चाहिए।

११. मोह की सेना को विचार की सेना से जीतना चाहिए। काम को यथार्थ बोध से, क्रोध को क्षमा से, लोभ को सन्तोष से, अहंकार को नम्रता से और मोह को संसार की असारता पर विचार करने से जीत सकते हैं।

१२. दुःखों के कारण का त्याग अथवा सर्वनाश जीवन का लक्ष्य है।

अनुक्रम

जो क्षणिक संसारी सुख है, वह प्रथम सुख-सा भासता है, पीछे दुःख उठाना पड़ता है। जो परमार्थ का सुख है, उससे पहले कुछ दिन कठिनाई होती है, पीछे अनन्त सुख होता है।

सुख-दुःख

संसार न दुःखरूप है, न सुखरूप है। बहुत कुछ सुख या दुःख केवल मानसिक है, अर्थात् कल्पित है, यानी धोखा है।

जो शारीरिक दुःख हैं, वह भी बहुत कुछ अभ्यास पर निर्भर हैं। सहन-शक्ति जिस कदर ज्यादा है, उसी कदर शारीरिक दुःख भी कम मालूम होता है। परन्तु यह कहना कि शारीरिक दुःख बिलकुल नहीं है, अपने अनुभव से परे है। शारीरिक सुख भी हैं, परन्तु बहुत थोड़ी देर रहनेवाले हैं, यानी Transitory or passing (क्षणिक) हैं— दुःख अधिक देर तक ठहरनेवाला अनुभव में आता है।

वैषयिक सुख बहुत क्षणिक हैं। अलबत्ता योग-अभ्यास से जो शारीरिक सुख होता है, वह देर तक रहनेवाला है। परन्तु यह सब सांसारिक या प्राकृतिक सुख के अन्तर्गत हैं। और विचित्रता यह है कि इस सुख के लिए मनुष्य अनेक प्रकार के कर्म करता है और जब गलती हो जाती है, तब दुःख अधिक उठाना पड़ता है।

यह जो कहते हैं कि संसार दुःखमय है, इसका आशय हम यही समझते हैं कि शारीरिक दुःख, सुख के मुकाबले में बहुत हैं। जैसे कोई पदार्थ अति गरिष्ठ होने पर यदि स्वाद के सुख की वजह से अधिक खा लिया जाय, तो वह सुख केवल तभी तक रहता है, जब तक कि वह पदार्थ

जिह्वा के नीचे नहीं चला जाता, और यह समय बहुत थोड़ा होता है। परन्तु यदि उससे पेट में दर्द हो जाय, तो वह शूल बहुत देर तक रहता है। दूसरे, मानसिक सुख भी थोड़ी देर का है और उसकी पूर्ति के लिए बहुत दुःख उठाना पड़ता है; और यदि गलती हो जाय, तो शारीरिक दुःख भी हो जाता है। जैसे, कोई असाध्य रोग हो जाय तब जन्मभर तक वह दुःख देता रहता है।

बाहरी और भीतरी सुख

जिनको भीतरी सुख का पता नहीं है, वे तो बाहर ही भटकते रहते हैं, और जीते-जी नरक भोगते रहते हैं, परन्तु इसमें उनका कोई कसूर नहीं है, क्योंकि उनके भीतर के कपाट तो बंद हैं। इसलिए जैसा उनको सूझ रहा है, वैसा कर रहे हैं। अनुभवी को अपने तजुर्बे पर चलना चाहिए।

सांसारिक और पारमार्थिक सुख

जो क्षणिक संसारी सुख है, वह प्रथम सुख-सा भासता है, पीछे बहुत दुःख उठाना पड़ता है। जो परमार्थ का सुख है, उसके पहले कुछ दिन कठिनाई प्रतीत होती है, पीछे अनन्त सुख होता है।

दुःख से लाभ

शरीर की मरम्मत तो करनी ही पड़ेगी और जो कुछ इसमें दुःख होंगे, वे भी सहने ही पड़ेंगे। चाहे रोकर सहें, चाहे विचार के साथ। यह मानसिक अवस्था के ऊपर निर्भर है। शरीर का दण्ड सबको भोगना पड़ता है। समझदार विचार से भोगता है, मूर्ख रोकर भोगता है।

हमारा अनुभव यह है कि शारीरिक दुःख आत्मिक उन्नति में इतना विघ्न नहीं डालता जितना कि मानसिक दुःख डालता है। शारीरिक दुःख जितना होता है, उसमें मन न शामिल होने पाये, फिर यदि विचार का सहारा रहे, तो वही दुःख उन्नति में सहायक बन जाता है। पारसभाग में भी लिखा है कि महात्माओं को कोई-न-कोई दुःख लगा ही रहता है। इससे उनके धैर्य की परीक्षा होती रहती है और सहन-शक्ति बढ़ती जाती है।

संसार दुःखमय है। सुत, वित, लोक की, तीन प्रकार की एषणाएँ ही दुःख में डालती हैं। जिसका मन इनको असली तौर पर छोड़ नहीं चुका है, उसको न तो यहाँ सुख है और न आगे होगा। हाँ, जो विवेकी और धैर्य्यवान पुरुष इनमें न फँसकर शरीर-यात्रा के लिए कर्म करता रहता है, वह हमेशा के लिए दुःख से मुक्त हो जाता है। जीते-जी तो मानसिक दुःख से छूटा हुआ रहता ही है। आगे भी शास्त्र कहता है कि वह निर्भय होकर इस शरीर को छोड़ जाता है और फिर चक्कर में नहीं पड़ता।

सुखी कौन है ?

इस दुनिया में दो ही प्रकार के लोग सुख से रह सकते हैं। एक तो वे, जो दुनिया की बातों को बिलकुल समझते ही नहीं, बिलकुल अनभिज्ञ हैं। दूसरे वे, जो समझते हैं परन्तु बिलकुल परवाह नहीं करते, विचार-विवेक के आधार पर अपनी यात्रा पूरी करते हैं। बीचवाले गड़बड़ी में रहते हैं।

दुखी संसार

मेरे पास जो आते हैं, दुखी ही आते हैं। उनके दुःख को दूर करने की शक्ति तो मेरे में नहीं है, परन्तु दुखी जरूर हो जाता हूँ, रोक नहीं सकता। यह मेरी कमजोरी है। दूसरों का दुःख देखकर मैं अपना दुःख भूल जाता हूँ।

सुख धोखा मात्र है !

लोग प्रायः दुःख-निवृत्ति को ही positive (वास्तविक) सुख समझ लेते हैं और धोखे में रहते हैं। दुःख-निवृत्ति की अवस्था में गुजरने पर जो relief (आराम) मालूम होता है, उसी सुख में फँसे रहते हैं, और कोई-कोई तो दुःख को ही सुख समझ बैठते हैं, और उसीमें मस्त रहते हैं। परन्तु जो समझते हैं कि यह सब धोखा है, positive (वास्तविक) सुख ही नहीं मिलता, उनको तो जीवन कैद प्रतीत होता

है। जो इस बात को अनुभव नहीं करते वे भले ही ठीक-ठीक समझने-वालों को बुरा-भला कहें, परन्तु उनका इससे कुछ बिगड़ता नहीं। उनकी दृष्टि में संसार का जो कुछ भान हो रहा है, वह सब बेफायदा ही है, न भान हो तभी ठीक है। फिर इससे अधिक दूसरों की रायजनी क्या हानि पहुँचा सकती है।

सुख-दुःख में समता

प्रश्न : ज्ञानी के लिए जब सुख और दुःख सम हैं, फिर उसे दर्द कैसे होता है? ऋषिकेश में स्वामी पूर्णाश्रमजी तो ठंड में बाहर ही पड़े रहा करते थे। एक दिन किसी दुष्ट ने उनका कंधा शस्त्र से काट-सा डाला, परन्तु उन्होंने कुछ न कहा और चुपचाप चले गये। इससे प्रतीत होता है कि उनको कष्ट ही नहीं भासता होगा।

उत्तर : दर्द सबको होता है। हाँ, सहन-शक्ति अवश्य रहती है। मानसिक कष्ट न शामिल करो, तो शारीरिक कष्ट इतना नहीं प्रतीत होता। ज्ञानी धैर्यवान होता है, सब कष्ट को सह लेता है। चोट के कष्ट से ज्ञानी के नित्य नियम में, भजन आदि में, कोई बाधा नहीं पड़ती। स्वामी पूर्णाश्रमजी भी तो अन्त में कह गये थे कि 'दुःख-सुख में बिलकुल सम होना असम्भव है; हाँ, उसे सह लेना दूसरी बात है।' सह लेने में वे दक्ष थे।

एक दिन एक अपढ़ पठान ने किसी बात पर अड़कर कहा : "हमारी अँगुली काट लो, हम जरा भी नहीं घबरायेंगे।" उसने अँगुली को आगे कर दिया और दूसरे ने सचमुच अँगुली काट ही डाली, पर वह जरा भी न डिगा उसने चुपचाप सह लिया। यह आत्म-ज्ञान नहीं, सहन-शक्ति है।

अपना अनुभव

शरीर और मन दोनों दुःख देते हैं और इनसे लाभ कुछ नहीं प्रतीत होता। यदि ये दुःख न दें, तब भी कोई काम नहीं निकल सकता। यदि ये चुप रहें और निकम्मे से पड़े रहें तभी ठीक रहता है। परन्तु ऐसा होना

असम्भव है। क्या हुआ जो थोड़ी देर के लिए चुप हो गये, स्थायी तौर पर चुप रहते ही नहीं।

शरीर के लिए पहले तो अनुकूल स्थान ही नहीं मिलता, यदि संयोग से कुछ अनुकूलता हो गयी तब भोजन का प्रबन्ध कठिनता से होता है। उसमें भी यह दिक्कत कि अनुकूल पदार्थ का मिलना कठिन हो जाता है। यदि कुछ अनुकूल मिल भी गये, तो लकड़ी की कठिनाई आ पड़ती है। यदि उसका भी कुछ बन्दोबस्त हो गया, तब भोजन बनाने में बड़ी दिक्कत होती है। यदि बाहर बनायें तो धुआँ से बचते हैं, परन्तु हवा तंग करती है। यदि भीतर बनायें तो धुआँ तंग करता है। ज्यों-त्यों करके जब भोजन तैयार हो गया, तब खाने की कठिनाई मालूम होती है। जबड़ों से कुछ काम चलता है; परन्तु, यदि कभी जबड़ा निकम्मा हो गया, तब और भी कठिनाई हो जाती है।

यदि जबड़े ठीक हुए, तब भी यह पता लगाना कठिन है कि कितना भोजन अन्दर डालें, जो ठीक-ठीक पच जाय। इसमें प्रायः धोखा हो जाता है। फिर उसका फल दु.ख खड़ा हो जाता है। यदि कुछ सँभलकर खाया भी गया, तब पचाने की फिक्र होती है। उसके लिए घूमना-फिरना पड़ता है। यदि कभी वर्षा या अन्य कारण से उसका मौका न मिला, तब दूसरे दिन भूख में फरक पड़ता है। यदि घूमने-फिरने का मौका मिला भी, तब नित्य प्रति उतना ही सफर हो, यह कठिन है। किसी वजह से रास्ते में हेर-फेर हो जाने से सफर में कमी-बेशी हो ही जाती है, जिससे आगे को क्षुधा लगने में कमी-बेशी हो जाती है। अब बनानेवाला भोजन बनाते समय कैसे जाने कि कितनी भूख लगेगी। फिर सुबह को शौच जाने का बन्धन अलग है। ये सब बातें होने पर यदि निद्रा ठीक-ठीक न आये, तब भी मुश्किल है। शरीर-यात्रा के लिए दूसरों के सामने जो दीन होना पड़ता है, वह अलग रहा।

अब मन में कभी कहीं की इच्छा हो जाती है, कभी कहीं की। यदि उससे पूछा जाय कि इस इच्छा के पूरे होने से क्या लाभ, तो कोई

जवाब नहीं मिलता। परन्तु कोई-कोई इच्छा इतनी तंग करती है कि निरर्थक सिद्ध होने पर भी नहीं जाती।

जब तक शरीर है, कुछ-न-कुछ झगड़ा लगा ही रहना है। शरीर छूटने के बाद यदि प्रभु बिलकुल शरीर से अलग रखें, तो ठीक है; वरना फिर यही दुःख झेलने पड़ेंगे। अच्छा, जैसी प्रभु की मरजी!

दुःखदायी नाटक

यह सब ईश्वर की कृपा से नाटक-सा प्रतीत हो रहा है। यह शरीर-यात्रा ही नाटक है, मन की लहरें भी नाटक हैं और कहाँ तक कहूँ, इस वक्त सब-कुछ नाटक प्रतीत हो रहा है। साथ ही यह भी प्रतीत हो रहा है कि यह नाटक फिजूल है, दुःखदायी है, उसमें सुख का अभाव है, सुख इससे परे है, परन्तु फिर भी भोगवश नाटक देखना ही है। पता नहीं यह सिलसिला कब तक जारी रहेगा। सब ईश्वराधीन है। इसलिए उन्हींकी मरजी पर अपने को छोड़कर विचरना ठीक है। Come what may, we have launched our vessel on the waves. (जो होना है, सो होता रहे। हमने अपनी नाव मझधार में डाल दी है।)

दुःख के नाश का उपाय

जो विचारशील पुरुष हैं, वे पहले एक रास्ते को आजमाकर दूसरे को लेते हैं; फिर तीसरे, फिर चौथे को लेते हैं, ताकि दुःख के कारण का नाश हो जाय। वे इस बात की परवाह नहीं करते कि दूसरे लोग भी दुःख के कारण का नाश करते हैं या नहीं; क्योंकि वे जानते हैं कि जो दवा का इस्तेमाल करता है वही दुःख से छूटता है, जो नहीं करता वह दुःख में पड़ा रहता है। इसलिए, यदि कोई पुरुष इतनी तीव्र इच्छा रखता है कि वह शांति के शिखर पर चढ़े बिना दम नहीं लेगा, तो समझना चाहिए कि वह जान चुका है कि संसारी प्रवाह में चलने से सुख नहीं हो सकता। संसारी तरक्की को, जिसकी आशा संसारी लोग प्रतिक्षण लगाये रहते हैं, वह सच्ची तरक्की नहीं मानता। जो लोग ऐसे

हुए हैं, उन्होंने दुनियावी ऐश्वर्य को लात मारी है, और आत्मिक उन्नति में ही कल्याण देखा है, और फिर दूसरों को भी इसी सत्यमार्ग का उपदेश किया है, जैसे बुद्धदेवजी, भर्तृहरिजी वगैरह। मुमुक्षु को उतने ही व्यवहार में शामिल होना चाहिए, जिससे उसके सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य में विघ्न न हो; पीछे उसकी यदि रुचि हो तो परोपकारी कार्य में योग दे सकता है। उस वक्त कार्य भी दूसरे ढंग से होगा तथा अधिक उत्तम और सुचारु रूप से होगा।

जब मनुष्य को तेज प्यास लगती है, जीभ सूखने लगती है, बोला नहीं जाता, उस समय वह यह नहीं सोचता कि प्यास किसने पैदा की, कब और क्योंकर हुई, बल्कि उसे सबसे पहले पानी की तलब होती है, और उसे पीकर वह शांत हो जाता है। वह यह नहीं जानता कि प्यास दुनिया में किस प्रकार आयी। ऐसे ही दुनिया में लोगों को अनेक महा दुःख हैं। उनकी जड़ काटने का सामान भी है, फिर इस फिलासफी, साइन्स और दलीलबाजी की जरूरत क्या है कि दुनिया किस वक्त से है? ईश्वर इसे क्यों पैदा करता है? शास्त्रों के आज्ञानुसार अमली जीवन बनाना चाहिए, जबानी जमा-खर्च फिजूल है।



धैर्य और पुरुषार्थ : ९ :

कितने दिन में ठीक-ठीक पता इस बात का लगा है कि असल में किस बात से प्राणी का कल्याण होता है। फिर इस सच्चाई को समझकर यदि जोर से न पकड़ा गया और शरीर छूट गया, तो घाटा ही रहा। केवल जान लेना ही तो काफी नहीं, उस पर बलपूर्वक चलने से ही कुछ होगा।

कोरी बातों की philosophy (फिलासफी) से (अर्थात् कोरे वाचिक तर्क से) कुछ काम नहीं बनेगा, अमली philosophy (फिलासफी) कारआमद होगी।

दुःख और धैर्य

जब दुःख का कारण उपस्थित होता है, तब दुःख होना स्वाभाविक है। परन्तु धैर्यवान को चाहिए कि सृष्टि के नियमों को देखता हुआ धैर्य के साथ दुःख को सहे। जो होनहार है, वह प्रबल है, जिसके जरिये से होना हुआ, होकर रहता है, यह नियम है। सब संसार में दुःख ही दुःख नजर आ रहा है, फिर क्या किया जाय। ईश्वर की मरजी ऐसी ही है। ऐसी अवस्था में इसके सिवा कोई उपाय नहीं दीखता कि घबड़ाये नहीं, धैर्य रखे और शान्ति के साथ जो उपाय दुःख दूर करने का सूझे, उसे करता रहे। समय पाकर दुःख आप ही खातमे को पहुँचेगा, फिर चैन हो जायगा। विचार और धैर्य को कभी नहीं जाने दे। घबराहट और शोकग्रस्त-चित्त ठीक उपाय नहीं सोच सकता, बल्कि कभी-कभी उल्टा काम कर बैठता है, जिससे दुःख अधिक बढ़ जाता है।

भोग बलवान् है। जो दुःख है, वह पाप का ही फल कहा जाता है। इसको जड़ से उखाड़ने के लिए धर्म का सहारा मुख्य है, इलाज

दूसरे दरजे में है, वरना, अपना फल देकर ही खतम होता है। कर्म के फल में सब जीव पराधीन हैं। पाप का फल सबको भोगना ही पड़ता है। मूर्खता से, अभिमान से जीव मनमानी कर डालता है, पीछे रोता है।

महात्मा तुलसीदासजी कहते हैं :

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपतकाल परखिये चारी॥

यानी धीरज, धर्म, मित्र और स्त्री—इनकी आजमाइश जब कोई आपत्ति आती है, तभी होती है। उस वक्त मनुष्य को पता लग जाता है कि कहाँ तक इसमें धैर्य है, और कितना इसमें धार्मिक भाव, वैराग्य और त्याग है, और इसका मित्र और स्त्री का व्यवहार कैसा है। अगर ऐसे मौके में इसने धैर्य को कायम रखा, घबराहट में नहीं डूबा, अगर इत्तिफाकिया घबराहट आ भी गयी, तो विचार से हटा दिया और मोह के फन्दे में नहीं आया, बल्कि जैसा साधारण हालत में रहता था और काम करता था, इसी तरह मुसाफिर दृष्टि रखते हुए, अपना फर्ज समझते हुए आफत के समय में भी काम करता है, और चेहरे पर मलाल नहीं आने देता, तो समझना चाहिए कि इसका विचार दृढ़ है, और खयाल अमल में लाया है।

क्षमा तथा धर्म की परीक्षा ऐसे ही मौके पर होती है। यदि ऐसे मौके में मन में धैर्य, क्षमा तथा धर्म को न छोड़े, तो बहादुरी है। अन्त में सत्य की जय होती है, परन्तु उस वक्त मनुष्य को अभिमान न आना चाहिए।

मनुष्य पुरुषार्थ यानी कोशिश ही कर सकता है, फल उसके हाथ में नहीं है; मिले, न मिले। अपनी तरफ से कोशिश करना ही है, और बस। अंजाम की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जैसा कि तुलसीदासजी कहते हैं :

होइहै सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावइ साखा॥

आराम से वे हैं जो हर हाल में खुश हैं !

सब काम धीरज से होता है। इसलिए सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिए पुरुषार्थ में कमी नहीं करनी चाहिए। जो कुछ मौजूदा हालत में कर सकते हैं, उसमें देर नहीं करनी चाहिए।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
पल में परलय होयगी, फेरि करोगे कब्ब॥

यह जमाना सख्त लड़ाई का है, survival of the fittest (जो बलवान है वही बचता है) के उसूल के मुताबिक जो धैर्य कायम रखते हुए युद्ध में डटे रहेंगे, वे ही सफलता को प्राप्त करेंगे। 'हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम।' याद किया सबक अगर भूल जाय, तो दुबारा याद करने से आसानी से बेहतर याद हो जाता है। इसी उसूल पर मनुष्य को निश्चय रखना चाहिए कि जिस बात में पहले पुरुषार्थ करके कुछ तरक्की कर चुका है, उसमें फिर से ईश्वर के भरोसे पर कोशिश करने से आगे ही बढ़ना है, पीछे हटना नहीं होगा।

धैर्य की सब तारीफ़ करते हैं। मौजूदा शरीर का भोग पिछले कर्मों का फल है। वह भी धैर्य और बुद्धिमानी से भोगते जाना चाहिए, ताकि आइन्दा को यह भी झगड़ा बाकी न रहे। धैर्यवान के धार्मिक जीवन से कितनों को लाभ पहुँचता है, कितने हिम्मत हारे बूढ़ों को हिम्मत आ जाती है।

जब मनुष्य अपने विचार के अनुसार चलने के लिए कठिनाई झेलने को तैयार रहता है, तब प्रभु भी सहायता देते हैं। Man can do what man has done. (जो किसी मनुष्य ने कर दिखलाया है, वह दूसरा भी कर सकता है।)

धैर्यवान ही मंजिल पर पहुँचता है, अधैर्यवान और पुरुषार्थहीन के लिए असम्भव है।

इसलिए ईश्वर पर भरोसा रखते हुए कल्याण के मार्ग पर

चलते रहने की कोशिश से हटना नहीं चाहिए। वे आप ही पार लगा देते हैं।

यदि गिर भी जाय तो भी मनुष्य को अपनी शक्ति देखकर सँभलने का यत्न करना चाहिए। भूलें और अपवाद होते ही हैं, पर निराश नहीं होना चाहिए। पुण्य के संस्कारों को दृढ़ करते रहना चाहिए। यत्न को मत त्यागिये। यदि शुद्ध हृदय से लगे रहें तो प्रभु आप ही रक्षा करते हैं।

इस सिद्धान्त पर दृष्टि रखते हुए चले चलना चाहिए।

मुश्किले नेस्त कि आसाँ न शवद।
मर्द बायद कि हिरासाँ न शवद॥

सर शमाँ सा कटाइये, पर दम न मारिये।
मंजिल हजार दूर हो, हिम्मत न हारिये॥
दिले नादाँ को हम समझाये जायेंगे।
चरखे-जिगर में दाग दिखाये जायेंगे॥

जो बीज बोया जाता है उस पर चाहे कितनी मिट्टी या राखी पड़ जाय, मौका पाकर अंकुर लाता है और रक्षित रहने पर फल देता है। यही हाल उपदेश का है। पाप से वह चाहे कुछ काल के लिए दब जाय, पीछे अवश्य असर दिखलाता है। मोह को जीतना अत्यन्त कठिन है। जो पुरुष जख्मों से घबराता है, वह शत्रुओं के साथ लड़ाई नहीं कर सकता, उसका जीतना तो दूर रहा। हाँ, जो मर्द बनकर जान को हथेली पर लेकर चोट का भय न रखकर लड़ता है, वही विजय प्राप्त कर सकता है।

वैसे तो कर्म मात्र में ही कुछ-न-कुछ कठिनाई होती है। यदि उसमें आयी हुई थोड़ी-सी कठिनाई के भय से ऊबकर कर्म करना छोड़ दोगे, तो जरा विचारो कि मन की ऐसी आदत नहीं बन जायेगी? फिर मुक्ति जैसी दुर्लभ वस्तु, कि जिसके रास्ते में नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, कैसे प्राप्त कर सकोगे? इसलिए वही अन्त में

जीतेगा जो धृति को धारण करता है, चोटों से नहीं घबराता और विघ्नों के होते हुए पुरुषार्थ जारी रखता है।

सच्चा क्षत्रियत्व

क्षत्रियत्व यही है कि हमेशा साथ रहनेवाले शत्रुओं को मारे। तभी मनुष्य को शांति प्राप्त हो सकती है। बाहर के विघ्न आप ही हट जाते हैं, या तो जीते-जी या मरने के पीछे; परन्तु अन्दर के विघ्न मरने पर भी साथ जाते हैं और फिर वे ही बाहर के विघ्नों को भी पैदा कर देते हैं। इसलिए यदि उनको जीत लिया, तो बाहर के आप ही जीत गये—

क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना।
कुल कलंक तेहि पामर जाना॥

क्षत्रिय का क्षत्रियत्व यही है कि जो शत्रु उसे सदैव दुःख देते हैं, उनको जीते। यदि वह उनका गुलाम बना रहा, तो उसको पामर और कायर कहना चाहिए। जिसने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है, उससे तो विशेष आशा है कि वह बलपूर्वक अपनी शूरवीरता का परिचय देगा।

प्रण पर डट जाओ। यदि कभी सोच-समझकर हिम्मत करके तुमने जीव का कल्याण करनेवाली कोई बात करने का या किसी हालत में रहने का मन में दृढ़ संकल्प कर लिया और प्रभु को साक्षी देकर चलने पर कटिबद्ध हो गये, तो फिर पैर पीछे न पड़ना चाहिए। पैर आगे को ही पड़े। कठिन-से-कठिन विघ्न उपस्थित होने पर भी हिम्मत न छोड़नी चाहिए। प्राण जायँ तो जायँ, परन्तु कल्याण के मार्ग से मन न हटे।

प्रभु पर पूरा भरोसा रहे। जो घोड़ा करोड़ों वर्ष का बिगड़ा हुआ है, स्वतंत्र है, मतवाला है, बेपरवाह है, उसको काबू करना बड़े शूरवीर का काम है। वे धन्य हैं, जो उसके साथ युद्ध करने की हिम्मत रखते हैं। युद्ध में बहादुर लोग चोटों की परवाह नहीं करते और यदि लड़ाई देर तक लड़नी पड़े, तो अधीर नहीं होते। इसलिए कहा है, धृति,

क्षमा, इत्यादि धर्म के जो लक्षण हैं, उनका पालन करनेवाला ही अन्त में कल्याण-पद को प्राप्त होता है। इसलिए यदि मन के साथ लड़ाई करते हुए उसको अच्छी तरह न भी दबा पाया, तो कोई बात नहीं, कुछ-न-कुछ तो उसकी तेजी कम होती ही जाती है। परन्तु लड़ाई के अन्य नियमों का पालन किये बिना चिरस्थायी सफलता प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए, अन्य नियमों पर भी वैसी ही चढ़ाई रखनी चाहिए। कुछ काल पीछे जब अभ्यास हो जायगा, तब स्वभाव बन जायगा और कोई कठिनाई न प्रतीत होगी।

प्रण का पालन आवश्यक

यह तुमको भली प्रकार ध्यान रखना चाहिए कि संसार में जितना ही मूल्यवान् पदार्थ होता है, उसकी प्राप्ति के लिए उतना ही अधिक परिश्रम करना पड़ता है। मुफ्त में कोई चीज नहीं मिलती। जिन्होंने पहले जन्म में किसी बात के लिए बहुत परिश्रम कर लिया है, उनको इस जन्म में कम करना पड़ता है; जिन्होंने पहले नहीं किया उनको अब करना पड़ता है। ईश्वरीय नियम ऐसे ही हैं।

क्षत्रिय कुमारिनी जो प्रण करती हैं उसको पूर्ण करके छोड़ती हैं। प्राण जाय तो जाय परन्तु प्रण को त्यागकर कुल को कलंक नहीं लगातीं, क्योंकि शरीर को तो छूटना ही है, अब न छूटा, कुछ काल पीछे छूटा। जब कभी छूटे, ईश्वर-परायण होते हुए छूटेगा, तब उन्हींके पास जायगी, और जल्दी इस नरकरूपी शरीर से छुट्टी मिलेगी।

तुमको धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। धर्म और धैर्य की परीक्षा कठिनाई के समय होती है।

प्रकृति और पुरुषार्थ

तामसी, राजसी, सात्विकी अवस्थाओं के अन्दर तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण पूर्व कर्मानुसार उदय होते रहते हैं और उनमें अपना असर डालते रहते हैं। केवल तामसी अवस्था उसे कहना चाहिए, जिसमें पूर्ण आलस्य हो, परन्तु गाढ़ निद्रा या निद्रा के अतिरिक्त और कोई हालत

नहीं दीखती, जिसमें मनुष्य पूरा आलसी हो। वह आलसी होते हुए राजसी और सात्विकी भी नजर आता है; हाँ, आलस्य प्रधान है। मनुष्य अपने पुरुषार्थ से अवस्थाओं को कुछ-कुछ समय के लिए बदलता भी दीख पड़ता है। इससे सिद्ध होता है कि पूर्व कर्मानुसार गुण तो उदय होकर अपना असर जतायेंगे ही, परन्तु मनुष्य लगातार पुरुषार्थ से उनका मुकाबला करता हुआ इतना दिलेर बन जाता है कि फिर उनको दबा देता है और वे उसको गिरा नहीं पाते।

प्रारब्ध और पुरुषार्थ

भोग बलवान होता है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों की बुद्धि को फेर देता है, फिर भी पुरुषार्थ के साथ लड़ाई होती है। यदि पुरुषार्थ बली हो, तो उसीकी फतेह होती है; इसलिए अभिमान से बचना चाहिए और आलस्यरहित होकर आगे हर मिनट सावधान रहना चाहिए।

जब प्लेग फैलता है तब स्थान क्यों छोड़ते हैं? खाने-पीने का परहेज क्यों किया जाता है? जो चाहो सो खाओ, यदि प्रारब्ध में दुःख होगा, तो आयेगा, वरना नहीं आयेगा। फिर भी लापरवाही अच्छी नहीं, परहेज रखना जरूरी है। पुरुषार्थ से प्रारब्ध प्रबल होगा, तो अपना असर कुछ जरूर जतायेगा, वरना दब जायेगा।

जो कर्म किया जाता है, वह समय पाकर अपना भोग जरूर भुगवाता है, यह ईश्वरीय नियम है। उसको धैर्य के साथ सहना चाहिए और ईश्वर-चिन्तन रखना चाहिए। वे ही हर समय अपने भक्तों की रक्षा करनेवाले हैं।

भोग बलवान है, सबको भोगना पड़ता है। प्रारब्ध की प्रबलता सबको भोगनी ही पड़ती है। वह गृहस्थ ही नहीं जिसमें कुछ-न-कुछ उलझन न बनी रहे।

परन्तु पुरुषार्थ का फल भी देखा जाता है। बाकायदा पुरुषार्थ करने से कुछ-न-कुछ सफलता अवश्य होती है, और कठिन बात भी आसान होने लग जाती है। इसलिए पुरुषार्थ से घबराना पुरुषों का काम नहीं

है। परन्तु पुरुषार्थ बुद्धि और विचार के साथ होना चाहिए। विचार विना सत्संग के नहीं प्राप्त होता, ग्रन्थों में नहीं मिल सकता।

परम पुरुषार्थ क्या है ?

शरीर की रक्षा करना, निर्णय करना, शुभ कर्म करना, सत्संग करना—यह सब पुरुषार्थ है। मिथ्या-बुद्धि को हटाना पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ केवल परमार्थ विषय में है, और तरफ नहीं। विचार की तरफ, अभ्यास की तरफ, सत्य की तरफ जो पुरुषार्थ है, वही असल में पुरुषार्थ है। अन्तः-करण की शुद्धि के लिए ही पुरुषार्थ होता है। बाकी जितने दुनियावी काम हैं, सब प्रारब्धवश हैं। नौकरी करना, शादी करना, धन कमाना, यह प्रायः भोगवश होता रहता है। बुद्धि का काम दुनिया में ज्यादा है, इसीको ठीक करना परम पुरुषार्थ है। बुद्धि जितनी शुद्ध होगी, उतना ही वह विचार में अधिक लगेगी और विषयों में कम। जिनकी बुद्धि मन्द है, शास्त्र के अनुसार कर्म करना उनके लिए आवश्यक है। फिर धीरे-धीरे उनकी बुद्धि बढ़ जायगी। ज्ञान-इन्द्रियों से ज्ञान का ही काम करना चाहिए। कर्म इन्द्रियों से कर्म किया जाता है। इन्द्रियों के कर्म और ज्ञान दो ही काम हैं। विषय-सेवन करना इन्द्रियों का काम नहीं है। शास्त्रों ने किसी इन्द्रिय को विषय-इन्द्रिय नहीं कहा। यह सब मन की चालाकी है। पुरुषार्थ से सब-कुछ ठीक हो सकता है। सब साधन इसीके अन्दर आ जाते हैं, पर पुरुषार्थ परमार्थ के सम्बन्ध में ही होना चाहिए।

बलपूर्वक कोशिश करनी चाहिए कि परले किनारे पर पहुँचकर विवेक पर ठहरे, वरना चक्की के दो पाटों के बीच में पड़े रहने पर पिसते ही रहना पड़ेगा और चकनाचूर होते ही रहना पड़ेगा।

यह अवश्य हर वक्त ध्यान में रखना चाहिए कि जीव को कल्याण के लिए बहुत-सी बातें करनी पड़ती हैं, जो स्थूल तथा सूक्ष्म भेद से दो प्रकार की हैं, और सबके समझने में नहीं आतीं। ज्यों-ज्यों अनुभव बढ़ता जाता है, सत्संग होता रहता है, त्यों-त्यों समझ में आती हैं। उनका करना जरूरी है, चाहे इस जन्म में करो चाहे अगले जन्मों में। उनके किये बिना जीव का कल्याण कभी नहीं होगा, चाहे और तरह से हजारों बातें करता रहे। उलटा तंग ही होता रहेगा और धोखे में ही फँसा रहेगा।

बिना दोष-दृष्टि के पदार्थों से वैराग्य होना असम्भव है।

सच्चा वैराग्य

ठीक-ठीक विरक्ति का लोगों को पता ही नहीं, यदि किसीको कम-से-कम इतना पता हो जाय कि असल विरक्ति ऐसी है, और वह लक्ष्य को पकड़कर वहाँ पर पहुँचने के लिए अपनी शक्ति के अनुसार चल पड़े और बिना पीछे कदम रखे हुए आगे को ही चलता रहे, तो उस पर ईश्वर की बड़ी कृपा समझनी चाहिए। ग्रन्थों को पढ़ लेना तो कोई कठिन बात नहीं, परन्तु वे ग्रन्थ अपने बना लेना किसी शूरवीर का काम है। आम तौर पर लोग जीवन का उद्देश्य कुछ और ही समझ बैठते हैं, इसलिए धोखा खाते रहते हैं। असल उद्देश्य ईश्वर-अनुग्रह से ही प्राप्त होता है। प्रायः लोग नाम के लिए सब कुछ करते हैं। इस बला से मुक्त होना बड़ा कठिन है, बड़े धैर्य का काम है। जो अधीर है, विचार-शून्य है, वह इस मार्ग का अधिकारी नहीं। जो मार खाने से घबरायेगा नहीं, वही शीघ्र सफलता प्राप्त करेगा।

इस जीव में नाम की बड़ी प्रबल इच्छा रहती है। उसके लिए नाना प्रकार की चिन्ताओं में पड़ता है और सब प्रकार के दुःख सहता है, और अन्त में लाभ कुछ नहीं निकलता। नाम के लिए धन भी सहायक होता है, क्योंकि बहुत-से नामवाले काम धन के द्वारा होते हैं। जिसके पास धन है, उस धन को सब उससे छीनना चाहते हैं। खुशामद से दे, उधार दे, धर्मार्थ दे, वरना जबरदस्ती, धमकी वगैरह देकर या धोखा देकर लेना चाहते हैं। इस वजह से धनी को नाना प्रकार के कष्टों को अनुभव करना पड़ता है। नाम तथा ऐश्वर्य के लिए जिसने धर्म को पकड़ रखा है, उसे उसका स्वाद अवश्य लेना पड़ेगा। यदि नाम तथा मान से बेपरवाह हो जाओ, तो बहुत-सी आफतों से बच जाओ, परन्तु यह बात बहुत कठिन है। हाँ, जो कर डालता है, अर्थात् नाम तथा मान से बेपरवाह हो जाता है, उसके लिए कल्याण-पद निकट हो जाता है। धन से धर्म भी होता है; परन्तु चाहे उसे संसारी कामों में लगाओ, चाहे धार्मिक कामों में, झगड़ा हर हालत में है। उपाधि से खाली नहीं है। बीच में खानेवाले कूद पड़ते हैं। न दिया जाय, तो वे ही शत्रु बन जाते हैं।

मृत्यु को मत भूलिये

क्या तू जानता है कि तेरी आयु बहुत लम्बी है, जो वृद्धावस्था आने पर भी तेरे शरीर को हृष्ट-पुष्ट और नीरोग रखेगी? यदि इस बात का निश्चय नहीं है, तब ढील डालना तू कैसे सह सकता है? भगवान् की भक्ति वही कर सकता है, जिसे हर समय मृत्यु का भय लगा रहता है। जो मृत्यु से बेखबर है, वह संसारी धन्धों में फँसा रहता है और टाल-मटोल करता रहता है।

मृत्यु-शोक व्यर्थ

जीव का कल्याण वैराग्य से होता है। एक दूसरे के मरने के लिए तब रोये जब आप न मरना हो। जिसके घर में आग लगी हो, वह दूसरे के घर की आग बुझाने के लिए कब जा सकता है? पहले तो अपने ही

घर की आग बुझायेगा। जो अपने घर की चिन्ता छोड़कर दूसरे के घर की आग बुझाने जाता है, वह मूर्ख है। जब मकान जल जायेगा और रहने की जगह न मिलेगी, तब रोयेगा। जीव पैदा होता है, थोड़े दिन ठहरता है, फिर चल देता है। मुसाफिर की तरह जो इस सृष्टि के नियम पर ध्यान रखता है, वह किसीसे विशेष प्रेम नहीं करता। जो मनुष्य मोक्ष चाहता है और चित्त को संसार में फँसाये है, और साथियों के वियोग को नहीं सह सकता, वह मूर्ख है। उसे पहले डटकर संसार से प्रेम कर लेना चाहिए। जब काफी ठोकर खायेगा तब आप ही छोड़ेगा।

मृत्यु के लिए तैयार रहिये

यह गति एक दिन अपनी भी होनी है। उस दिन के लिए पहले से ही जो तैयार रहते हैं, वे ही उस वक्त धैर्य के साथ कूच करते हैं, वरना अनेक प्रकार की वासनाएँ मन को व्याकुल कर देती हैं। जो कुछ करना हो, मृत्यु से पहले ही कर लेना चाहिए।

संसार की गति

संसार की गति पर विचार करते रहिये। सबको गुरु बनाते रहना चाहिए और यह देखते रहना चाहिए कि संसार-चक्र कितना प्रबल है कि लोग भाग-भागकर फिर उसीमें फँसते हैं। जो अकेला है, वही फक्कड़ रह सकता है; जिसके ऊपर कई व्यक्तियों के जीवन का भार है, वह नाचता ही रहेगा और बोझा ही ढोता रहेगा।

संसार की गति को देखते रहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान सांसारिक तरक्की के पीछे लगे रहने से और विषयों में फँसे रहने से कैसी-कैसी आफतें आती हैं—इनका चिन्तन करते रहना चाहिए।

सन्तों, महात्माओं के जीवन का चिन्तन करना चाहिए। प्रभु कैसे अपने भक्तों को संसार से उनके चित्त को हटा देते है; संसार का असली नजारा उनके सामने रख देते हैं, जिससे उनको पता चल जाता है कि संसार दुःखों से भरा हुआ है—इन सब बातों का विचार करना

चाहिए। गीता और सुखमनी साहिब का पाठ और ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए।

संसार की यही गति है। संयोग और वियोग होता रहता है। जो मूर्ख है वह रोता है। जिसे कुछ समझ है, वह संसार से चित्त को हटाकर प्रभु के चरणों में लगाता है।

जिसका मुख प्रभु की तरफ होता है, जो भगवान् को अपना जीवन आधार समझता है, वह सम्बन्धियों और साथियों के वियोग में दुखी नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि उसकी रक्षा करनेवाले प्रभु हमेशा उसके दिल में विराजमान हैं। वे जिससे चाहते हैं, उसकी रक्षा कराते हैं।

विचार करके देखो, संसार बिल्कुल असार है। जितनी भी वस्तुएँ दीखती हैं, वे सब निरर्थक तथा दुःख का मूल हैं। धोखे के कारण ही मनुष्य बन्धन में पड़ा रहता है। विचार पर खड़े होने से वह तत्व को प्राप्त कर सकता है, और संसार-बन्धन से मुक्त हो सकता है। जो पुरुष अपने अनुभव से काम नहीं लेता वह मारा जाता है।

वैराग्य और त्याग

(१) जब तक पूर्ण वैराग्य न हो, गृहस्थी छोड़ने में पाप लगेगा, चाहे कोई हो। शास्त्र तीन ऋणों पर जो जोर देते हैं, उससे मैं वहीं तक सहमत हूँ जब तक वैराग्य नहीं होता। जब तीव्र वैराग्य हो गया, तब सब ऋण चुक गये।

(२) जो वृद्ध शास्त्रानुसार कार्य नहीं करते, वे वृद्ध हो जाने पर भी संसारी वासनाओं के कीड़े बने रहते हैं। जब तक वे स्वयं शास्त्र के अनुसार न चलेंगे, तब तक उनके कथन का असर सन्तान पर कैसे पड़ सकता है? शरीर तो एक दिन जायगा ही, परन्तु घर से बाहर रहते हुए ईश्वर-चिन्तन में जाये, तो श्रेष्ठ है। गृहस्थाश्रम के जो दुःख हैं उनका कारण काम, क्रोध आदि हैं। जब तक पुरुष इनका गुलाम है, तब तक वह दुःखों से बच नहीं सकता। छोड़ने की वस्तु तो मोह है। चाहे मरकर छोड़ो, चाहे जीते हुए छोड़ो। अगर ऐसा हो सके कि मन से सम्बन्धियों को

त्याग कर, उनके दुःख-सुख में दुःख-सुख न मनाओ, तो उनके साथ रहने में भी कोई हरज नहीं है।

यदि हठ से घर से चल भी दो तो मरने के पीछे फिर उन्हीं दुःखों में पड़ोगे। जब तक बीज है, वृक्ष होकर फलेगा। इसलिए घर में रहते हुए पहले दुःख के कारणों को जड़ से उखाड़ना चाहिए। इनसे लड़ने के लिए मन में बल चाहिए। वह तब तक नहीं प्राप्त होता, जब तक पुरुष पाप से नहीं बचता और शास्त्रानुसार अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, और विषयों की लालसा को विषयों के बीच में रहते हुए नहीं त्यागता। मिट्टी के घरों में दिया-बत्ती की इतनी परवाह न करो, अपने भीतर दीपक जलाओ।

त्याग का अधिकारी कौन ?

घर में रहना ही अच्छा है। बाहर मारे-मारे फिरने तथा भटकने से क्या लाभ है ? भिक्षा में बड़ी दीनता होती है। फिर किसी कुसंग में पड़ जाय तो आदमी मारा जाता है। आजकल भेषधारी साधु बहुत हैं, सच्चरित्र कम हैं। कोई बिरला ही अच्छा होता है। इसलिए विचारवान ही गृहत्याग से लाभ उठा सकता है। केवल कपड़ा रंग लेने से ही वैराग्य सिद्ध नहीं होता। मोह की चोट खाकर भी धैर्य रखना एकमात्र उपाय है।

जब तक मन से संसार न त्यागा जाय, तब तक छोड़ना नहीं चाहिए। छोड़ना तब चाहिए जब ऐसा अनुभव हो जाय कि पुनः उधर जाने को चित्त न होगा।

यदि ऐसा विचार दृढ़ हो, तो छोड़ने से पहले कुछ नेक कमाई का रुपया जमा कर लो, ताकि भजन में कुछ विघ्न न पड़े और कुछ दिन निश्चिन्त होकर भजन करके अवस्था परिपक्व कर सको।

जिसमें पूर्ण वैराग्य न हो और मोह शेष हो, उसे घर न छोड़ना चाहिए, नहीं तो बड़ी कठिनाई पड़ेगी। लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होगी।

कभी-कभी पुत्र की चाह करना, बड़ी भारी कमजोरी और अविवेक है। समझ में नहीं आता कि तुम क्या लाभ समझकर ऐसी वासना को दिल से नहीं उखाड़ते। विचारवान यदि नाम के लिए पुत्र की इच्छा करे, तो महा मूर्ख है। प्रायः पिता का नाम पुत्र की वजह से नहीं होता है, बल्कि उसके गुणों और कर्मों के कारण होता है। यदि तुम नाम चाहते हो, तो तुम भी वैसा ही करो। यदि नाम की इच्छा नहीं है, लोगों के यह वचन सुन करके कि 'तुम्हारा कोई लड़का नहीं है'—शरम नहीं आती या दुःख नहीं होता, तब यह इच्छा क्यों? यदि स्त्रियों के लिए होती है, तो ईश्वर के ऊपर छोड़ दो। यदि वे उनकी इच्छा पूरी करना चाहेंगे, तब तुम्हारी बुद्धि विषय-भोग की आप ही हो जायगी, और जो कुछ होना होगा सो होता रहेगा।

माया जाल—वासनाओं की परम्परा

ये जो माया के जाल हैं, वे स्थूल-से स्थूल और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म हैं। इतने सूक्ष्म हैं कि मकड़ी के जाले की सूक्ष्मता भी उनके सामने बहुत स्थूल है।

और यह जीव इतना कमजोर और अल्पज्ञ है कि उसके लिए प्रथम तो इन सूक्ष्म जालों को पहचानना ही बहुत कठिन है; फिर भी यदि शास्त्र, गुरु-महात्माओं की कृपा तथा सत्संग से इसको पता भी लग जाय, तब भी उससे बचकर निकल पाना और भी कठिन है; क्योंकि जब तक शरीर के साथ सम्बन्ध है, तब तक माया के साथ व्यवहार जारी है।

सोचने की बात है कि रात-दिन दरिया में रहना और मगरमच्छ से बचे रहना कितना कठिन है। यह तो तभी हो सकता है, जब मगरमच्छ को पैदा करनेवाला उसको मना कर दे।

इसलिए सिवाय प्रभु के और दूसरे किसीका भरोसा नहीं प्रतीत होता! उसकी शरण में अपने को डालकर, उसकी आज्ञा के अनुसार जीवन व्यतीत करते रहने में ही कल्याण दीखता है। अभी तो प्रत्यक्ष में

लाभ है, आगे को वेद-शास्त्र कहते हैं कि भला ही होगा। माया के सूक्ष्म जाल से सावधान रहना चाहिए। पता नहीं, शरीर कब छूट जाय, और यदि यह मायाजाल का सूक्ष्म तन्तु हृदय में रह गया, तो आगे को फिर शरीर धारण करना ही पड़ेगा, और जो दुःखमय जीवन अभी है, वही फिर मिलेगा। फिर चक्कर काटना पड़ेगा। बड़ी कठिनता से तो असलियत का पता लगता है। फिर केवल पता लग जाने से ही कुछ नहीं होगा, उसको जोर से पकड़ना पड़ेगा, और व्यवहार करते हुए उस पर दृढ़ता के साथ खड़ा रहना पड़ेगा। यदि डगमगाया, तो मारा गया।

हवा के झोंकों के मुकाबले में सच्चाई की चट्टान पर मजबूत खड़े रहना शूरवीर का काम है। कायर लोग घबराकर गिर पड़ते हैं। पीछे पश्चात्ताप करते रहते हैं और गिरने से जो गहरी चोट लग जाती है उसका इलाज ही करते-करते जन्म बीत जाता है। ऐसी ही दशा संसारी इच्छा करनेवाले की है। वह इच्छा करके फिर उसकी पूर्ति के सम्बन्ध में ऐसा फँस जाता है कि जीवन उसी मुसीबत में व्यतीत हो जाता है।

वह यह समझता रहता है कि यह छोटी-सी बात है, यह पूरी हो जाय, बस फिर कोई इच्छा नहीं करूँगा। परन्तु वह यह नहीं समझता कि इच्छा चाहे एक क्यों न हो, वह तो अज्ञानमूलक है, और जब तक वह संसारी वासना उसके हृदय में जड़ जमाये हुए है, तब तक अज्ञान को मजबूत ही कर रही है। इसलिए, जो विचारवान विवेकी पुरुष हैं, वे हर समय ऐसी मूर्खता से सावधान रहते हैं। शरीर का भोग बन्धन का कारण नहीं है, मन में उन वासनाओं का उठना ही बन्धन का कारण है जिनकी शरीर रक्षा के लिए कोई जरूरत नहीं है। जहाँ-जहाँ का अन्न-जल शरीर को भोगना है, वहाँ-वहाँ यह जरूर जायेगा, और उस सम्बन्ध में जो भोग होगा, वह अवश्य भोगेगा। परन्तु विचारवान उससे अपनी कुछ भलाई न देखता हुआ, शरीर का भोग समझकर होने देता है और जो सुख-दुःख हो गया, उससे भी बेपरवाह रहता है।

तुमको डरना नहीं चाहिए। पिछले कर्मों के मुताबिक विघ्न तो होते ही रहते हैं, परवाह नहीं करनी चाहिए। सम्बन्धियों का संयोग और वियोग प्रारब्ध के मुताबिक होता है। चित्त को कहीं फँसने न देने में बहादुरी है।

वैराग्य के बिना शान्ति कहाँ ?

परम शान्ति परम वैराग्य से होगी। दूसरा उपाय नहीं।

जब शरीर ठीक हो, इन्द्रियाँ बलवान हों, सब साधन सम्पन्न हों, और लोगों की प्रेरणा भी हो, उस वक्त यदि संसारी सैर से उपरति हो, तो वह सच्ची उपरति है। परन्तु जब शरीर में बल न रहा, रोग-ग्रस्त हो गया, निकम्मा होकर बैठ गया, उस वक्त की उपरति रोगी की उपरति के समान धोखे की उपरति है।

चक्कर लगाना सिद्ध करता है कि मन की रुचि संसार से हटी नहीं है।

जिस वक्त सच्चा वैराग्य होगा, तब वेदान्त की एक पंक्ति का स्मरण-मात्र काफी होगा; एक या दो पृष्ठ का पाठ तो बहुत ज्यादा मालूम होता है।

'भाग्य जो करे, शरीर जैसा रहे, मैं कहीं रहूँ', 'दुर्दैव जो करे वह भी करता रहे, वह उसका कार्य है, इसकी चिन्ता नहीं'—यह वचन बड़ी शूर-वीरता के और उस पुरुष के हैं जिसने शरीर को प्रारब्ध पर छोड़ दिया है और स्वयं उससे उपराम है; अर्थात् वह केवल द्रष्टा मात्र अपने आपको समझे हुए है। जब तक समता नहीं आती, तब तक शांति नहीं आती।

भिन्न-भिन्न मनों की भिन्न-भिन्न रुचियाँ होती हैं। जब तक किसी संसारी व्यापार की रुचि है, तब तक गड़बड़ ही समझना चाहिए।

शरीर तो जैसे-तैसे रहता ही है और कहीं-न-कहीं रहता ही है। पिछले जीवन पर दृष्टि दीजिये, तो पता लगेगा कि शरीर को अपने इच्छानुसार रखने की कोशिश करते हुए भी वह वैसा और उस स्थान पर नहीं रहा।

कभी-कभी गड़बड़ भी हो जाता रहा, और कहीं का कहीं भी रहता रहा। हाँ, कभी-कभी आपके इच्छानुसार भी कुछ अंश में रहा, उसको आपने अपना पूर्ण अधिकार मानकर धोखा खाया। अन्त में भी धोखा मिट जाय, तो बेहतर है।

यदि मनीराम अपनी बेहयाई को छोड़ दे, और कल्पित सृष्टि में रमण न करे, तो काम हो गया।

वैराग्य बढ़ाते जाइये

अगर किसी वस्तु को चित्त चाहता है और हम उसकी प्राप्ति ठीक नहीं समझते, तो हमको हठ से उसका संग त्याग करना उचित है। फिर कुछ अरसे बाद चित्त आप ही उसका चिन्तन छोड़ देता है। बिना हठ के कोई काम नहीं हो सकता। संसार में कैसे-कैसे दुःख तुम्हारे सामने हो रहे हैं, उन पर दृष्टि रखते हुए वैराग्य को खूब बढ़ाते जाओ। दूसरों के Certificate (प्रशंसापत्र) की परवाह न करो, अपने आपको Satisfy (संतुष्ट) करने की कोशिश करते जाओ, नहीं तो गिर जाने का डर है। चुपचाप अपना काम करते रहो। वैराग्य को पक्का करते रहो। अगर वैराग्य तेज और पक्का हो गया, तो बाद-अजाँ कोई संसारी बात नहीं रोक सकती। वैराग्य पक्का होने से बरसों का काम हफ्तों में होगा, और अगर वैराग्य न बढ़ा, तो लम्बे सफर में मजबूरी से चलना पड़ेगा।

विषय-भोगों का अन्त नहीं

एकदम मुँह मोड़ लो, तभी छुटकारा होगा। यह सत्य है कि दुनिया में काम कभी खतम होनेवाला नहीं है, इसलिए इनकी परवाह न करना ही अच्छा है। इसी तरह यह भी मद्दे-नजर रखना जरूरी है कि दुनिया के विषय-भोग भी कभी खतम नहीं होंगे, बल्कि भोगने से उनकी वासना दिन-दिन अधिक बढ़ती जाती है और यदि ऐसी वासनाओं के रहते हुए शरीर छूट गया, तो अगले जन्म में यह फिर इस तरह

चक्कर में डालेंगे; और जिन संसारी दुःखों का सामना अभी पड़ रहा है, वही फिर आयेंगे, और फिर नाच नचायेंगे। इसलिए मुमुक्षु को चाहिए कि इनकी तरफ से एकदम मुँह मोड़कर मोक्ष मार्ग पर चले, नहीं तो इस Tug of war (रस्साकशी) में जीवन नष्ट हो जाता है। विषयों में दोष-दृष्टि विचार और युक्ति से पैदा करनी चाहिए। बिना दोष-दृष्टि के पदार्थों से वैराग्य होना असम्भव है।

माता, स्त्री और बच्चों के ऋण

एक गृहस्थी की उदारता बहुत जगहों में कृतज्ञता का रूप धारण करती है। जैसे, माता ने तुम्हारे पालन-पोषण में बहुत कष्ट उठाया है; तुम्हें पढ़ाया, शादी करा दी, इत्यादि। लड़कपन में उसने तुम्हारे सब नाज-नखरे सहे, अपने को कष्ट दिया, परन्तु तुम्हें कोई कष्ट नहीं होने दिया। अब जो तुम उसकी सेवा करते हो, यह थोड़ा-सा ऋण चुका रहे हो। पूरे तौर से चुकाना तो कठिन है।

जब तुमने विवाह किया, तो स्त्री ने तुम्हारी काम-चेष्टा की पूर्ति की; जिससे तुमको शान्ति हुई। वह तुम्हारे घर-बार का हर तरह से इन्तजाम करती है। इसलिए उसकी रक्षा करना भी तुम्हारा धर्म हुआ।

जब तक बच्चे नहीं होते, तब तक लोग कहते हैं कि इनका विवाह हुए इतने दिन हो गये, अभी तक कोई बच्चा नहीं हुआ, इनमें कोई दोष तो नहीं है? जब बच्चे हो जाते हैं, तब मर्दानगी को Certificate (प्रमाणपत्र) तो मिल जाता है, परन्तु उसके बदले में बच्चों के पालन-पोषण का भार भी अपने ऊपर आ जाता है, जिसका उठाना अपना कर्तव्य होता है।

इन सबके लिए रुपये की जरूरत है, इसलिए अफसर की हुकूमत का बोझ भी झेलना ही पड़ता है।

ये सब बातें जताती हैं कि पूर्व जन्म में तुम्हारे मन में विषय-सुख की लालसा थी, इसलिए शरीर को चाहते थे, क्योंकि शरीर द्वारा ही इच्छित

संसारी सुख भोगा जा सकता है, इसलिए माता के गर्भ में आना पड़ा।

माता यह बतलाती है कि यदि तुमको फिर भी शरीर की इच्छा रही, तो मेरे गर्भ में आना पड़ेगा, और मैं पालन-पोषण करके तुमको अपना ऋणी करूँगी, जो मेरे जन्मभर तुमको चुकाते रहना पड़ेगा।

स्त्री यह बतलाती है कि यदि तुम्हारे में काम-चेष्टा रही, तो तुमको फिर से शरीर धारण करके मेरे साथ विवाह करना पड़ेगा और अपनी इच्छा पूरी करने के लिए मेरी जिन्दगीभर मेरे पालन-पोषण का भार अपने ऊपर लेना पड़ेगा।

बच्चे कहते हैं कि यदि तुम लोगों की परवाह करते हो और नाम की इच्छा रखते हो और लोगों के Certificate (प्रमाणपत्र) की परवाह करते हो, तो फिर से जन्म लेकर तुमको हमें पैदा करना पड़ेगा और हमारी रक्षा का भार अपने ऊपर लेना पड़ेगा। जब माता, स्त्री और बच्चे तुमको ऐसा उपदेश दे रहे हैं, तब वे तुम्हारे गुरु हैं; और गुरु की सेवा करना उत्तम शिष्य का धर्म है। यह तुम्हारी कृतज्ञता है जो तुम उनकी सेवा करते रहते हो।

वैराग्य और मोह

सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग करने से वैराग्य प्राप्त होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को त्याग देने से ही वैराग्य सिद्ध होता है। सत्य पर डटे रहना चाहिए और प्रत्येक काम में यह विचारना चाहिए कि सब लोग स्वार्थ में रत होकर कर्म करते हैं। हमारे सम्बन्धी भी प्रायः अपने स्वार्थवश हमारे परमार्थ में रोड़ा अटकाते हैं, तो वे हमारे हितैषी कैसे माने जायँ? सब काम समता और पक्षपातरहित होकर करना चाहिए। अपने-पराये का भेद ही मोह अथवा अज्ञान की जड़ है। मनुष्य अकेला आया है, अकेला ही जायगा। मोह को छोड़, मौत से निर्भय होकर विचरना चाहिए।

जिनको हम 'अपना' कहते हैं, देखना चाहिए कि वास्तव में वे कितने

अंश में अपने हैं। विचार से तो यही पता चलता है कि वे कभी-कभी हमारी इच्छा की पूर्ति में सहायक हो जाते हैं। इसीसे मन कल्पना कर लेता है कि वे अपने हैं। यदि मनुष्य निष्पक्ष भाव से देखे तो पता चलता है कि मोह की गुंजाइश ही नहीं है। पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों से बहुत प्रेम नहीं करना चाहिए। मुसाफिर दृष्टि रखनी चाहिए। अपने आप ही आते हैं, अपने आप ही जाते हैं, इसमें हमारा क्या ? ऐसा विचार रखने से कोई दुःख नहीं होता। पता नहीं कब कौन चल दे !

मोह की लड़ी

मोह की लड़ी बड़ी कड़ी है, परन्तु मुसाफिर दृष्टि से देखने पर सब सम्बन्ध कल्पित मालूम होते हैं। जैसे, ट्रेन के डब्बे में बहुत-से आदमी रहते हैं, अपना-अपना टिकट समाप्त होने पर वे उतरते जाते हैं। जब तक रहते हैं, एक-दूसरे की सहायता करते हैं; मित्रता हो जाती है, पर किसीके उतरकर चले जाने से कोई मोह नहीं करता। ऐसे ही विचारों को धारण करके गृहस्थ में विचरना चाहिए। जितने लम्बे सफर का जो टिकट लाया है, उतने दिन ही वह रहेगा। संयोग-वियोग होना है। इसीका नाम सृष्टि है। ऐसा विचार करते रहना चाहिए कि अपने समय से सब लोग आते हैं, अपने समय से जाते हैं। जब दूसरों को जाना होगा, चले जायँगे। जब हमें जाना होगा, हम चल देंगे। मोह करना वृथा है, अपना कर्तव्य करते जाना चाहिए। इतना ही सम्बन्ध है और कोई सम्बन्ध नहीं है।

मोह की चोट

जब एक यात्री दूर तीर्थयात्रा पर गया हो, तो थोड़े दिन बाद ही लोगों को घर लौटते देख उसका मन भी ऊब जाता है। तब घर जाने का वेग स्वाभाविक है। उधर स्त्री, माता, पिता आदि सम्बन्धी भी याद करते हैं। उनकी भावनाओं और संस्कारों का भी असर पड़ता ही है। इससे मोह बढ़ जाता है। इस वेग को सहना भी कठिन है। वह शूर-

वीर है, जो इस प्रकार के वेगों को सहता है। मोह की चोट यही है। सावधान होकर विचरना चाहिए।

मोह की जड़

देखो, मनुष्य को अपने प्राणों की रक्षा के लिए कितना मोह होता है। एक बार मैं अकेला था, तो एक बहुत अँधेरी रात को जब मैं कुटी से बाहर निकला तो मन बहुत उदास था! मैंने देखा कि गंगा के दूसरे पार से, हलवाई की दूकान से दीपक की रोशनी आ रही है, उससे मन को साहस हुआ। सोचकर देखो, विपत्ति पड़ने पर गंगा पार इतनी दूर से किसी सहायता की आशा नहीं, फिर भी मन कुछ-न-कुछ सहारा बना ही लेता है कि वहाँ आदमी तो हैं। ईश्वर को छोड़कर मनुष्य का सहारा ही बन्धन का कारण है। यह मोह की जड़ है।

मोह का मूल—आशा

आशा और निराशा पारस्परिक होती है, अर्थात् जब कि क को ख से कुछ सुख की आशा होती है तब क, ख के साथ प्रेम करता है और उसके संग रहकर प्रेम का बर्ताव करता है। तब ख भी क के साथ वैसा ही करता है, परन्तु जब ख, क से किसी प्रकार का सुख पाने से निराश हो जाता है, तब ख के साथ उसका प्रेम नहीं रहता और न उसके संग रहकर प्रेम का बर्ताव ही कर सकता है। बल्कि उसके साथ रहने में वह उल्टी हानि ही हानि देखता है, और उससे अलग रहने में ही कल्याण पाता है। तब ख भी क से आप ही निराश हो जाता है, और जिस सुख की आशा से क के साथ प्रेम करता था, उससे निराश होकर क का संग त्यागने को उद्यत होता है। यदि क को ख से किंचित् मात्र सुख की आशा हो और वह ख को, बिना स्वयं पूर्ण तौर पर निराश हुए बिल्कुल निराश करना चाहता है, तो उसको पूरी सफलता होना असंभव है।

मोह का चढ़ाव-उतार

मोह आदि के वेग उदय होंगे, दब जायँगे, फिर उदय होंगे,

फिर दबेंगे; पर आपका काम है, विचार पर खड़े रहने का। जब मोह का हमला अधिक हो—

(१) तब मन से उसके दुःखरूपी परिणाम पर खूब गौर करें,

(२) वैराग्य के शब्दों का पाठ और विचार करें,

(३) बड़े-बड़े लोग जिन्होंने संसार को तुच्छ समझा और जो उसकी तरफ से बेपरवाह हो गये हैं, उन पर दृष्टि दें।

ऐसा लगातार अभ्यास जारी रखने से उन वेगों का जोर आप ही शिथिल हो जायगा। यह काम जल्दी का नहीं, बड़े धैर्य का है। राजाओं को जीतना आसान है, परन्तु इन वेगों को जीतना बहुत कठिन है।

(४) बार-बार परमात्मा से मदद के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। नित्य-प्रति उसकी शरण में जाना चाहिए। मदद अवश्य मिलेगी। 'Knock at the door and it shall be opened unto thee.' (दरवाजा खटखटाते जाओ, कभी-न-कभी जरूर खोला जायगा।) सब विघ्नों को दूर करने के लिए ईश्वर की ड्योढ़ी पर बैठना चाहिए।

द्वार धनी के परि रहे, धका धनी का खाय।
कबहूँ धनी निवाजई, जो दर छाँड़ि न जाय।

देह-अभिमान मिटाइये

पहले शरीर से विरक्त होना है। जो शरीर माता-पिता से मिला है, जिसके लिए ब्राह्मणपने का अभिमान है, वह कैसा है ? जितने छिद्र हैं, सबसे गन्दगी निकलती है। भीतर चर्बी, मांस-लहू और हड्डियाँ हैं। जीव तो कर्मानुसार सब योनियों में भ्रमण करता है। शरीर सब गन्दे हैं। ब्राह्मण का शरीर भी वैसे ही गन्दगी से भरा हुआ है, जैसे औरों का। इसलिए पहले इस मूर्खता को छोड़े। गन्दे शरीर का अभिमान न करे। पीछे बिरादरी का झगड़ा तथा घर छोड़ दे। फिर आगे जाकर नयी बिरादरी में न फँसे। बहिन, भाई, माता, पिता न बनाये। वरना, फँसा का फँसा ही रहेगा।



वैराग्यशतक में स्त्रियों के शरीर की तथा उनके स्वभाव की जो निन्दा लिखी गयी है, वह संसारी स्त्रियों के विषय में है, जो अपने-आपको सजाकर तेल फुलेल लगाकर पुरुषों को मोहित करती हैं। देवियों के विषय में नहीं है। निन्दा का तात्पर्य यह है कि पुरुष स्त्रियों में न फँसकर ब्रह्मचर्य रखें और अपना जीवन सफल करें। यही उपदेश स्त्रियों के लिए भी है। पुरुषों का शरीर घृणित है, उसमें न फँसकर वे ब्रह्मचारिणी रहें और जीवन सफल करें। उपदेश का असर उन्हीं स्त्री-पुरुषों पर होता है जिनका हृदय पवित्र है।

विवाह भयावह है

यदि कोई पुरुष गृहस्थी के बन्धनों में पड़कर निकलने का सामर्थ्य नहीं रखता, तो वह अलग रहकर भी बच नहीं सकता, और यदि वह अलग रहकर बचने का सामर्थ्य रखता है, तब उसमें पड़कर भी निकल सकता है—यह कथन हर हालत में ठीक नहीं मालूम होता।

मान लीजिये कि एक बड़ा भारी नद है, जिसमें बड़े-बड़े मगरमच्छ रहते हैं, जो आदमी को साबित निगल जा सकते हैं। उसके पार जाने के दो तरीके हैं—एक तो तैरकर निकल जाना, दूसरा नाव में बैठकर हथियारबन्द मल्लाहों के संग पार होना।

अब हौसलेवाला आदमी गरमी के दिनों में तैरकर पार जाना चाहता है ताकि जल के शीतल स्पर्श और तैरने का लुत्फ हासिल करे। वह कमर कसकर दरिया में कूद पड़ता है और मौज से तैरता हुआ जा रहा है कि मगरमच्छ उसकी तरफ दौड़ने लगते हैं। वह जोर से आवाज देता हुआ

और पानी में छड़ी पीटता हुआ उनको हटाता है। परन्तु उस घाट में जानवर अधिक और लागू होने के कारण उसे चैन नहीं मिलती। आखिरकार वह थक जाता है और पुरुषार्थ करने से भी रह जाता है। तब लागू जानवर उसे निगल जाते हैं। अब यदि वह नाव में जाता, तो हथियारबन्द मल्लाह लोग बन्दूक के जरिये से जानवरों को दूर ही रखते और वह पुरुष पार हो जाता। ऐसे ही आसानी उस पुरुष को होती है, जो बन्धनों से अलग रहकर सत्संग के सहारे सुरक्षित रहकर पार होना चाहता है।

कहते भी हैं कि विषयों को भोगने से उनकी इच्छा अधिक ही होती है, जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि तेज ही होती है। हाँ, जहाँ विषयों को विचारयुक्त, सत्संग के सहारे रहते हुए भोगा जाता है, और फिर छोड़ने का पुरुषार्थ किया जाता है, वहाँ तो सफलता होती है अर्थात् वासना छूटती है; परन्तु यह बात भी बहुत कठिन है।

इसके अतिरिक्त स्त्री अकेली कभी नहीं आती। जब बालबच्चे हो जाते हैं, तब पूरा झगड़ा खड़ा होता है, और उनमें रहकर दुःख होने पर यदि उनको निराधार छोड़ दिया जाय, तो ठीक नहीं मालूम होता। धर्म-शास्त्र कहता है कि बेटे का बेटा होने पर विरक्त पुरुष घर छोड़ सकता है। अब आजकल अव्वल तो उम्र ही थोड़ी है, दूसरे शादी होने पर मालूम नहीं कि कितने साल पीछे पुत्र हो। यदि पुत्री होती रही, तब भी घाटा ही रहा और पुत्र हो भी गया, तो उसके बाद कम-से-कम २५ वर्ष ठहरना होगा। अब यदि इस बीच में चल बसे, तो जय हरि! और यदि बच गये, तो कुछ तो बुढ़ापे की वजह से, और कुछ गृहस्थी की चिन्ताओं से शरीर ही इतना शिथिल हो जाता है कि मोक्ष के लिए उचित पुरुषार्थ होना कठिन हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि भँवर में पड़कर उससे साफ निकल आना बहादुरी की बात है, परन्तु dangerous (खतरनाक) बहुत है।

दूसरे कामशक्ति का जोर बहुत समय तक शुरू होकर कुछ समय तक ही रहता है, फिर अवस्था पाकर आप ही शिथिल हो जाता है। इसलिए

थोड़े काल के सुख के लिए महा दुःखदायी जाल में बहुत सोच-समझकर पड़ना चाहिए। न मालूम, जाल में पड़कर फिर निकलना हो, न हो।

जब तक जाल से अलग हैं, तब तक इच्छाचारी विचर सकते हैं, फिर यह बात नहीं रहेगी। पूर्व जन्मों के संस्कार तो कर्मों के अनुसार मौका पाकर उदय होंगे ही। परन्तु धीर पुरुष का काम है कि विचार के सहारे उनका मुकाबला करता रहे और उनका गुलाम कभी न बने। यदि संयोग से कभी दब जाय, तो धैर्य धरकर फिर उठे और फिर लड़े। ऐसा करते रहने से स्वयं इतनी शक्ति बढ़ जाती है कि पुरुष उनको दबा लेता है और स्वराज्य प्राप्त कर लेता है। यही Battle of life (जीवन की लड़ाई) है। इसलिए कहा है :

"Yield not to temptations,
For yielding is sin.
Each victory will help you
Some other to win."

(प्रलोभन में न फँसो, फँसावट पाप है। विजय पा लेने से दूसरे प्रलोभनों को जीतने में सहायता मिलती है।)

सांसारिक सुख या दुःख कर्म का ही फल कहा जाता है। इसलिए कर्म बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। स्त्री का ग्रहण करना एक बड़ा भारी कर्म है। इस कर्म के करने पर कर्ता के ऊपर वेद जो-जो जवाबदेही डालता है, वह अवश्य पूरी करनी चाहिए। यदि अभिमान से कोई शख्स पूरी न करे, तो वह बच नहीं सकता। ईश्वरीय नियम बड़े जबरदस्त हैं, वे मनुष्य को फल भोगने के लिए मजबूर कर देते हैं।

Indifference (तटस्थता) के साथ यदि आप संसारी व्यवहारों को करते रहें, तो बहुत उत्तम है। यदि आप जन्मभर तक गृहस्थ-आश्रम में रहते हुए यथोचित Indifference (तटस्थता) के साथ व्यवहार करते रहें, तो हम आपको शूरवीर कहेंगे। घर को छोड़ देना बुजदिलों का काम है; परन्तु राजर्षि जनकजी की तरह शूरवीर कोई विरला ही होता है।

जिनमें इतनी हिम्मत नहीं है, वह मजबूर घर को छोड़कर ही, दुनियावी झगड़ों से अलग होकर ही अपने कर्तव्य को पूरा करते हैं।

विवाह बन्धन है

विवाह करना ऐसा नहीं है कि विवाह करनेवाले को अगले जन्म में नरक भोगना पड़े, परन्तु ऐसा अवश्य है कि जीते-जी नरक भोगना पड़ता है। लोग काम से रात-दिन व्यथित रहते हैं, और इस व्यथा को दूर करने का कोई उपाय उन्हें नहीं मिलता। ब्याह द्वारा इस व्यथा से थोड़ी देर के लिए Relief (छुटकारा) मिल जाता है, परन्तु उसका परिणाम जन्म-क़ैद भुगतना ही पड़ता है। एक व्यथा को शान्ति दी, दूसरी व्यथा जन्मभर की खरीद ली। उसके धन्य भाग्य हैं, जो समय से पहले चेत गया है और ब्रह्मचर्य्य-रूपी महान् तप पर आरूढ़ है।

यदि सुखी रहना चाहते हो, तो अपनी जरूरतों को कम करो और यदि शादी पर चित्त न हो, तो कदापि न करो। इसमें बड़ा भारी बन्धन है और बन्धन से बड़ा दुःख होता है। अपने मन को कड़ा रखो। मन से बड़ी लड़ाई होगी। यदि डटे रहोगे, तो सुख पाओगे; मन के आधीन हो जाओगे तो बड़ा दुःख होगा। स्त्री से बड़ा बन्धन हो जाता है और इससे परमार्थ के कामों से रुचि हट जाती है। इसका कारण यह है कि स्त्री-सेवा में ही समय व्यतीत हो जाता है। स्त्री को खुश करने की फिकर पड़ी रहती है, और इससे हरएक के आधीन होना पड़ता है।

फिर सन्तान से नये बन्धन खड़े हो जाते हैं। स्त्री जो नाच नचाये, नाचना पड़ता है। इसलिए पुरुष को अपना नफा-नुकसान सोच लेना चाहिए। बिना सोचे-समझे जहर का लड्डू नहीं खाना चाहिए।

स्त्री में सुख तो है नहीं, पर यदि हो भी तो भी दुःख अधिक है। कोई व्यापारी घाटे का सौदा नहीं करता। अनुभव भी महँगा पड़ेगा। मनुष्य का चित्त यदि इस अंश में हट जाय तथा स्त्री बन्धनरूप प्रतीत होने लगे, तो भी बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते। धर्मशास्त्र फिर अपनी जंजीर में पकड़कर कर्तव्य-कर्म में लगाता है।

धार्मिक पुरुषों की शादी संतान के लिए होती है, न कि विषय-भोग के लिए। इसलिए, यदि सन्तान हो चुकी है, तो शास्त्र की मंशा पूरी हो गयी; और अगर आगे मनुष्य को सन्तान की इच्छा नहीं है, तो वह ब्रह्मचर्य्य-व्रत धारण कर सकता है, और इसीमें उसका कल्याण है। मरने के पीछे मनुष्य के साथ स्त्री नहीं जायेगी, धर्म जरूर जायेगा।

हरएक अपना मतलब सोचता है। स्त्री भी कामवश अपनी गरज पति से जाहिर करती है। यदि पुरुष ब्रह्मचर्य्य धारण करना चाहे, तो संयम के पथ पर चलनेवाले के लिए कोई बन्धन नहीं है।

याद रखिये, जब मनुष्य किसी बात को करने का पक्का इरादा कर लेगा, तब उसे सफलता अवश्य मिलेगी। रास्ते में विघ्न भी होते हैं, उनसे घबराना नहीं चाहिए। विघ्नों से मनुष्य का इम्तिहान हुआ करता है। यदि उनमें पास होकर निकल गया, तो पीछे आनन्द ही आनन्द है। स्त्री आदि का जो रोना-पीटना है, वह सब व्रती के रास्ते में विघ्न है। मगर इससे मनुष्य के इरादे की आजमाइश हो जायेगी कि कितना पक्का है। बेड़ा उन्हींका पार होता है जो इनसे अर्थात् विघ्नों से घबराता नहीं। विवाह तो धोखा मिटाने के लिए किया जाता है।

ब्रह्मचर्य्य से लाभ

ब्रह्मचर्य्य रखने से कभी किसीको बीमारी नहीं हो सकती, बल्कि उसको न रखने से शरीर को हानि होती है। इतना जरूर है कि जो लोग इस व्रत पर चलना चाहते हैं, उनको अपने आहार-व्यवहार का बहुत ख्याल रखना चाहिए।

ब्रह्मचारी वह है जो मन-वचन-कर्म से स्त्री में रमण नहीं करता, और आठ प्रकार के मैथुन से बचता है। जो मन से स्त्री में रमण करता है और ब्रह्मचारी बना बैठा है, उसके शरीर को हानि होनी सम्भव है।

जो ब्रह्मचर्य्य के नियम पालन नहीं करते, उनको काम-ज्वर भी हो

जाता है। परन्तु यह काम-ज्वर सबको नहीं होता। जो वैद्य ऐसा समझता है, वह मूर्ख है। उसे इस विषय का अधूरा ज्ञान है। काम-ज्वर शायद उतर भी जाय, परन्तु बीसों और ज्वर अवश्य चढ़ेंगे, जिनसे छुटकारा जन्मभर नहीं मिलेगा और जितनी स्वतन्त्रता है वह सब छिन जायेगी। वैद्य लोग स्वप्नदोषी को बहुत-सी भस्में देते हैं, जिससे शरीर में गर्मी बहुत बढ़ जाती है और काम-ज्वर तथा तरह-तरह की उपाधियाँ खड़ी हो जाती हैं। ब्रह्मचारी को गरम औषध सेवन से तथा ऐसे दूसरे कुपथ्य से सावधान रहना चाहिए।

ब्रह्मचारी के लिए कुछ नियम

(१) शाम को दूध पीकर रह लो या हलका खाना खाओ।

(२) दूध पीकर कम-से-कम ४५ मिनट पीछे सोओ और पूरा खाना खाया हो, तो ३ घंटे पीछे।

(३) बायाँ स्वर ऊपर करके सोओ और आखिर तक इसी तरह सोओ।

(४) जाग जाने पर उठ बैठो और पेशाब करके, कुल्ला करके बैठ जाओ। फिर न सोओ।

(५) केवल एक चादर में सोओ और जब सर्दी से नींद खुल जाय, तो चादर ओढ़कर बैठ जाओ। नींद आये तब बैठे-बैठे सो लो, फिर लेटकर बिलकुल न सोओ।

(६) दिन में मत सोओ।

(७) भोजन बिना नमक-मसाले का खाओ। मीठा न खाओ।

(८) यदि गिरने का भय हो, तो दो-तीन दिन निराहार रहो।

(९) सफाई जारी रखो।

(१०) यदि निराहार रहे और चेष्टा भी दब गयी, तो पीछे कमजोरी दूर करने के ख्याल से यदि बहुत पुष्टिकारक पदार्थों का सेवन करके पुष्टि की, तब फिर वही शिकायत शुरू हो जानी सम्भव है। पुष्टिकारक भोजन इसमें सहायक है। गाजर वगैरह बलकारक अवश्य हैं, परन्तु कामचेष्टा को बढ़ानेवाले हैं। हाँ, जिसके अन्दर यह चेष्टा न हो, उसको

कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। इसलिए भोजन का ख्याल अवश्य रखना। शरीर थोड़ा कमजोर रहे तो कोई हर्ज नहीं।

(११) उल्टी का अभ्यास ऐसा होना चाहिए कि चाहे जल ठण्डा हो, चाहे गर्म हो, चाहे कुछ भी न हो, परन्तु उल्टी कर सको। उल्टी का तात्कालिक प्रभाव होता है।

(१२) यदि मुमकिन हो, तो गोरक्षासन में बैठने का अभ्यास करो।

(१३) मुग्दर वगैरह की कुछ कसरत भी करो और यदि हानि न हो तो जारी रखो। सुबह-शाम घूमने का भी नियम रखो।

(१४) कोई धर्म-पुस्तक अवश्य पढ़ो और उसका मनन करते हुए सो जाओ।

(१५) एकान्त सेवन अच्छा है, यदि उसमें ख्यालात शुद्ध रहें।

(१६) स्त्री यदि सामने आ जाये, तो उसके चेहरे की तरफ मत देखो, बल्कि मातृ-भाव से उसके चरणों की तरफ देखते हुए मन से माथा टेक दो। छोटी लड़की को देवी समझते हुए ऐसा ही करो।

(१७) प्रह्लाद की कथा हर वक्त सामने रखनी चाहिए। ईश्वर के भरोसे पर कोशिश करते जाओ। जो सच्चे दिल से उनकी शरण में जाता है, उसे वे आप ही सँभालते हैं।

(१८) यदि थोड़े दिन शिकायत नहीं है, तब ढीला पड़ जाना मूर्खता है। हमेशा सावधान रहना चाहिए। ऐसा नियम दीर्घ काल तक जारी रहना चाहिए।

गृहस्थ में ब्रह्मचर्य्य-साधन

(१) भोजन बिना नमक-मसाले का होना चाहिए। यदि कभी नमक या किसी गर्म मसाला—हल्दी वगैरह की आवश्यकता हो, तो सब मिलाकर एक या दो ग्रास में खा लेना चाहिए। यदि अब तक नमक मसाला न छोड़ा हो, तो फौरन त्याग कर देना चाहिए। साग-भाजी को केवल घी में भून सकते हो। स्वाद को जीतना जरूरी है।

(२) ब्रह्मचर्य्य भंग करने पर जुर्माने के अतिरिक्त तीन दिन उपवास रखना चाहिए; शाम को केवल आध सेर दूध पीना चाहिए।

(३) किसी भी वस्तु को आँख, नाक, जीभ वगैरह से परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिए। परन्तु तुम तो स्त्री के चरणों के दास हो। यदि तुममें स्त्री की गुलामी छोड़ने की हिम्मत नहीं है, तो उसके पैरों पड़ो और अपने कल्याण के लिए हाथ जोड़कर उससे प्रार्थना करो कि वह तुम्हें रास्ता दिखलाये। और यदि पुरुष बनने की हिम्मत है, तो लँगोट कसकर मैदान में आ जाओ और ऊपर बताये नियमों पर चलने के लिए कटिबद्ध हो जाओ।

(४) इसमें सन्देह नहीं कि काम का जीतना बड़ा कठिन है। अनेक वर्षों के तप के पश्चात् भी बहुत से ऋषि-मुनि गिर जाया करते थे। परन्तु, यदि मनुष्य ठीक रास्ते से सचाई को ग्रहण करने की कोशिश करता रहे और यथार्थ बोध पर डट जाय, तो इस पर विजय पाना इतना कठिन नहीं।

जिह्वा-रस कैसे जीतें ?

(१) स्वाद का गुलाम न रहे। भोजन बहुत स्वादिष्ट बनाकर न खाये। दस-पाँच दिन बिना नमक-मसालावाली दाल तथा साग भी खाया करे। सोंठ की फंकी ऊपर से ले ले। दाल में घी न डाले; जितना खाना हो पहले पाँच-सात काली मिर्च खाकर पी ले। फिर खुश्क फुलका बिना नमक मसालावाली दाल के साथ खाया करे। दूध में मीठा न डाले। जितना मीठा खाना हो पहले खा ले, ऊपर से दूध पी ले। ऐसा दस दिन करके छोड़ दे। १५ दिन पीछे फिर १० दिन वैसा ही करे, फिर छोड़ दे। फिर १५ दिन पीछे वैसा ही करता रहे। जब नमक खाने को चित्त करे, तब जितना खाना हो उतना पीसकर मुँह में रख ले और पानी के साथ निगल जाये। पीछे भोजन कर ले।

(२) जिह्वा के स्वाद में न फँसना तप है, क्योंकि इससे मन तपता

है। तभी तो बिना नमक-मसाले की दाल और साग तुमको नहीं भाता। तुम इस 'भाते' में कब तक फँसे रहोगे ? तुमको हठ से दाल-साग बिना नमक-मसाले के खाकर एक हफ्ते देखना चाहिए। फिर वैसा ही भाने लगेगा।

(३) भोजन तभी करना, जब तेज भूख लगे। जठराग्नि से जिस समय लपट निकलती मालूम पड़े, उस समय भोजन करना उचित है, और वह भी युक्ति से, मानो औषध ही ले रहे हैं।

काम से स्वतन्त्रता

काम के वश मनुष्य घाटे में रहता है। गृहस्थ लोग विषय में रत हो अनेक कष्ट इकट्ठे कर लेते हैं। संताननिमित्त ही विवाह की आज्ञा है। जो इस बखेड़े में न पड़े तो अच्छा है। परन्तु गृहस्थी में भी यदि स्त्री-पुरुष संयम से रहने लगें, तो बहुत-सा दुःख कम हो जाय; अनेक पापों से बच जायँ और भजन-उपासना में लगकर शान्ति और आनन्द का अनुभव कर सकें।

स्त्री से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए पाक विद्या का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान तथा अभ्यास होना चाहिए। नहीं तो भोजन के निमित्त भी स्त्री का दास बनना पड़ता है। इससे उसके मोहपाश से निकलना और भी मुश्किल हो जाता है। जिज्ञासु गृहस्थ को उचित है कि स्त्री पर बहुत निर्भर न रहे। प्रायः अपने सब काम खुद करने चाहिए। परतन्त्रता में दुःख ही होता है। मनुष्य यही समझ बैठता है कि स्त्री के बिना उसका निर्वाह ही असम्भव है। ऐसी धारणा को रखते हुए काम तथा मोह से छुटकारा पाना और भी कठिन हो जाता है।

स्वप्न-दोष

स्वप्न-दोष यदि काम के संस्कार के वश होकर होता है, तो सख्त दूषण है। यदि ऐसा नहीं है, तो कारण का पता लगाना चाहिए कि क्या किसी शारीरिक दोष से है ? यदि वीर्य पतला होने से हो, तो पुष्टि-कारक पदार्थों का सेवन होना चाहिए। कभी भोजन इतना हो जाता है कि उससे बना हुआ वीर्य शरीर में जज्ब नहीं हो सकता। कभी

पेशाब लगी रहती है, और उठने में आलस्य होने से पड़े रहते हैं। कभी चित लेटे हुए अधोवायु रुककर ऊपर को जोर मारती है। कभी प्राणों की गति ऊपर को होती है, और उसमें किसी कारण से रुकावट पड़ जाती है, जैसे एक पासा नीचे किये हुए लेटना। दाहिना पासा ऊपर करके एक या दो बजे के बाद रात को सोते रहना, इत्यादि अनेक कारण हैं, जिनका ख्याल रखना चाहिए।

यदि संस्कारजन्य स्वप्न-दोष न हो और कभी-कभी आहार की गड़-बड़ी से हो भी जाय, तो ऐसा हर्ज भी नहीं। बाल-ब्रह्मचारियों को भी बिगाड़ से ऐसा कष्ट हो जाना सम्भव है। जो गृहस्थ लोग नियम तोड़ चुके हैं, उनके वीर्य की अधोगति भी सब प्रकार के नियम पालन करने से, मन को शुद्ध करने से रुक सकती है। आहार-व्यवहार को शुद्ध करते जाना चाहिए। पूर्ण ब्रह्मचारी वही है जो मन-वचन-कर्म से स्त्री के साथ रमण नहीं करता, और न उसके स्वप्न में कभी काम के संस्कार उदय होते हैं।

संयम की विधि

पाशविक भावों को जबरन और अन्धाधुन्ध मूर्खता से रोकने की जिस कदर कोशिश की जायेगी, उसी कदर ये ज्यादा जोर से तंग करेंगे। इसलिए जहाँ तक हो सके अकल से काम लिया जाय। उनको शुरू से ही, यानी ख्याल के पैदा होते ही रोक लिया जाय।

यह कभी न ख्याल करना चाहिए कि एक दफा तो भोग का आनन्द ले लें, फिर आइंदा के लिए उसे बिलकुल छोड़ देंगे। ऐसा करने से एक दफा नहीं बल्कि कई दफा इस गलती में फँसना पड़ेगा, और फिर भी रुकना मुश्किल हो जायेगा; और रोकनेवाली संकल्प-शक्ति घटती जायेगी।

सबसे उत्तम उपाय यह है कि पहली दफा ही ख्वाहिश उठने पर कड़ाई से उसे रोक लिया जाय और दबा दिया जाय। और इस खतर-नाक सर्वनाशी परिणाम को दिल में सोच-विचार करके अपनी पूरी संकल्प-शक्ति के द्वारा इस पर जोर-शोर से हमला करके इसे जीत लिया

जाय। इसका नतीजा यह होगा कि भविष्य के लिए हौसला और संकल्प-शक्ति में और भी मजबूती बढ़ेगी।

विषय-वासना को भड़कानेवाले विचारों और वस्तुओं से बिलकुल अलग रहकर उनसे परहेज रखा जाय।

पहले पहल दिल में से ही इस ख्याल की जड़ काट दी जानी चाहिए और इस जड़ में पानी देनेवाले पदार्थों को बिलकुल अलग रखा जाना चाहिए।

बहुत सावधानी और नियम के साथ मानसिक श्रम करने से विचारों का रुख पाशविक वृत्तियों से हटकर उच्च विचारों की ओर बढ़ता है, जिससे फिर गंदी और कमीनी हालतों में फँसने का मौका कम मिलता है।

सीधा-सादा भोजन इसके लिए बहुत लाभदायक है। जैसे, तरकारी, थोड़ा-सा दूध, घी, मक्खन और वह भी बहुत कम। जहाँ तक हो इतना खायँ जिससे आपका पेट हमेशा हलका रहे। बहुत ठूँसकर कभी न खायँ। नाना प्रकार के व्यंजनों से पूरा परहेज रखें। चौबीस घण्टे में केवल एक बार खाना चाहिए और वह भी बहुत ठूँसकर नहीं।

काम-जय का उपाय

अनुभव करते समय यह देखना है कि जिस वस्तु को भोगते हो वह कैसी गन्दी है। मलमूत्र आदि गंदगी से भरे शरीर को सूँघो। उसके प्रति जब घृणा के संस्कार दृढ़ हो जायँ, यानी उनका ख्याल आने के साथ ही घृणा भी आये, तब अनुभव बन्द कर देना चाहिए।

यह मत सोचो कि अनुभव करते-करते उत्तेजना कम होती जायगी और हमेशा के लिए बन्द हो जायगी। नहीं, कुछ काल बाद फिर उत्तेजना होने लगेगी।

जब संस्कार दृढ़ हो जाय तो हठ से उस व्यवहार को रोकना चाहिए। बार-बार मन को समझाना चाहिए कि जिस बात की तू इच्छा करता है, देख वह कैसी है और तुझको पीछे कितना नुकसान उठाना पड़ता है, इत्यादि। ऐसा चिंतन करना चाहिए।

जाग्रत में कभी स्त्री से हँसी भी न करना, ताकि काम के भावों को सिंचाई न मिले, न दूसरों से कभी ऐसी बातें सुनना।

जो इनकी निन्दा करते हैं, उन्हींका संग करना या अकेले रहना। वैराग्य की पुस्तकों का मनन करना, खासकर 'योगवाशिष्ठ' का वैराग्य प्रकरण देखते रहना चाहिए। पढ़ना कम, मनन अधिक करना। कुछ काल पीछे चेष्टा शान्त हो जायगी।

खाने पीने की सावधानी हमेशा रखना।

परीक्षा की तैयारी

परीक्षा देने से पहले विद्यार्थी की पढ़ाई अच्छी तरह ठीक कर लेनी चाहिए।

पहले तुम इतने काल तक साधन करो कि तुम्हारा मन विषयों में तथा भोजन के स्वाद में कभी राग न प्रकट करे।

फिर अपने मन को देखते रहो कि कभी किसी युवती को देखकर विकार को प्राप्त होता है या नहीं।

जब विषयों से उपराम रहने लगे, स्त्रियों से उदासीन रहे, स्वप्न में भी कभी स्त्री में सुख न माने, तब समझो कि कुछ हुआ। यदि मूर्खता में फँसे रहोगे, तो काम-संस्कार को कभी नष्ट नहीं कर सकोगे। मूर्खों को स्त्रियाँ बन्दर की तरह नचाती हैं, और वे शौक से नाचते हैं। जिस चीज को तुमने सैकड़ों बार देख लिया, छू लिया और अकल न आयी, तो अब कैसे आयेगी? स्त्री को स्पर्श करने पर जब उत्तेजना हो गयी, तब गिरावट तो हो ही गयी। आगे क्या कर सकोगे? इसलिए उत्तेजना को मौका ही मत दो, वरना पछताओगे। ऐसे कुपथ्य से हड्डी का दर्द, वीर्य-दोष तथा काम-ज्वर आदि रोग पैदा हो जाते हैं। पहले संयम का स्वभाव बना लो, फिर इस कठिन परीक्षा में पड़ो।

स्त्री, चाहे देवी हो या महालक्ष्मी, आखिर है माया का रूप ही। हाड़-मांस-चाम में मैं कोई विशेषता नहीं देखता। इसलिए बंधन चाहे सूत की रस्सी का हो, चाहे रेशम की रस्सी का, वह बंधन ही है।

दोनों रस्सियाँ मनुष्य को स्वतन्त्रता से चलने से वंचित रखती हैं। स्त्री चाहे देवी हो, चाहे भक्तिन योगिन हो, वह पुरुष को बंधन ही प्रतीत होगी। हाँ, जिसको विचार नहीं है और कामांध है, उसकी बात निराली है।

> माया महा ठगिनी हम जानी।
> केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी।
> योगी के योगिन ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्माणी॥

कबीरदास की इस बानी पर कभी-कभी विचार कर लेना चाहिए और स्त्री-मात्र से प्रेम नहीं करना चाहिए। ब्रह्मचारियों को धोखा हो सकता है।

माया जो है, दिखलावा ही है। उसकी असलीयत का जब पता लग जाता है, तब उससे चित्त हट जाता है।

Henpecked husband (स्त्री के गुलाम) के लिए कामशक्ति का मुकाबला करना असम्भव है। यह निश्चय समझना चाहिए कि जब तक स्त्रियों की बातों पर विश्वास करते रहोगे, उनके दास बने रहोगे। जब तक उनके गुलाम बने रहोगे, तब तक कल्याण असम्भव है।

हर क्षण सावधान रहें

काम-जय वही पुरुष कर सकता है जो शत्रु से कभी गाफिल नहीं रहता। जो गफलत करता है, धोखे में मारा जाता है।

मनुष्य साधारण हालत में जितनी असावधानी करेगा और अपने ख्यालात को ठीक रखने में प्रमाद करेगा, उतनी ही गिरने की सम्भावना अधिक है। स्त्री से या किसीसे मखौल करना ही हानिकारक है। लड़ाई सख्त है, गाफिल का काम नहीं है कि जय प्राप्त कर सके।

जब तक माया अपने छल से मनुष्य की बुद्धि को न विचलित कर दे, तब तक वह गिर नहीं सकता।

सावधानी रखने पर ही शान्ति की आशा हो सकती है। हर समय

सावधानी रखनी चाहिए। बाहर के शत्रु से बचने का उपाय करके पुरुष निश्चिन्त हो सकता है, परन्तु जो शत्रु घर के भीतर ही रहनेवाला है, उससे तो हर समय प्रति क्षण सावधान रहना पड़ेगा। जब कभी गाफिल होगे, वह धर दबायेगा।

मोह सकल व्याधिन कर मूला।

यह एक निश्चित सिद्धान्त है, जिसका गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में वर्णन किया है। आप भी इसे अच्छी तरह कसौटी पर कस लें। शारीरिक दुःख, शारीरिक कुपथ्य से और मानसिक दुःख, मानसिक कुपथ्य से पैदा होता है। जो दुःख कुपथ्य से पैदा होता है, वह कुपथ्य से अधिक-से-अधिक तीक्ष्ण होता जाता है, शान्त नहीं हो सकता। उसका प्रथम और अन्तिम इलाज परहेज है। सहायक उपाय यह भी है कि कुपथ्य के कारण जो दोष बढ़ गये हैं, उनको यथाशक्ति निकाल दिया जाय और कड़ा परहेज करके नये दोष के पैदा होने में रुकावट डाली जाय, और रहा-सहा दोष बढ़ने न पाये। यह रहा-सहा दोष लगातार परहेज से ही जीता जा सकता है। यदि बलात्कार से कुपथ्य कुछ-न-कुछ होता ही नजर आये, तो निकालने तथा नाश का उपाय भी अवश्य होते रहना चाहिए; वरना दोष बढ़कर गिरा देता है।

बलपूर्वक पुरुषार्थ

जब आप नरक-कुण्ड में गोता लगाने से घृणा करते हैं, तब प्राणोत्तेजना कैसे हो जाती है? घृणा को बढ़ाते जाना चाहिए। अपनी तरफ से बलपूर्वक पुरुषार्थ करना चाहिए और सफलता के लिए चढ़ाई के समय विशेषकर और साधारण तथा अन्य समय में भी नित्य प्रार्थना करनी चाहिए। क्योंकि "Heaven helps those who help themselves." (हिम्मते-मरदां मददे खुदा।) हमेशा सावधान रहो। यदि नामर्दी करोगे, तो पीछे हाथ मीजते रहोगे और यों ही जीवन नष्ट करोगे।

विपक्षियों पर विश्वास न करें

जो पुरुष दुश्मन से लड़ना चाहता है और उसीके पक्ष के आदमियों को अपनी तरफ मिलाकर जीतना चाहता है, उस मूर्ख को जीत से हाथ धोना चाहिए; क्योंकि जब दुश्मन के पक्ष के आदमी दुश्मन की ही तरफदारी करनेवाले हैं, तब वे कब फतह होने देंगे। इसी तरह जो पुरुष काम-क्रोध आदि विषयों को नष्ट करना चाहता है, उसे चाहिए कि उनके पक्ष के लड़नेवालों को अपनी सहायता में न रखे, नहीं तो उसका पक्ष निर्बल रहेगा और वह धोखा खायेगा। जितना पाप का अंश है वह उनके पक्ष का है और जो पुण्य अर्थात् धर्म का अंश है, वह इनके विरुद्ध पक्ष का है। भला, जो ऐसे महान् कर्म करने की श्रद्धा करते हैं—जिसमें किसीको दुःख न देना, झूठा व्यवहार न करना, दूसरे का हक न लेना, ब्रह्मचर्य्य रखना, विषयों से बचना आदि बातों पर पूरा ध्यान रखना पड़ता है—इन बातों को तोड़ने से वह कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि उनको इस मार्ग में सफलता प्राप्त होगी? जो पुरुष किंचित् मात्र भी पाप से काम लेना चाहता है, उसके लिए इनको जीतना कठिन ही नहीं, असम्भव है। परन्तु जो पुरुष अपने हृदय से प्रथम पाप का बीज नाश करता है, केवल धर्म अर्थात् सचाई पर खड़ा होता है। (धर्म का लक्षण मनुस्मृति या गीता के सोलहवें अध्याय में अच्छी तरह दिया है।) वही जल्दी या देर से फतह पाने की उम्मीद रख सकता है। यदि मनुष्य सफलता चाहता है, तो उसको ईश्वर के सामने दृढ़ प्रण करना चाहिए कि "बस, अब पाप बिलकुल नहीं करूँगा, सचाई से कभी नहीं गिरूँगा।" तब यदि ईश्वर से सीधे मन से प्रार्थना करे, तो वे उसे सहायता प्रदान करेंगे। जब धर्म पर आरूढ़ होकर पुरुषार्थ करोगे, तभी सफलता की आशा कर सकते हो। नहीं तो, प्रथम तो सफलता-सी दीखेगी, पीछे फिर पाप से हृदय मलीन हो करके गिरावट आ जायेगी।

मलीन हृदय में सत्य का प्रकाश कभी नहीं होता। जैसे रुपया

रुपये को, चुम्बक चुम्बक को खींचता है, वैसे ही सचाई सचाई को खींचती है, और यथार्थ बोध बढ़ता जाता है।

ध्यान में रखने की दूसरी बड़ी भारी बात यह है कि यदि मुमुक्षु का आचरण पाप-मिश्रित रहेगा, सचाई से गिरा रहेगा, तो उसको उसके कुटुम्बियों का श्राप लगेगा, उनके दुःख की कल्पना से उसको विघ्न पर विघ्न होंगे। मुमुक्षु मन-कर्म-वचन से अपने सुधार की कोशिश धर्म के सहारे से करता रहे।

संस्कार दृढ़ कैसे हों ?

मुमुक्षु के मन, वचन और कर्म एक होने चाहिए। इनमें भेद होना ही झूठ या कपट, छल या पाप समझना चाहिए। फिर ऐसे आचरण से मन की मलिनता नहीं जा सकती।

आजकल के जमाने में ब्रह्मचर्य्य का व्रत बहुत कठिन है। परन्तु पुरुषार्थ सच्चे दिल से और नियम के अनुसार किया जाय। पुरुषार्थ के आगे सब सुगम हो जाता है। उसे पूर्ण करने के लिए जो उपाय वह करे, वह काफी होना चाहिए, नहीं तो बरसों में भी शायद पूरी सफलता न हो।

इसका कारण यह है कि संस्कारों का नाश केवल ख्याली बातों से नहीं होता। जिस तरह से संस्कारों की दृढ़ता होती है, उसी तरह से उनका नाश भी होता है; अर्थात् एक संस्कार के विरुद्ध या नाशक संस्कार के दृढ़ होने से पहलेवाला नष्ट हो जाता है।

जैसे, तुम स्त्री-भाव को नष्ट करके मातृ-भाव स्थापन करना चाहते हो, और ईश्वर से प्रार्थना करके मन में उसके चरणों में माथा भी टेकते हो। अब मैं पूछता हूँ कि जब तुम्हारी पत्नी तुम्हारे सामने आती है, तब भी तुम्हारे दिल में मातृ-भाव आता है कि नहीं ? तुम उसको मातृ-भाव से माता के सदृश पुकारा भी करते हो कि नहीं ? और उसके साथ माता का जैसा व्यवहार भी करते हो या नहीं ?

यदि तुम ऐसा नहीं करते, तो अव्वल तो तुम्हारे हृदय में कपट

रहा, जिसे ईश्वर ही जानते हैं और वे तुम्हें इस मखौल का फल भी वैसा ही देंगे। दूसरे, तुम स्त्री को धोखे में रखते हो। अभी वह तरह-तरह की आशाएँ बाँध रही होगी। कुछ समय बाद जब उसकी आशाएँ पूरी न होंगी, तब उसे निराशा का कैसा दुःख होगा! उस वक्त शायद वह न सँभल सके, और अपने लिए कोई अच्छा रास्ता न निकाल सके, तब उसका जीवन यों ही नष्ट हो जायेगा।

इसलिए तुम्हें भी वैसा ही करना चाहिए जैसा कि इस मार्गवालों ने किया है। परमहंस रामकृष्ण देव की पत्नी जब उनके पास आयी, तब उन्होंने सबके सामने स्पष्ट कह दिया कि जिस रामकृष्ण ने शादी की थी, वह मर गया। अब 'यह' तुमको 'माता' समझता है। इस पर उस पतिव्रता ने अपने मन को सावधान करके अपने-आपको परमार्थ के मार्ग पर लगा दिया, और बहुत अच्छी तपस्विनी और ज्ञानवान् हुई। उस वक्त उसकी उम्र कम ही थी। इसीलिए पुरुषार्थ करके ऐसा बन गयी।

बड़ी उम्र में इतना पुरुषार्थ नहीं हो सकता है। जवानी में ही सब कुछ हो सकता है। यदि यह समय यों ही गुजर गया, तो बड़ा भारी घाटा रहेगा।

इसलिए मैं चाहता हूँ कि यदि तुम्हारी हिम्मत पड़े, तो रामकृष्ण देव की तरह मैदान में आ जाओ।

युद्ध में चोटें लगती हैं, परन्तु शूरवीर उनसे घबराते नहीं। कायरों का काम युद्ध करना नहीं है।

महात्मा गांधी की आत्मा इसी तरह से बलवान हुई है कि प्रत्येक विषय में उनके मन, वचन और कर्म एक जैसे होते रहे हैं। ऐसा नहीं है कि मन में कुछ, मुख में कुछ, और कर्म में कुछ और। सब काम अपनी हिम्मत देखकर ही करना चाहिए। परन्तु ऊपर लिखे उपाय के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं जिससे संस्कार दृढ़ हों। ख्याल को व्यवहार में लाने से ही संस्कार दृढ़ होता है।



खाना-पीना, टट्टी-पेशाब करना, सोना-जागना, डरना, विषय भोगना, बच्चे पैदा करना और उनका पालन करना—इतनी बातें पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े और मनुष्यों में एक जैसी होती हैं। यदि मनुष्य शरीर पाकर इतना ही किया तो वह पशुओं के बराबर रहा। वह मरकर अधोगति को प्राप्त होगा। परन्तु, यदि उसने विचार किया और धर्म को समझा, और दुःख के कारण को नाश किया, थोड़े से सुख के लिए अपने आपको दुःख में न डाला, इन्द्रियों के विषयों की परवाह न की, उनको जीत लिया, तो उसने देवलोक को जीत लिया। वह यहाँ भी सुखी रहेगा, और मरने पर उसकी बहुत ही उत्तम गति होगी।

निष्पाप जीवन के नियम

(१) **अहिंसा**—मन-वचन-कर्म से किसीको दुःख न देना, परन्तु अपनी जान-माल और धर्म की रक्षा के लिए शास्त्रानुसार यदि किसीको दुःख पहुँच जाय, तो दोष नहीं है। दूसरे की भलाई करने में उसको या दूसरे को दुःख पहुँचे तब भी दोष नहीं है।

संसार इतना गड़बड़ है कि बिना इच्छा भी, दूसरों को कुछ-न-कुछ कष्ट दिये बिना, काम चल ही नहीं सकता।

यदि तुम हिंसक जन्तुओं को न छेड़ो, तो जब तक तुम्हारा प्रबल भोग न होगा, वे तुम्हें कष्ट नहीं देंगे।

हिंसक जीव, सिवाय इसके कि भोग बड़ा प्रबल हो, बिना छेड़े कष्ट नहीं देते। गुरुकुल में रहते हुए अनेक बार बिच्छू हमारे आसन के

नीचे रहा करते, पर न हमने कभी उनको मारा, न उन्होंने हमें कभी काटा। ऐसे ही पहाड़ में कई बार सर्प के दर्शन हुए। उसके पास आने पर भी जब हमने कुछ नहीं कहा, तो वह भी चुपचाप चले गये। मच्छर तो प्रेम से काटते हैं। यहाँ द्वेष-भाव नहीं है। जब हम फल तोड़ते हैं तो हमें वृक्ष से कुछ द्वेष नहीं होता। दुःख दूर करनेवाली वस्तु प्रेम से तोड़ी या काटी जाती है। इसलिए वृक्षों को भी निरर्थक नहीं छेड़ना चाहिए।

(२) **सत्य**—जैसा दिल में भाव हो, वैसा ही करना तथा कहना। भाव प्रकट करने में स्पष्ट शब्द बोलना चाहिए। यदि दूसरे को हानि पहुँचाने के लिए झूठ बोला जाय, तो बहुत ही दोष लगता है। परन्तु, यदि अपने जान-माल-धर्म की रक्षा के लिए बोला जाय, तो थोड़ा-बहुत दोष लगता है।

(३) **अस्तेय**—किसीका हक लेना या छिपाकर या चालाकी से, जबरदस्ती से लेना चोरी कहलाती है। चोरी कभी न करे।

(४) **ब्रह्मचर्य्य**—मन-वचन-कर्म से पर पुरुष या स्त्री के संग की इच्छा न करना।

(५) **दम**—विषयों अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द किसीकी इच्छा न करना।

(६) **भोजन**—भोजन धार्मिक कमाई का होना चाहिए। वह रसीला (शरीर के रसों को बनानेवाला), चिकना, हृदय को हितकारी, निरोग रखनेवाला, आयु-बल और बुद्धि को बढ़ानेवाला होना चाहिए। खट्टा, चटपटा, तीक्ष्ण, कसैला, रूखा, कड़वा, बहुत नमकीन और गरम नहीं होना चाहिए। जो भोजन हृदय में जलन पैदा करे, वह भी नहीं होना चाहिए। अपवित्र, दुर्गन्धित, देर से रखा हुआ, बासी तथा भारी भोजन नहीं करना चाहिए।

(७) **व्यवहार**—मन को पवित्र रखना चाहिए। मन सरल रहे, छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, क्रोध आदि से बचना चाहिए।

(८) शरीर की शुद्धि—शरीर को नीरोग रखने के लिए जिस समय जितनी आवश्यकता समझी जाय, उतनी शुद्धि होनी चाहिए।

(९) संतोष—संसारी उद्योग या कोई धर्म-कार्य करने पर जितना या जैसा नतीजा हो, उस पर संतोष करना चाहिए।

(१०) समता—सुख-दुःख, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, हानि-लाभ में हर्ष या शोक नहीं करना चाहिए। बल्कि, उस समय विचार करना चाहिए कि मेरे पिछले कर्मानुसार जैसा कुछ मेरा भोग था, वैसा ही मेरे सामने आ गया। दूसरा, केवल भोग सिद्ध होने में साधन-मात्र है।

(११) स्वाध्याय—पढ़ने के लिए कोई धर्म-पुस्तक हो, जिससे भक्ति, धर्म तथा वैराग्य बढ़े।

(१२) निष्काम भाव—धर्म-कर्म करते हुए, किसीका उपकार करते हुए, ईश्वर से या संसार से बदले में कुछ पाने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। जिस तरह वह हमारा कल्याण समझेंगे, वैसा वह आप ही करेंगे। हमको उन पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखते हुए उनकी रजा में राजी रहना चाहिए।

(१३) प्रतिज्ञा-पालन—प्रतिज्ञा को तोड़ने से भारी पाप लगता है। उस पाप की वजह से न यहाँ सुख मिल सकता है, न परलोक में। भजन में तरक्की ही नहीं हो सकती है, और उलटे विघ्न ही होंगे। जो पाप को नहीं छोड़ता और भजन करता है, उसके भजन की कदर भगवान् के दरबार में नहीं होती। जो पाप से बचता है, धर्म पर खड़ा रहता है, वही भगवान् को प्यारा है। प्रतिज्ञा पत्थर पर लकीर की तरह हो। पहले सोच-समझकर प्रतिज्ञा करो, फिर करके पूरा करो, जिससे तुम्हारी बात पर लोगों को विश्वास हो, और तुम्हारे मन की शक्ति बढ़ती चली जाय।

(१४) विचारयुक्त व्यवहार—जब कोई इरादा हो, तब देख लो और विचार कर लो कि ऐसा होना चाहिए कि नहीं। अगर अनुचित हो, तो मन में ही रोक दो।

(१५) दियानतदारी—किसी चीज को व्यर्थ खर्च करना बददियानती है। समय नष्ट करना, किसी काम को बिना ध्यान दिये करना भी बददियानती है। जो काम करना हो उसको पूरे ध्यान से करना चाहिए। जिस कदर कर सको उसी कदर काम में लगना चाहिए तथा उसकी जिम्मेदारी लेनी चाहिए।

क्रोध कैसे दूर हो ?

(१) जिन मौकों पर क्रोध पैदा होता हो, उनसे घबरायें नहीं, बल्कि उनको देखकर क्रोध रोकने के लिए पहले से तैयार हो जायँ।

(२) जिन बातों से गुस्सा पैदा होता है, उनकी तरफ से बेपरवाह रहें।

(३) संसारी काम-काज करने में अपनी तरफ से कमी न रहे। फिर भी कोई बुरा कहे तो परवाह न करें।

(४) पहले पहल यह अभ्यास जरूरी है कि दूसरे का कहना अगर अपने लिए नुकसानदेह न हो, तो बुरा न लगे। इससे आपका सामर्थ्य धीरे-धीरे आप ही बढ़ जायेगा।

मान तथा नाम को छोड़िये

क्या घरवालों की बातों से तुम्हें चोट लगती है? शब्द ही तो हैं! यदि तुम अपने कुटुम्बियों की बातें नहीं सह सकते, तो पीछे यदि अन्य कोई तुम्हें कुछ अपशब्द कहेगा, तब कैसे सहोगे? परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिए कि ऐसे शब्द सहने के लिए तुम्हें घर पर ही मौका दे दिया है। यदि तुम अभी से अभ्यास न करोगे, तो कब करोगे?

नाम की इच्छा जबरदस्त होने से पुरुष इन शब्दों को नहीं सह सकता। नाम की इच्छा से कार्य करने की आदत छोड़नी चाहिए। जहाँ तक हो अपना कर्तव्य करते जाओ। तुमको शासन की इच्छा है, इस-लिए स्त्री की तेजी पर रोष आता है। तुम उसे समझा दो और बस।

प्रत्येक प्राणी अपनी इच्छा पर स्वतंत्रता चाहता है, इसलिए रोष नहीं करना चाहिए।

यदि किसीको दंड देना हो, तो शांत होकर बनावटी रोष दिखला कर दो। असली रोष नहीं होना चाहिए। तुम यदि पूर्ण शांति को धारण करोगे, तो तुम्हारी संगति से उसको भी स्वतः कुछ शांति आयेगी, जैसे जल की संगति से कमल भी ठंडा हो जाता है। इससे 'एक पन्थ दो काज' होंगे।

सावधानी से युद्ध करें

झूठी कल्पनाओं से क्रोध आदि शत्रु नहीं जा सकते। उनसे पैदा हुए दोषों को हर वक्त ध्यान में रखना चाहिए और व्यवहार में जब क्रोध आदि की वृत्ति उदय हो जाय, तब उसके अधीन होकर न चले; बल्कि मन को फटकार करके और ईश्वर से प्रार्थना करके फौरन उस वृत्ति को नष्ट कर डाले। पीछे जब चित्त ठीक हो जाय, तब यथोचित बातचीत या कर्म करे।

क्रोध का दण्ड

क्रोध आये तो बोले ही न। इतनी सजा काफी है कि क्रोध के कारण खुद जलता रहे। जब शान्त हो, तो फिर अपनी मूर्खता पर विचार करे।

नम्रता धारण करें

मालूम होता है, अभी तुममें इतनी नम्रता नहीं आयी है कि तुम्हारे बर्ताव या वार्तालाप से दूसरे को क्रोध न आये। तुम्हें नम्र रहना चाहिए और हमेशा प्रेम का बर्ताव करना चाहिए। ऐसा अभिमान न करो कि तुम बड़े हो और दूसरा छोटा है। माता-पिता को भी चाहिए कि वे नम्रता और प्रेम से बच्चों को समझायें। इससे बच्चे कभी गुस्सा नहीं करेंगे।

दूसरों को जवाब देते समय इतना ख्याल जरूर रखना चाहिए कि क्रोध न आये। दूसरे जो कुछ भला-बुरा कहें, शांति से सुन लो और नम्रता-पूर्वक उचित उत्तर देकर चुपचाप उनकी बातें सुनते रहो। नदी का वेग बरसात में थोड़े दिन रहता है, फिर शान्त हो जाता है। इसी तरह लोगों

का शोर थोड़े दिन रहकर शान्त हो जायेगा, और फिर वह साधारण-सी बात हो जायेगी।

लोभ

जब तक मनुष्य समझता है कि मुझे संसार से लाभ है, तब तक लोभ है। यदि मुझे आठ हजार रुपये काफी हैं और मैं एक करोड़ जमा करने का यत्न करता हूँ, तो यह लोभ है। जब जरूरत ही नहीं, तो अधिक की इच्छा करना लोभ है।

जान-बूझकर जरूरतें खड़ी न करें। इनका कोई अन्त नहीं। जितना कुछ कर्तव्य-पालन के लिए आवश्यक है, वही ठीक है। केवल निन्यानवे के फेर में पड़ना लोभ है, दुःख का मूल है, बन्धन का कारण है और महा मूर्खता है।

कमाते हुए चित्त को धन-वैभव से मुक्त कर देना चाहिए। विचार भी करना चाहिए कि अधिक रुपये से कितना लाभ है और कितनी हानि। जो लोग भूखे ही घर से निकलते हैं, वे पीछे जायदाद के लोभ में पड़ मठाधीश बनकर गिर जाते हैं, तथा रुपया बटोरने की फिकर में पड़कर गृहस्थों की श्रद्धा का बेजा फायदा उठाते रहते हैं और पाप के भागी बनते हैं।

धनी जिज्ञासु क्या करें ?

धन-सम्पति को धर्म-कार्य में लगा दो और इस झंझट से छुटकारा प्राप्त कर लो। तीर्थ-यात्रा करो। जीवन तपोमय होना चाहिए। ठाट-बाट छोड़कर सादा जीवन बनाओ। खान-पान भी सादा हो और उसमें संयम रहे। यम-नियम का पालन बहुत आवश्यक है। स्वतन्त्र रहने का अभ्यास करो। नौकरों से बहुत काम न लिया करो। विचार को धारण कर काम अथवा मन का मर्दन करो।

मनोनिग्रह

मन में ध्यान-शक्ति को बढ़ाना चाहिए। ध्यान से ही सब बातें पूरी कर सकते हैं। भक्त लोग ध्यान में ही भगवान की गोद में खेलते हैं।

इधर-उधर बिना जरूरत न जाओ। बिना जरूरत न बोलो। बिना जरूरत न देखो, न हँसो। अपने घर में बैठे रहो। किसी-न-किसी काम में हमेशा लगे रहो। कुछ काम न हो, तो चरखा ही कातो। बिना प्रयोजन इधर-उधर मारे-मारे फिरने से मन चंचल रहता है और दुःख देता है। कथा-वार्ता सुनने भी तब जाओ, जब तुम कथा न कर सको। कथा अपने मन को सुनाओ और उस पर अमल करो। प्रभु जैसी हालत में रखें, वैसी हालत में संतोष के साथ निर्वाह करना सीखो। शिकायत न करो। शिकायत करने से मन कमजोर हो जाता है। इस हालत में धैर्य्य के साथ निर्वाह करने का यत्न करते रहो, तो मन आप ही ठीक हो जायगा।

हमेशा नम्रतापूर्वक बात करनी चाहिए। मर्यादा से बाहर नहीं होना चाहिए। हानि-लाभ को सोच-विचार कर काम करना चाहिए। एक दम से हठ भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी बहुत हठ करने से काम बिगड़ जाता है। इसलिए मौका देखकर सब काम करना चाहिए। मन को हमेशा लक्ष्य पर बनाये रखो, पर ऊपर से व्यवहार लोक-कुल के अनुसार करते रहो।

व्यवहार में पवित्रता

सन्तों के दर्शन करना अच्छा है। उनके उपदेशों पर अमल करना चाहिए। केवल भजन से कुछ नहीं होगा। व्यवहार में मन को हर समय वैसा ही रखना चाहिए, जैसा कि सन्त लोगों ने भजन करनेवालों को कहा है। वे स्वयं अपने मन को व्यवहार में कैसा रखते थे, वैसा ही रखना चाहिए।

व्यवहार में रहते हुए पुरुष को बहुत-कुछ करना है। हिम्मत करके पुरुषार्थ पर डटा रहे। आपको निरन्तर यह कोशिश करते रहनी चाहिए कि आपका मन विषयों से हट जाय। इन्द्रियों को बाह्य विषयों से विरक्त रखना चाहिए, और मन को नाम-मान-स्तुति से बेपरवाह रहना चाहिए। कर्तव्य-कर्म करते हुए इनसे बेपरवाह रहे। कोई कार्य नाम-मान या स्तुति के ख्याल से न करे; कर्तव्य समझकर ही करे।

इतना तो जरूर करें कि आपको नेत्र के रूप, जिह्वा के स्वाद, और त्वचा के स्पर्श की परवाह न रहे, अर्थात् किसी विशेष रूप में, या स्वाद में, या स्पर्श में आसक्ति न रहे। फिर देखिये क्या नतीजा निकलता है !

गुण-ग्राहक वृत्ति

सब महात्माओं से सम्बन्ध रखो, सबसे आशीर्वाद की इच्छा रखो और सबकी यथाशक्ति सेवा करो। बड़े भाग्य से किसी सन्त का सत्संग होता है। जब-जब मौका मिले, सन्तों का सत्संग करना चाहिए।

मनुष्य को शहद की मक्खी की तरह होना चाहिए। जैसे वह कन्द-फूलों से रस लेकर अपने छत्ते में रखकर सेवन करती है, वैसे ही वह भी करे।

ऐसे पुरुष आपको बहुत कम मिलेंगे, जिनका कथन और कर्म एक जैसा हो। इसलिए आपको गुण ले लेने चाहिए, दूषणों की परवाह न कीजिये।

कट्टरपन अच्छा नहीं। तुम दूसरे के दोष निकालते हो, अपने छिद्र नहीं देखते। लोग तुम्हारे शुद्ध आचरण को देखकर स्वयं तुम्हारे पथ पर आ जायेंगे। केवल दूसरों के दोष दिखाने से ही लोग तुम्हारे रास्ते पर नहीं चलेंगे। सभी मत गुण-दोषयुक्त हैं। यदि जीवन के कल्याण की इच्छा हो, तो खण्डन-मण्डन छोड़कर अपने में सद्गुण लाने का यत्न करना चाहिए।

सत्संग

किसी जगह का संग अनुकूल न हो और आर्थिक लाभ अधिक हो, तो दुनिया लोभ में फँसकर कुसंग की परवाह नहीं करती। इसलिए धनी होते हुए भी लोग न इस जन्म में सुख से जीवन व्यतीत करते हैं, न परलोक में कोई आशा कर सकते हैं।

कुसंग से बचना चाहिए। संस्कृत पढ़ सको या न पढ़ सको कोई बात नहीं। संस्कृत न पढ़ने से इतनी हानि नहीं पहुँच सकती, जितनी तुम्हारे

विचारों के विरुद्ध पुरुष का संग करने से—नहीं तो पीछे बहुत पछताना पड़ेगा।

वेषधारी साधु तो बहुत हैं, परन्तु दिल से साधु कम मिलते हैं। जो असल साधु हैं, उनके दर्शन करने से चित्त प्रसन्न होता है। जिन्हें सत्संग की लगन है, उनका हृदय महात्माओं से बार-बार मिलने से उत्साहित होता है। यदि एक बार किसीके दर्शन करने पर फिर दोबारा जाने को मन में उत्साह न हो, तो समझना चाहिए कि वहाँ जाना लाभदायक न होगा।

बिना सत्संग के भक्ति होना असम्भव है। संसारी लोगों की संगति कुसंग है। जब चित्त संसारी झगड़ों में फँसा है, तब भजन में कैसे लग सकता है? वह तो हर समय उन्हीं संसारी बातों का चिन्तन करेगा जिनमें वह है। यदि हर समय ऐसे मनुष्यों के बीच रहना पड़े, जो सिवाय प्रभु की भक्ति के और संसारी धन्धों का चिंतन ही नहीं करते, तब देखो कि तुम्हारा चित्त कितनी जल्दी पलटा खाता है। परंतु ऐसा करे कौन? चित्त में तीव्र इच्छा तो है ही नहीं। दूसरे के कहने से कभी देखा-देखी हो गयी, तो वह काम नहीं दे सकती। नित्य-प्रति अच्छे मनुष्यों की की संगति करते रहो। जो वस्तु बहुत आराम से मिलती है, उसकी कदर कम होती है; जो परिश्रम से मिलती है, उसका स्वाद तथा प्रभाव विलक्षण होता है। इससे परिश्रम करके भी सत्संग प्राप्त करना चाहिए और मन को जताते रहना चाहिए कि संसार असार है तथा संसार में आसक्त रहने से दुःख होता है।

सत्संग से चेतावनी आती है, अपने-आप नहीं आती। इसलिए किसी अच्छे आदमी की सत्संगति करते रहना चाहिए। किसीके कहने की रीति ऐसी होती है, जिससे दिल में बात जँच जाती है। कोई मौका ऐसा होता है कि कहने से चेतावनी आ जाती है। इसलिए सत्संग की बड़ी महिमा है।

राजा धृतराष्ट्र अन्धे थे, इसलिए वे नेत्रों का सुख नहीं ले सकते थे। उनकी स्त्री गांधारी सच्ची पतिव्रता थी, इसलिए उसने भी नेत्रों का सुख लेना छोड़ दिया था। वह आँखों में पट्टी बाँधे रहती थी। बुद्ध महाराज की स्त्री ने जब देखा कि उसके पति ने पलंग पर सोना और नमक, खटाई, मिठाई आदि स्वादिष्ट पदार्थों को ग्रहण करना छोड़ दिया है, तब उसने भी वैसा ही किया। इन बातों से उसका पति जन्मभर उससे प्रसन्न रहा। उन्होंने राज-पाट छोड़ दिया, परन्तु पत्नी से प्रेम करना नहीं छोड़ा।

स्त्री-धर्म : पतिव्रता

जो सच्ची पतिव्रता होती हैं, वे उस सुख को नहीं ग्रहण करतीं, जिसे पति नहीं ग्रहण करता। उसके साथ-साथ वे अपना भी सुधार करती जाती हैं। परन्तु जो दिखावटी पतिव्रता होती हैं, वे मनमाना करती हैं, और पति के कल्याण के रास्ते में विघ्न बन जाती हैं। इससे वे अपना यह जन्म भी गँवाती हैं और परलोक भी बिगाड़ लेती हैं। सच्ची पतिव्रता सदा सुखी रहती हैं। यहाँ भी उनका यश होता है और मरने पर भी वे बहुत उत्तम गति को प्राप्त होती हैं। पतिव्रता के लिए कल्याण का मार्ग खुला है, यदि वह श्रेष्ठ पति के पीछे चल पड़े।

तुम्हारा स्वभाव ऐसा होना चाहिए, जो लोगों को प्रसन्न करनेवाला हो। ऐसा न हो कि तुम दूसरे को देखकर जलो और आपस में लड़ो। तुम्हारा स्वभाव अच्छा होगा, तभी तुम्हारा कल्याण होगा और तुम्हारे बाल-बच्चों और मिलनेवालों पर अच्छा असर पड़ेगा। केवल भजन सीख लेने से ही कल्याण नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति को पाप से घृणा होनी चाहिए। जो पाप को नहीं छोड़ता और भजन करता है, उसके भजन की कदर भगवान के दरबार में नहीं होती। जो पाप से बचता है, धर्म पर आरूढ़ रहता है, वही भगवान को प्यारा है।

स्त्रियाँ क्या करें ?

भजन करनेवालों को थोड़ी-सी त्रुटि भी बड़ी समझनी चाहिए। तुम लोगों के स्वभाव तथा आचरण में यदि अन्य स्त्रियों की अपेक्षा

विशेषता न पायी गयी, तो क्या बना ? अपने चरित्र को धार्मिक रखते हुए और पाप से बचते हुए, यदि तुम्हारे में दूसरों के वचन सहने की शक्ति न पैदा हुई, तो क्या बना ? जिसका हृदय धर्म से भरा हुआ नहीं है, जिसे पाप से घृणा नहीं है, और जो सहनशील नहीं है, उसके व्रत और भजन से क्या लाभ ? उसको न यहाँ सुख मिल सकता है, न परलोक में। यदि कष्ट सहने के लिए तुम्हारा मन सब प्रकार से तैयार है, तब शरीर तथा मन को ठीक रखो और सहन-शक्ति को दृढ़ करो। जमाना देखकर व्यवहार ठीक रखना चाहिए। सहनशीलता बड़ी वस्तु है।

व्यवहार में साधन

व्यवहार में ही अपने मन की चालों का ठीक-ठीक पता लगता है। ज्ञानी संसार को नाटक समझकर, सुख-दुःख की परवाह किये बिना, निष्काम-भाव से कर्तव्य-कर्म का पालन करता रहता है। अतः सेवा के योग्य मनुष्य की अथवा दुखी जन की अवश्य सहायता करनी चाहिए।

दुष्टों की निन्दा में भलाई

(१) दुष्ट लोग अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकते, क्योंकि उनको उसीमें सुख प्रतीत होता है, भले ही पीछे उनको उसका बुरा फल भोगना पड़े। पीछे की वे परवाह नहीं करते। वे तो अभी जिससे सुख मिले वही करते हैं। परन्तु जो ईश्वर-भक्त हैं, वे उनकी दुष्टता से बुरा नहीं मानते। महात्मा तुलसीदासजी ने मानस में कहा है :

खल परिहास होइ हित मोरा।

रामायण में उन्होंने दुष्टों को भी प्रणाम ही किया है।

(२) निन्दा करनेवाला तो धन्यवाद के लायक है। उससे कहना चाहिए, 'भाई, तुमने मेरा कुछ बिगाड़ा तो नहीं, बल्कि उपकार ही किया है। अपना अवगुण अपने-आपको दिखाई नहीं पड़ता। तुमने सावधान कर दिया है कि यह दूषण कभी न आने पाये।' निन्दा से घबराना नहीं चाहिए। यदि हममें दोष है, तो उसने हमें सूचना देकर कृतार्थ किया है; नहीं है तो आगे के लिए चेतावनी दे दी है।

(३) बदनाम होते रहना मैं अच्छा समझता हूँ। इससे मोह नहीं बढ़ता तथा वैराग्य की पुष्टि होती रहती है। संग से लोग कुछ-न-कुछ कहते ही हैं। किसीका मुँह बन्द नहीं किया जा सकता। अब, बताओ कि किस बात का खण्डन करते रहें ? इसलिए यही ठीक प्रतीत होता है कि जैसी स्थिति में प्रभु रखें, उसीमें मस्त रहने की कोशिश होनी चाहिए।

हरचह बादाबाद मा कश्ती दराब जन्दाख़्तीम—जो होना हो होता रहे, हमने अपनी नाव पानी में डाल दी है। मुझे तो किनाराकशी में ही शान्ति प्रतीत होती है। ईश्वर जो कुछ करते हैं, अच्छा ही करते हैं।

मान और नाम

अपने मुँह से अपनी स्तुति करना दम्भ है। जब कोई आपकी तारीफ़ करे, तब आप उसमें न फँसें। अपनी कमजोरियों का ख्याल करें। तारीफ़ करनेवाले से कह दें कि भाई, मैं इस तारीफ़ के लायक नहीं हूँ, अपनी कमजोरियों को मैं ही जानता हूँ।

धर्म पर चलोगे तो कल्याण होगा। नाम को मरोगे तो कुछ नहीं बनेगा। नीच हृदय के लोग नाम को मरते हैं, परन्तु सज्जन लोग धर्म पर जान देते हैं।

नाम की इच्छा महा दुखदायी है। जब कोई प्रशंसा करे, तो उसमें मस्त न हो जाओ, बल्कि सचेत होकर यह सोचो कि वह कोई मतलब निकालने के लिए ही तो ऐसा नहीं कर रहा है ? मोह में पड़कर कष्ट बढ़ाना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।

माता-पिता के प्रति साधक का कर्तव्य

तुम्हारी नीयत माता-पिता को दुःख देने की नहीं होनी चाहिए। फिर भी यदि वे दुःखी होते हैं, तो यह उनका भोग है। हाँ, यदि तुम कुकर्म में प्रवृत्त होते, तो सारे पाप के भागी तुम्हीं होते। यदि तुम पुण्य कार्य में लगते हो और वे इससे दुःखी होते हैं, तो इसमें तुम निर्दोष हो।

यदि तुम विषय-तृप्ति के लिए माता-पिता से अलग हुए होते तो पाप था, परन्तु जब तुम्हारा लक्ष्य ईश्वर का भजन है, तो जो भी उसमें रुकावट

डालते हैं, वे तुम्हारे वास्तविक शत्रु हैं। उनको छोड़ना पाप नहीं है। तुलसीदासजी ने भी विनय पत्रिका में कहा है :

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन, भये मुद मंगलकारी॥
नाते नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अन्जन कहाँ आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
'तुलसी' सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्राण ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥

विद्यार्थी क्या करें ?

विद्यार्थियों को खर्च कम करना चाहिए। उनके अधिक खर्च के कारण उनके पिता छल-कपट करके अधिक रुपया कमाने की चिन्ता में रहते हैं। वे भी इस पाप के भागी होते हैं। सादगी से जीवन व्यतीत करने में बहुत लाभ है।

विद्यार्थियों को बहुत मीठा तथा चटपटा भोजन नहीं करना चाहिए। ऊटपटाँग खाने से मन, बुद्धि पर बुरा असर पड़ता है। बुद्धि मलिन होने से चित्त बिगड़ जाता है, फिर कुसंस्कार दबा लेते हैं। इसलिए सात्विक और नियमित आहार करना बहुत जरूरी है।

माता-पिता से लड़ाई-झगड़ा करना अनुचित है। माता-पिता की सेवा करना सन्तान का श्रेयष्कर धर्म है। इससे उन्हें उनका आशीर्वाद मिलता है, जो बड़ा कल्याणकारी है। यदि विवाह में रुचि न हो तो बन्धन में नहीं पड़ना चाहिए। सब प्रकार के विघ्नों को सहन करते हुए माता-पिता के आगे अपना निश्चय भली-भाँति प्रकट कर देना चाहिए। जैसे बने वैसे उन्हें समझा देना चाहिए। यदि दृढ़ रहोगे, तो वे भी जान जायेंगे। वे विवाह के लिए फिर तुमसे बहुत आग्रह नहीं करेंगे।

(१) यदि स्त्री पढ़ी-लिखी न हो तो उसे हिन्दी भाषा पढ़ाना चाहिए, जिससे वह धर्म-ग्रन्थों का पाठ कर सके।

(२) स्त्री से कहो : "मैं तुमसे तब प्रसन्न रहूँगा जब तुम हर प्रकार से सास-ससुर की तन-मन से सेवा करोगी।"

(३) विषय भोग में बहुत नहीं फँसना चाहिए। ब्रह्मचर्य्य के नियमों-उपनियमों का पालन करते रहना चाहिए।

(४) फसल के समय किसान अन्न जमा कर लेता है। जब कमा रहे हो, तो रहने की कुटिया भी बना लो, कुछ रुपया भी जमा करते रहो ताकि जीवन निर्विघ्न व्यतीत होता रहे।

पिता और पुत्र का सम्बन्ध

जब बच्चा छोटा होता है, तब माता-पिता का अधिकार है कि उस पर सख्ती करके भी जैसा वह समझते हैं, वैसा चलाने की कोशिश करें। मगर जब वह बालिग हो जाता है, तब यह उम्मीद की जाती है कि वह अपना नफा-नुकसान समझ सकता है; इसीलिए उसके साथ मित्र-भाव से बर्ताव करें। उसे उचित उपदेश दे दें, पर उपदेश पर अमल करना उसकी मरजी पर छोड़ दें। जिस काम में उसकी रुचि नहीं है, वह काम करने के लिए उसे यदि मजबूर किया, तो वह बेमन से करेगा, और मुमकिन है ऐसी हालत में उसे सफलता भी न मिले। इसलिए पुत्र से यह कहना तो ठीक होगा कि वह घर के पालन-पोषण का भार अपने ऊपर लेकर तुम्हें मुक्त कर दे; मगर यह कहना कि वह उस पेशे को करके तुम्हारी इच्छा पूरी करे, जिसके लिए उसका हृदय बिलकुल तैयार न हो, बेजा होगा। वह जन्मभर तुम्हें कोसता रहेगा कि उसके पिताजी ने जुल्म किया कि उससे वह काम कराया, जो उसे पसन्द न था। यह जरूरी नहीं है कि जो काम तुम कर सकते हो, वह तुम्हारे बच्चे भी कर सकें। हरएक की तबीयत निराली होती है।

अभ्यास, भजन आदि के संस्कार जब तक पहले से ही न हों तो, पीछे

कुछ नहीं हो सकता। यदि यह न हो सके, तो भी दृष्टि को बदलना चाहिए। धन और नाम के लोभ से कार्य न करें। किसी प्रकार के सांसारिक लाभ का विचार छोड़ दूसरों के हित के लक्ष्य से ही काम करें तो अच्छा है। धनी लोगों से भी धन की आशा नहीं रखनी चाहिए। यदि आशा करोगे तो निराश होने का दुःख भी भोगना पड़ेगा। इससे द्वेष बढ़ने की सम्भावना है। यदि द्वेष हो तो क्रोध के उदय से पापाचरण होने लगता है। यदि सब काम बेपरवाही से, कर्तव्य-बुद्धि से हो, तो फिर गिरने का भय नहीं रहता।

बे-नियम भी नहीं होना चाहिए। इससे दूसरों को कष्ट होता है। वे बुरा-भला कहते हैं। उनके दुःख का पाप भी लगता है। काम पर काबू भी नहीं हो सकता। अपने स्वास्थ्य के भी खराब होने का भय रहता है। घरवालों को भी दुःख होता है। हाँ, यदि दूसरों के काम में बे-नियमी हो जाय तो लाचारी; पर अपनी ओर से नियम और वक्त का पूरा विचार रखना चाहिए। कार्य कोई हो, यदि भाव शुद्ध है, तो काम बन जाता है।



तप और व्रत

: ६ :

तप के बिना कुछ नहीं हो सकता। जिसका जीवन तप का है, वही उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। तप के बिना इस मार्ग में उन्नति होना असम्भव है।

तप थोड़ा भी लाभदायक है, पर व्रत लेकर पूरा न करने से मन की आदत बिगड़ जाती है। आगे को सावधान रहना चाहिए। जब कोई व्रत लो, तो जान जाय तो जाय, पर कदम पीछे न हटे।

तप के बिना उन्नति नहीं

ईश्वर अपने भक्तों का सुधार विचित्र रीति से करते हैं। तप से रहना चाहिए। हफ्ते में कम-से-कम एक दिन निराहार या फलाहार और शक्ति के अनुसार मौन-धारण करते रहना अच्छा रहेगा। तप के बिना कुछ नहीं हो सकता। जिसका जीवन तप का है, वही उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। कई स्त्री-पुरुषों ने चान्द्रायण व्रत किया है, उनको बहुत लाभ हुआ है। तप के बिना इस मार्ग में उन्नति होना असम्भव है।

चान्द्रायण व्रत

चान्द्रायण व्रत शास्त्र में पिछले पापों को नाश करके, हृदय को शुद्ध करके, बलवान करनेवाला कहा गया है। इसलिए अपने कल्याण के लिए निश्चिन्त होकर, निर्विघ्न स्थान में रहकर व्रत करना अच्छा रहेगा। स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ पर गरमी न सताये, और सर्दी भी अधिक न सताये। बारह मास लगातार व्रत में रहने से स्थान नहीं छोड़ना चाहिए। यदि कोई चांद्रायण कभी किया, कोई कभी किया, इस तरह से बारह पूरे किये, तो जो फल लक्ष्य में है, उसके मिलने में सन्देह है। अतः खूब सोच-समझकर करना चाहिए।

(१) व्रत पूर्णमासी या अमावस्या से आरम्भ करें। ग्रास चन्द्रकला के अनुसार होना चाहिए। (२) ग्रास बड़ा नहीं होना चाहिए। स्वाभाविक तौर पर जैसा ग्रास लिया जाता है वैसा होना चाहिए। उद्देश्य अधिक खिलाने का न हो, बल्कि कष्ट सहने का हो। (३) भोजन नियत समय पर होना चाहिए। (४) जो तिथि वर्तमान हो, उसके अनुसार ग्रासों की संख्या होनी चाहिए। पञ्चाङ्ग देखकर पहले से ही मास-मास का व्यौरा लिख लेना चाहिए। (५) यह व्रत सालभर का समझना चाहिए। इसलिए इसको आरम्भ करने का संकल्प एक दफा लेकर उसे फिर तिथियों के अनुसार चलाते रहना चाहिए। (६) ध्यान रहे, यह व्रत अभ्यास के लक्ष्य से ही इस तरह रखा गया है।

व्रत में केवल जप रहेगा, या संसार में दुःखों का विचार या प्रभु से प्रार्थना, जैसी दिल में फुरे। न तो किसी पुस्तक का पढ़ना-सुनना रहेगा, न दिल बहलाव के लिए वेद मंत्रों की व्याख्या ही रहेगी। मानसिक-वाचिक-कायिक—तीनों प्रकार के पापों को नाश के लिए यह होता है। इससे तीनों को दण्ड पहुँचता है। जो दण्ड से घबड़ाता है, वह पाप का नाश नहीं कर सकता। अधूरे व्रत का अधूरा ही फल मिलता है।

व्रत और प्रायश्चित्त

व्रत करके पूर्ण न करने से जो पाप होता है, उसका प्रायश्चित्त करना जरूरी होता है। इससे यह अच्छा है कि व्रत लिया ही न जाय, या लेने से पेश्तर सोच-समझ लेना चाहिए कि लूँ या न लूँ। यदि लाभदायक समझकर इस निर्णय पर पहुँचो कि अवश्य लूँ, तो जान जाय तो जाय, लोग तंग करें तो करें, संसारी हानि हो तो हो, पर व्रत न टूटे। यदि कभी लाचार होकर व्रत टूटे, तो प्रायश्चित्त करे, वरना इसका नतीजा और भी बुरा होता है।

विचारवान अभ्यासियों ने चान्द्रायण व्रत करके अतुल्य लाभ उठा

लिया है। यदि शरीर कठिन व्रत के योग्य न हो तो तीन दिन निराहार रहो, मौन रहो, कमरे में बन्द रहो और गायत्री का जप करते रहो। शास्त्र की विधि से किया गया व्रत पूरा फलदायक होता है, केवल उपवास तो ऐसा ही है जैसे रोगी का उपवास। शास्त्र की आज्ञा है :

(१) रोगी तथा अयोग्य शरीर को निराहार कदापि नहीं रहना चाहिए।

(२) शास्त्र के आदेशानुसार जप होना चाहिए।

(३) व्रत पूर्ण होने पर शास्त्र-विधि के अनुसार हवन कराके ब्राह्मण-भोजन और दक्षिणा देनी चाहिए।

यदि तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहे, तो छुट्टियों में फलाहार करके मौन रहते हुए, जितने दिन हो सके गायत्री का जप करते रहो। प्रत्येक बार गायत्री के आगे और पीछे ऐसे मन्त्र का भी जप करते जाओ, जिसमें ईश्वर से अपने अपराधों की क्षमा के लिए प्रार्थना हो। इसे 'सम्पुट' कहते हैं। व्रत के साथ यम-नियम का पूर्ण रीति पर पालन होना चाहिए।

तप के बिना यह सब नहीं हो सकता। २१ दिन फलाहार तथा दूध पर रहकर सवा लाख गायत्री मन्त्र का जप कर लो, तो प्रायश्चित्त के तौर पर लाभ होगा। जप एक ही पवित्र स्थान पर सुबह-शाम स्वच्छ होकर करना चाहिए। जगह भीतर बाहर कहीं रखो, चाहे दोनों जगह रखो।

चालीस दिन के व्रत का अनुभव

व्रत के समय शुरू में १५ दिन तक कुछ मेरी गलती से और कुछ सेवा करनेवालों की गलती से गरमी—खुश्की ने बहुत सताया। (इन दिनों स्वामी जी क्षुधा-निवृत्ति के लिए वायु-भक्षण किया करते थे।) परन्तु जिस दिन से मुझे पता लग गया, उस दिन से भूख, गरमी तथा खुश्की भी शांत हो गयी। पहले ५ दिन तो पावभर पके हुए पानी में तोला-डेढ़ तोला घी पीता रहा। फिर इससे चित्त हट गया। तब २१ दिन तक दो वक्त कुल २० से ५० बादाम की ठंडई पीता रहा। जब इससे चित्त हट गया

तो यह भी छोड़ दिया। फिर आठ दिन जल भी छोड़ दिया, क्योंकि किसीने कहा था कि बिना जल शरीर नहीं रहता। अनुभव के लिए ऐसा किया गया था। जब जल छोड़ा तो खुश्की ने फिर से सताना शुरू किया। भूख-प्यास रुक गयी थी, पर खुश्की से कोई तकलीफ नहीं जान पड़ी। जब यह देख लिया कि शरीर को रहना ही है, तब फिर जल पीना शुरू किया।

व्रत के आरम्भ होते ही शरीर कृश होने लगा था, बल को भी घटना था। जब निर्जल रहा था, उस वक्त त्वचा के ऊपर सफेद छिलका जमा हो गया था और त्वचा बिलकुल हड्डी से चिपक गयी थी। मांसपेशी से त्वचा का कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता था। कनपटी के गढ़ों में कम-से-कम डेढ़ तोला पानी भर जा सकता था। नाक और चेहरे पर रौनक रहती थी। मस्तक की कांति को देखकर लोग हैरान रह जाते थे। वरना बाकी शरीर को देखकर यही ख्याल होता था कि शरीर नहीं रहेगा। इन सबके होते हुए दिल नहीं घबराया। चित्त प्रसन्न रहता था। उत्साह नहीं घटा, और व्रत कायम रखने का जोश बना रहा।

खुश्की का हाल यह था कि अगर शरीर में मालिश की जाय, तो झट सूख जाता था। यदि पानी मुँह में रखा जाता तो ओठ, मसूड़े, तालू और जीभ सब पानी सोख लेते थे। गले के नीचे तक एक बूँद भी न जाती थी। ऐसी अवस्था में ही यह भी स्पष्ट अनुभव में आया कि प्राण ही सब कुछ खाता है। उपनिषद् का रहस्य शरीर सूक्ष्म होने पर ही समझ में आता है। पानी जाते ही जैसे लूट मच जाती है। सभी स्थानों का प्राण पानी को अपनी ओर खींचता है। प्राण ही सर्वभक्षी है। यह शरीर एक मुर्दार है, जो अलग पड़ा हुआ प्रतीत होता है। इसमें कई कोठरियाँ हैं। जब एक कोठरी में काम होता है, तो प्राण वहाँ का सम्वाद दूसरी कोठरी में ले जाता है। सुख-दुःख भी प्राण का ही खेल देख पड़ता है। शास्त्रकार भी ठीक ही कहते हैं कि इन्द्रियों आदि से भी सूक्ष्म भोक्ता प्राण है।

व्रत के १५ दिन बाद हालत ऐसी हो गयी थी कि खाने-पीने के

संस्कार बिलकुल भूल गये थे। शरीर मानो भूला-सा रहता था। निर्जल अवस्था में उसे इतना भूल गया था कि शरीर के एक अंग का दूसरे अंग से कोई सम्बन्ध ख्याल में भी नहीं आता था। केवल द्रष्टापने की हालत रहती थी। संसार की वासनाओं से चित्त बिलकुल मुक्त था। स्त्रियों से, और बहुत से पुरुषों से घृणा हो गयी थी। यह भी ख्याल आता था कि यदि शरीर छूट जाय, तो कोई हर्ज नहीं है। यह मुर्दा-सा तो है। यह भी विचार हुआ कि यदि मृत्यु से पहले पता चल जाय, तो ऐसा ही निराहार रहें जिससे सुख से शरीर छूटे।

चालीस दिन का व्रत था। ५ दिन पके हुए पानी में तोला-डेढ़ तोला घी लिया। २१ दिन २० से ५० बादाम की ठंडाई। २ दिन केवल जल। ८ दिन निर्जल रहा। फिर ४ दिन जल लिया। ४० दिन के बाद पानी में मिलाकर दूध लिया। डेढ़ पाव सारे दिन में पीता था। फिर मुनक्का और खजूर का सहारा लिया। अन्न को तो चित्त ही नहीं करता था। कई दिन अन्न चबाता रहा, निगलता नहीं था। मुँह में से ही प्राण नाड़ियों द्वारा रस खींच लेता था। प्राण ही अन्न खाता हुआ प्रतीत होता था।

सर्दी सहने का तप

पहले मैं कमरा बन्द करके कमीज और वास्कट पहने हुए ऊपर से एक चादर, दो लोइयाँ लेकर सोता था, तब भी सर्दी कुछ सताती थी। पहले तो यह ख्याल आया कि धीरे-धीरे कपड़े कम करना शुरू करूँ; परन्तु इसमें अधिक विलम्ब हो जाने के कारण यह ठाना कि पहले सब कपड़े छोड़कर देखूँ। निमोनिया का ख्याल भी आया, परन्तु ईश्वर के भरोसे घबराया नहीं। इसलिए पहली रात को सोते समय बिलकुल नग्न हो गया और बिना कुछ ओढ़े सोता रहा। थोड़ी-सी नींद आयी, फिर शरीर काँपने लगा। तब मैं वैसा ही नग्न बैठ गया और शरीर के काँपने को देखता रहा। जब ध्यान में हो जाऊँ, तब बन्द हो जाय, जब छोड़ दूँ, तब सारा शरीर जोर से काँपने लगे। यह हालत सुबह तक रही। जब बाहर निकलने का समय हुआ, तब कपड़े पहन लिये।

दूसरे दिन फिर वैसे ही सोया और रात वैसे ही गुजारी। ऐसे ही तीसरा दिन गुजरा। चौथे दिन फिर वैसे ही सो गया, परन्तु जब जागा तो शरीर काँप रहा था। उठकर बैठ गया और चादर ओढ़ ली। तब कुछ चैन मिला और कम्पन बन्द हो गया। सुबह बाहर निकलने के समय कपड़े पहन लिये। इसी तरह से कई दिन काटे। अब सर्दी अधिक होती जा रही थी। परन्तु १२-१३ दिन ऐसे ही बीत गये। फिर चादर ओढ़ कर सोने लगा, तो काफी गर्मी मालूम होने लगी। सर्दी बढ़ गयी, पर एक चादर और हलकी-सी लोई के सहारे बहुत दिन गुजारे। दूसरी लोई लेने का संस्कार भी न फुरा। 

गृहस्थी में रहता हुआ योग के लक्ष्य तक पहुँचना करीब-करीब असम्भव है। जिनके पूर्व जन्मों के जबरदस्त संस्कार हों और नाम-मात्र की कमी हो, उनके लिए सम्भव है कुछ कठिनाई न पड़े। यदि स्त्री सहयोगी हो और मित्रभाव से व्यवहार करे, तो विशेष बन्धन न होगा और बहुत-कुछ साधन कर सकते हैं।

'गुप्ता सो सिद्धः'। भजन की चोरी ही भगवान को प्यारी है। मनभर करो तो रत्तीभर जतलाना चाहिए, वह भी तब, जब कोई पूछ बैठे, नहीं तो चुप ही भला है। यदि ऐसा न होगा, तो अभिमान झट आ दबा लेगा। और जहाँ अहंकार आ गया, वहाँ ईश्वर से विमुख होकर संसार की ओर रुचि होने लगती है।

मन को काबू में रखना परम धर्म है। यही भजन का फल है।

अभ्यास-काल के नियम

(१) यदि सुबह भी शौच से निवृत्त होकर भजन किया जाय, तो अच्छा रहेगा।

(२) आसनों के पीछे शीघ्र स्वाध्याय नहीं होना चाहिए; इतनी देर अवश्य ठहरना चाहिए कि शरीर असली हालत में आ जाय। सम्भव है, आध या पौन घण्टे में ठीक हो जाय।

(३) भजन के पीछे कम-से-कम एक या डेढ़ घण्टा कुछ पठन-पाठन नहीं होना चाहिए। लेटना भी एक घड़ी पीछे होना चाहिए।

(४) शाम को जब टहल कर आयें, तब पौन घण्टा ठहरकर भजन के लिए बैठें।

(५) सुबह हो या शाम, भजन का समय वह उत्तम होगा, जब बायाँ स्वर पूर्ण तेजी में हो या दोनों स्वर बराबर हों।

(६) शरीर को इतना भाड़ा देना चाहिए कि काम देने में कमजोरी न हो।

(७) अभ्यास के बाद शीघ्र दूध नहीं पीना चाहिए। एक घण्टा ठहर सकें, तो अच्छा है।

(८) कफ नष्ट करने के लिए धौती-कर्म अथवा खूब गर्म पानी पीकर वमन कर डालना और पीछे से हरड़ सौंठ के साथ खा लेना अच्छा रहता है।

(९) लोगों से जरूरत से अधिक व्यावहारिक वार्तालाप न करें और न बहुत मिलें-जुलें। जहाँ तक हो दिमागी ताकत का संग्रह करें।

(१०) यदि समय न हो, तो शाम का खाना बिलकुल छोड़ दें। शाम को भी समय अधिक दें और दूध की मात्रा बढ़ा दें। पन्द्रह-बीस बादाम और दस-पंद्रह मुनक्के खाकर ऊपर से घी तथा बादाम-रोगन डाला हुआ दूध पी लें। दलिया का सेवन भी अच्छा रहता है।

(११) यदि शौच खुलकर न आता हो, तो आध सेर या तीन पाव पानी, जो साधारण गरम हो, बस्ती से चढ़ाकर टट्टी हो लिया करें। हफ्ते या दस दिन में एक दफा ढाई-तीन सेर पानी चढ़ाकर बस्ती कर लिया करें। पानी की बस्ती बहुत नहीं करनी चाहिए।

(१२) बादाम का सेवन यदि जरूरत न हो, तो बन्द रखें। भोजन छोड़ देने से शरीर कमजोर हो जाता है। शरीर को ठीक रखना जरूरी है। भोजन ठीक न करने से खुश्की बढ़ जाती है। बवासीर आदि कोई-न-कोई बीमारी होना सम्भव है।

(१३) शरीर की हालत ठीक करने में पूरा ध्यान रखना चाहिए। शरीर ठीक होने पर अभ्यास में सुखपूर्वक लगे रह सकते हैं और साधना भी शीघ्र परिपक्व हो जाती है। शारीरिक कमजोरी दूर करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए। रुग्णावस्था में अभ्यास पर बल देने से शरीर

को हानि होने की सम्भावना है। ऐसी अवस्था में अभ्यास पर अधिक जोर न दें। शरीर की हालत देखकर काम करें। अभ्यास भी शरीर को देखकर ही करना चाहिए। अधिक दबाव डालने से शारीरिक दोष बढ़ जाने की सम्भावना है। सफाई आदि सावन-भादों में नित्य करना चाहिए, या शरीर को देखकर जैसा उचित समझें। कार्तिक के बाद हफ्ते में दो बार ही काफी है।

(१४) चलने फिरने तथा अन्य परिश्रम से बचना चाहिए। बहुत लम्बा सफर करने से खुश्की अधिक हो जाती है, जिससे दस्तों की शिकायत भी हो सकती है।

अभ्यासी के लिए भोजन

भोजन का उत्तम प्रबन्ध होने से और ठंढे स्थान में रहने से दिक्कत नहीं होती और भजन होता रहता है। गरम देश में वैसे ही गरमी अधिक मालूम होती है, और फिर अभ्यासी के लिए तो विशेष रूप से। बादाम के साथ कुछ इलायची, सौंफ, कासनी, कबाब-चीनी डालकर पीस-छान कर, एक या दो दफे जिस समय अनुकूल समझें, पी लिया करें। दूध की अपेक्षा यह खुश्की को अधिक दूर करेगा। भोजन बहुत कम करें, या बिलकुल न करें। जैसा आपका शरीर अनुकूल समझे, वैसा करें। यदि ऐसा ख्याल न रखेंगे, तो सम्भव है कि आपको कोई बीमारी हो जाय। फिर रोगी रहने से और भी दुखी रहेंगे।

गर्मी में अभ्यास के नियम

मौसम को देखकर अभ्यास करना चाहिए। अगर गर्मी अधिक मालूम होती हो, तो सुबह को अभ्यास करने के बाद कुछ बादाम डालकर ठंडाई बनवाकर पी लें। बादाम ठंडे पानी से भिगो दिये जायँ और चखकर मीठे डाले जायँ, कड़वे नहीं। अगर इतने पर भी खुश्की तंग करे, तो अभ्यास कम करें। अभ्यास करने के वक्त बायाँ स्वर चलता हो, तो अभ्यास शुरू करना अच्छा रहेगा। अगर बायाँ स्वर न चलता हो, तो

किसी तरकीब से बायाँ स्वर कर लिया जाय। इसके लिए सबसे सुगम तरकीब यह है कि दाहिना पासा नीचे और बायाँ पासा ऊपर करके लेट जाने से थोड़ी देर में बायाँ स्वर तेज हो जायगा। इसके बाद आसन में बैठकर अभ्यास शुरू करें। बाद में फिर दाहिना स्वर तेज हो जाय, तो कुछ मुजायिका नहीं। जब गर्मी बढ़ती जाय, तो अभ्यास को घटाना-बढ़ाना अपने अनुभव के अनुसार ही ठीक हो सकता है कि जिससे कोई शारीरिक गड़बड़ी न हो।

आगे जब कभी शरीर में गड़बड़ी दिखाई पड़े, तो सफाई करके जो दवा उचित हो फौरन कर दें। अभ्यास भी कम कर दें। जब शरीर ठीक हो जाय, तब जितना उचित समझें, करें। शारीरिक गड़बड़ी की हालत में उस मौके के अनुसार भोजन करें। पीछे जैसा नियम है, वैसा करें। गर्मी के दिनों में अभ्यास कम करना चाहिए। शाम को यदि गर्मी प्रतीत होती हो, तो केवल हाजिरी देकर बन्द कर दें। जितना आराम से कर सकें, उतना करें, जिससे शरीर में कोई गड़बड़ी न हो, वरना गाड़ी रुक जायेगी। पीछे दुरुस्त होना कठिन हो जायगा।

मिट्टी के एक नये बर्त्तन में तीन छटाँक ठण्डे पानी में आठ-दस मुनक्के शाम को भिगो दें। जब अभ्यास से उठें, तब ये मुनक्के खाकर उन्हींका पानी पी लें। इससे दिल को ताकत मिलेगी और प्यास भी बुझेगी। अभ्यास के बाद शरीर को ठीक करके ही पानी पीना चाहिए।

अभ्यास और ऋतु

बसन्त ऋतु में तथा सर्दी में अभ्यास करना अधिक अच्छा होता है। इन दोनों मौसमों में अभ्यास में अधिक जोर देने का मौका रहता है। गर्मी में खुश्की बढ़ने का भय रहता है तथा जलन होने लगती है। वर्षा काल में अधिक जोर देने से दोषों के बढ़ने से रोग-ग्रस्त होने का भय रहता है। गर्मी अधिक होने से हानि पहुँचने की सम्भावना होती है।

हाँ, यदि अग्नि सेवन न करनी पड़े, तो किसी ठण्डे स्थान में भोजन आदि का उत्तम प्रबन्ध करके विशेष अभ्यास कर सकते हैं।

आसन और स्वास्थ्य

जो आसन जैसे हों, करते जायँ। वे धीरे-धीरे आप ही ठीक हो जायेंगे। आसन जल्द दृढ़ नहीं होगा। आप पहले इस बात की कोशिश करें कि आपका शरीर बिलकुल ठीक हो जाय और कब्ज वगैरह की शिकायत जाती रहे। इसके लिए खान-पान की सावधानी के अतिरिक्त नियम से हर काम को ठीक समय पर करने की कोशिश जरूर करें और सुबह-शाम कुछ टहलते रहें।

आसन को ठीक रखने के लिए आप स्वयं ऐसी कोशिश करें कि उस अवस्था के आने से पहले ही सावधान रहें और शरीर को सीधा रखने की कोशिश करें। शरीर ढीला रहे, पर गिरने न पाये। यदि आपको ठीक जाँच आयेगी तो शरीर का ख्याल बिलकुल न रहने पर भी, वह वैसा ही रहेगा। यदि इसकी जाँच न आये और शरीर गिरता ही जाय, तो गोरक्षासन का अभ्यास करें। उसमें शरीर का सीधा रखना सुगम होगा। सम्भव है, पहले-पहल आपको दर्द होने लगे, परन्तु थोड़े ही दिन में देर तक बैठने का अभ्यास हो जायेगा। यदि इसमें भी सफलता होती न दीखे, तो पद्मासन का अभ्यास करें। यदि इसमें भी कठिनाई प्रतीत हो, तो शवासन तो बना बनाया है ही।

महिलाओं के लिए नियम

(१) गर्भवती स्त्री को बहुत अभ्यास नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे एक तो शरीर को नुकसान होता है, दूसरे, गर्भ को हानि पहुँचती है। तीसरी बात यह है कि बहुत अभ्यास करने से शरीर कमजोर होता जायगा, जिससे प्रसव के समय, सम्भव है, कष्ट अधिक हो। शरीर और गर्भ की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। यदि गर्भ की रक्षा की परवाह

न की गयी, तो पाप लगेगा और शरीर की रक्षा न की गयी, तो पीछे अभ्यास बन्द हो जायेगा।

(२) रजस्वला को भी अभ्यास कम करना चाहिए, नहीं तो रोग होने का भय रहता है।

(३) साधन में लगने से पहले स्त्रियों को इन नियमों का पालन करना चाहिए :

१. पति की सेवा करे, उसे संतुष्ट रखे और उसकी आज्ञा लेकर भजन में प्रवृत्त हो।

२. स्वाद को जीते, सात्विक आहार करे।

३. व्यवहार को सरल और निष्कपट बनाये।

४. मोटा वस्त्र पहने, शृंगार धीरे-धीरे छोड़ दे।

५. विधवा अपने बाल कटा डाले। शृंगार छोड़कर संयमशील बने।

६. चक्की पीसे और चरखा काते।

७. आवारा की तरह घूमना, एक दूसरे की निन्दा करना और झगड़ा करना छोड़ दे।

सद्गुरु

सद्गुरु को किसीको उपदेश करने की गरज नहीं होती। सच्चे सद्गुरु केवल शिष्य के कल्याणार्थ उपदेश देते हैं।

ऐसों का नाराज हो जाना अपने में बहुत मलिनता सिद्ध करता है। उस मलिनता को धो डालने ही से वे सन्तुष्ट हो सकते हैं। उसीमें शिष्य का कल्याण है। अतः वे कृपा करके जो उपाय बतलायें, उस पर तन-मन से चलना चाहिए।

वह शिष्य ही क्या, जो गुरु को सन्तुष्ट न रखे ? यदि इतनी हिम्मत नहीं है, तो वह कुछ नहीं कर सकता। अपने अवगुणों को हटाना चाहिए।

उपदेश पर पूरी शक्ति के अनुसार अमल करने से ही तुम गुरु को उत्साहित रख सकते हो। इसके लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है।

अमरीकावाले काफी रुपया ले लेते हैं, तब जबानी या पत्र द्वारा उपदेश देते हैं। अंग्रेजी पढ़े बाबू लोग उपदेश के लिए काफी खर्च करते हैं, तब कुछ लाभ उठाते हैं। परन्तु भारत भूमिवाले बिना फीस जो उपदेश देते हैं, उनसे कोई विचारवान, शुद्ध हृदयवाला ही फायदा उठा सकता है। पैसों से खरीदा हुआ उपदेश उपदेश, नहीं हो सकता। उपदेश का मोल नहीं हो सकता। सम्भव है लाख रुपया देने पर भी उपदेश न मिले, और बातों-बातों में मिल जाय। इसकी फीस केवल जिज्ञासु का हृदय है, और कुछ नहीं।

गुरु सेवा में रहकर अभ्यास

(१) बसन्त ऋतु में अभ्यास में ज्यादा जोर देने का मौका रहता है। यह तभी हो सकता है, जब अभ्यास करनेवाला और करानेवाला इतने नजदीक हों कि प्रतिदिन खबर ली जा सके, वरना नुकसान पहुँचने का डर रहता है।

(२) जिस वक्त अधिक जोर देना होगा, उस वक्त अभ्यास के तरीके और भोजन तथा रहन-सहन आदि में बहुत हेरफेर होगा। ऐसे मौके पर बहुत निगरानी की जरूरत होगी, इसलिए पास ही रहना होगा।

अधिकारी की योग्यता

(१) साधक को सच्चा वैराग्य है या नहीं ? (२) जिह्वा के स्वाद से उसका चित्त हटा है कि नहीं ? (३) उसकी बात पर विश्वास करना चाहिए कि नहीं ? (४) पाप से उसे घृणा हो गयी है कि नहीं ? (५) अपने स्वास्थ्य को ठीक रख सकता है कि नहीं ? (६) तन, मन, धन या समय को किफायत से खर्च करनेवाला है कि नहीं ? (७) यदि उसने कोई व्रत लिया, तो कष्ट होने पर .उसे निभायेगा कि नहीं ? (८) कोई काम दिखलावे के साथ तो नहीं करता ? (९) अपने जीवन तथा रहने आदि का प्रबन्ध दूसरों पर तो नहीं डालता ? (१०) इरादे का पक्का है न ?

उच्च अधिकारी के पाँच लक्षण

(१) जिह्वा के स्वाद के ख्याल से कोई पदार्थ न खाये, बल्कि शरीर-रक्षा के लिए उपयोगी समझकर खाये। ऐसी चीजें खानी चाहिए जो शरीर और मन दोनों को लाभकारी हों और भजन में विघ्न न डालें। स्वाद से बिल्कुल बेपरवाह होना चाहिए। (२) झूठ से सख्त घृणा हो। (३) क्रोध पर पूरा काबू हो। (४) काम के वश कभी न हो। (५) नाम के ख्याल से कोई काम न करे, बल्कि जो करे उसे कर्तव्य समझ कर करे। निन्दा या स्तुति की परवाह न करे।

ये पाँच बातें स्वाभाविक हो जानी चाहिए।

अधिकारी कैसे बनें ?

अधिकारी बनने के लिए आपको चाहिए कि आप सच्चाई से इन नियमों पर चलें—(१) अग्निहोत्र नित्य करें। (२) क्रोध को रोकें। क्रोध की हालत में कभी कोई वचन ही न बोलें। (३) शान्त हो जाने पर बोलें। (४) अखण्ड ब्रह्मचर्य रखें। परायी स्त्री में मातृ-भावना रखें और सामने होने पर इसी भाव से उसे मन में नमस्कार करें। (५) झूठ से परहेज रखें। (६) जो प्रतिज्ञा करें, उसे अवश्य पूरी करें।

नहा-धोकर अग्निहोत्र करके, ईश्वर से प्रार्थना करके ऊपर लिखी हुई बातों पर चलने के लिए दृढ़ प्रण करें, और परमात्मा से उन पर चलने के लिए बल और बुद्धि की याचना करें। यदि कभी इन नियमों पर ध्यान न रहे, तो मन को दण्ड दें। उचित समझें तो निराहार का दण्ड दें या जैसा उचित समझें करें।

अभ्यासी के लिए स्त्री विष के समान है। यदि तुम विष से परहेज नहीं रख सकते, तो समझ लो कि तुम्हारा योग सिद्ध होना असम्भव है।

उधर तो तुम अभ्यास का दावा करते हो और इधर स्त्री का संग भी करते हो। काम तो तुम शूरवीरता का करना चाहते हो, और आचार गीदड़ों का-सा रखते हो। सँभल जाओ, नहीं तो मारे जाओगे।

अभ्यास के अधिकारी कम

मेरा तजुर्बा है कि आजकल समाज की परिस्थिति ऐसी है कि शायद कोई बिरला ही अभ्यास का अधिकारी हो। मैंने कई बार लोगों से कहा है कि कई व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि यदि आप अभ्यास बतायें, तो हम व्यवहार शुद्ध करें, नहीं तो क्यों करें। उनको बता देना पड़ा कि वे पाप से तो बचेंगे, परन्तु वे अधिकारी नहीं हैं। ऐसी अवस्था को देखकर चित्त उत्साहित नहीं होता। मेरा यह विश्वास है कि जो अधिकारी हैं, उनको परमात्मदेव लाभ पहुँचा ही देते हैं, चाहे जिस तरह से हो। इसलिए प्रत्येक जीव को उनकी कृपा पर विश्वास रखते हुए अधिकारी बनने की कोशिश करते रहना चाहिए।

जप की विधि तथा स्थान

मानसिक जप सबसे श्रेष्ठ है। दूसरे दर्जे में धीरे-धीरे का जप आता है। जप तीन दफा कर सको तो और अच्छा है, पर वह शुद्धता के साथ होना चाहिए। गर्मी के दिनों में शाम को या किसी समय भीतर न बैठ सको, तो बाहर बैठकर भी जप कर सकते हो।

माला से लाभ

शुरू में माला के ही द्वारा भजन करते रहो। जब कभी माला फेरते-फेरते माला फेरने को जी न चाहे, तो माला बन्द करके बिना माला के मन से भजन करते रहो। जब कुछ देर बाद संकल्प आने लगें और बन्द न हों, तब फिर माला फेरने लगो।

जब कभी मन करे, तो माला से गायत्री का जप भी कर लिया करो। कभी-कभी ध्यान में या मानसिक जप में मन नहीं लगता, तब माला से, हठ से तादाद निश्चित करके जप में लगना अच्छा रहता है। जब तुम आन्तरिक साधन करते हो, तो पूजा आदि की जरूरत नहीं। पूजा से जप और जप से ध्यान श्रेष्ठ है। यदि पूजा को छोड़ दो, तो कोई हर्ज नहीं। यदि चित्त बहुत चाहे, तो थोड़ी-सी कर लिया करो।

दीर्घ काल तक साधन

जैसा कुछ करते हो, यथाशक्ति करते जाओ। कभी-कभी लगातार दीर्घकाल तक पहली ही औषध सेवन करते-करते दूसरी औषधियों का लाभ हो जाता है। यह सब प्रभु की माया है। उनके निकट सब कुछ आसान है। मनुष्य अल्पज्ञ है; उसको जो कुछ पता है वह तुच्छ है, और अधूरा है। परन्तु जब ईश्वर पर भार डालकर उनके भरोसे कुछ किया जाता है, तब वे आप ही सफलता प्रदान करते हैं। इसलिए संतोष रखते हुए साधन करते चलो।

भजन-विधि

लेटे-लेटे भजन करने में कुछ हर्ज नहीं है। परन्तु यदि कभी नींद आ जाय, तो घबराना नहीं चाहिए। जब नींद खुल जाय और समय हो, तो फिर लेटे-लेटे ध्यान करो।

जब प्राण की गति विशेष रूप से ऊपर को हो, तब जरूर ठहर जायँ। अवस्था शीघ्र ठीक हो जायगी।

योगाभ्यास के अनुभव

अभ्यास में जो-जो तमाशे देखे, उन्हें लिखता हूँ :

थोड़े दिनों के साधन के बाद ही मुझे विचित्र-विचित्र सूरतें दीखने लगीं थीं। वे प्रायः मुसकराती हुई होती थीं। अक्सर ऐसा होता था कि जो सूरतें पुरुषों की होती थीं, वे दूर ही रहती थीं, मगर जो स्त्रियों की होती थीं, वे मुसकराती हुई मुँह के नजदीक आ जाती थीं। तब मैं उन्हें विघ्नकारी समझकर, उनमें दोष-दृष्टि देखकर तबीयत को हटाने की कोशिश करता था और त्रिकुटि में जो रोशनी होती थी, उसके पीछे, कभी रोशनी के बीच वे गायब हो जाती थीं। दृष्टि मेरी त्रिकुटि में ही रहती थी।

पश्चात् मैंने इन तमाशों को देखना छोड़ दिया, क्योंकि एक महात्मा

जो यहाँ हैं, उन्होंने कहा कि ये माया की स्त्रियाँ हैं; इनकी तरफ से दृष्टि हटाये रखना चाहिए। तब मैंने अपनी दृष्टि दूसरी तरफ फेर ली।

मेरे हृदय में गाँठ-सी बँधती हुई मालूम होती थी और कई बार कमर पर ठोकर अथवा धक्का लगा करता था। सोचने पर मालूम हुआ कि यह प्राणों का धक्का है और वह प्राणों की गाँठ है। तब मैंने सोचा कि अब चक्रों का पता लेना चाहिए। गुदा-चक्र पर तो प्राणों का इकट्ठा होना मुझे नहीं मालूम हुआ, मगर कमर पर धक्के जरूर लगते रहे और वहाँ रोशनी नजर आती थी। फिर वहाँ से आगे उपस्थ-इन्द्रिय की जड़ के ऊपर प्राणों का इकट्ठा होना मालूम हुआ और वहाँ पर रोशनी भी खूब हुई। वहाँ से चलकर नाभि-स्थान आया। यहाँ पर भी खूब रोशनी दिखाई पड़ी और प्राण इकट्ठा होते मालूम हुए। यहाँ पर थोड़ा-थोड़ा दर्द भी मालूम हुआ। यहाँ से फिर प्राण ऊपर चलते नजर आये। रोशनी भी आगे-आगे रास्ता दिखलाती हुई मालूम होती थी।

यहाँ से फिर हृदय-चक्र पर प्राण इकट्ठा हुए, दर्द भी ज्यादा हुआ और रोशनी भी बहुत हो गयी। मगर यह दर्द भी जल्द हट गया। प्राण हृदय की नाड़ियों से होकर कंठ की तरफ चलने लगा। मगर अब मेरा गला घुटने लगा। दम लेने में तकलीफ मालूम होती थी। जी भी मचलाता था। मुँह से पानी बहुत निकलता था। खाने को जी नहीं चाहता था। इसलिए बेहतर यही समझा गया कि आगे कदम रखना चाहिए। इतना सोचना था कि कान के पीछे से दर्द होना शुरू हुआ। मगर यहाँ भी यही ख्याल था कि **'हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम नाम।'** इसलिए प्राण जगह छोड़ने लगे और कानों के सुराखों में पहुँच गये। तब ऐसा मालूम होता था कि कानों में ठेंठी दे दी गयी है और बाहर का शब्द कुछ भी नहीं सुनाई देता था। खैर, यहाँ तो उपदेश के अनुसार प्राणों की उपासना ही करता रहा। वह जहाँ चाहे वहाँ ठहरें, जहाँ चाहे वहाँ जायँ। कुछ देर बाद कनपटी पर पहुँचे, तो मालूम हुआ कि सिर को किसी शिकंजे में डाल दिया। मेरी कनपटी को ऐसा कभी किसी

ने नहीं दबाया था। पर यह समझकर कि यह तकलीफ भी पहले की तरह दूर हो जायगी सुरत को त्रिकुटि पर चलाया, तब प्राणों ने अपना रास्ता निकाल लिया और त्रिकुटि पर ठोकर मारना शुरू किया। अब ऐसा होने लगा कि जैसे मेंडा पीछे हट-हटकर ठोकर मारता है। इसी तरह प्राण त्रिकुटि पर ठोकर मारते और जरा नीचे उतरते, फिर ठोकर मारते और फिर नीचे उतरते। यह तकलीफ भी कुछ कम न थी। प्राण जिस वक्त भौंहों के बीच में नासिका की जड़ पर इकट्ठा हो जाते, तो बहुत ही बुरा मालूम होता था।

यहाँ तक तो प्राण दो-चार रोज में ही पहुँच गये। मगर अब आगे कोई रास्ता नहीं नजर आया। मालूम होता था कि अब आगे शायद ही रास्ता खुले। मगर हिम्मत नहीं हारी, क्योंकि सुना था कि सुरत के साथ प्राण चलते हैं। लेकिन यह तकलीफ नागवार मालूम होती थी और यही तबीयत करती थी कि किसी तरह इस कष्ट से छुटकारा मिले।

दो-एक रोज बाद यह हालत हो गयी कि जब अभ्यास करना शुरू करूँ, तो प्राण फौरन त्रिकुटि पर ठोकर मारने लगें। तब मैंने सुरत को ऊपर रखना शुरू किया, और दो-तीन रोज तक यों ही टक्कर मारता रहा और कुछ पता न लगा। फिर प्राण माथे की तरफ जोर मारने लगे, तब कुछ धीरज बँधा। फिर माथे से ऊपर माथा और बोदी के बीच में जो स्थान है, उस स्थान पर प्राण पहुँचने लगे और वहाँ पर धक्का मारना शुरू किया। फिर मैंने बोदी की तरफ सुरत चलायी; क्योंकि जब मैं पढ़ता था, तो एक सन्यासी ने यह बतलाया था कि यह बोदी वह स्थान है, जहाँ पर योगी अपने प्राणों को ले जाते हैं। जो हो, यहाँ तो उपदेश के मुताबिक तमाशा ही देखना चाहता था। इसलिए सुरत को आगे चलाने में कुछ आगा-पीछा नहीं किया। सुरत का मिलना था कि प्राण साथ ही चले और बोदी के स्थान पर ठोकर जा मारी।

दो रोज तक यही सिलसिला जारी रहा। मगर अभी तक प्राण ज्यादा नहीं गये थे, मस्तक से थोड़ा ही ऊपर गये थे और बहुत-से त्रिकुटि

पर ठोकर मारते रहते थे। दो-चार रोज में दो-एक दिन की छुट्टी हो गयी! तब मैं एक दिन दो-अढ़ाई घंटे एक दम बैठा रहा और प्राण मस्तक से ऊपर चले गये। तब ऐसा मालूम होता था कि शायद खोपड़ी न रहेगी। प्राण चारों तरफ फैलते थे और ऊपर उड़ने की भी कोशिश करते थे। मगर दो-तीन दिन में यह तकलीफ कम हो गयी। फिर तो ऐसा हो गया कि पसलियाँ भी अलग-अलग चमकती दिखाई देने लगीं। जिस जगह हड्डी थी, वहाँ रोशनी ज्यादा नजर आयी। इसी तरह पिंडली पर दृष्टि देने से हड्डी के स्थान पर बहुत रोशनी नजर आयी और मांस पर बहुत कम।

एक रोज फिर नाभि-चक्र पर ध्यान दिया और देखना चाहा कि सर्पिनी नाड़ी नजर आती है या नहीं। तब उसके चक्र रोशनी में अलग-अलग दिखाई पड़े। ठीक-ठीक तो नहीं मालूम हुआ, मगर शायद चार-पाँच चक्र थे और उनका मुँह ऊपर की तरफ कुछ खुला हुआ था। उसे देखकर मुझे डर ही लगा था।

यहाँ तक तो मैं डेढ़ मास तक तमाशा देख चुका था। मैंने फिर त्रिकुटि पर दृष्टि देना शुरू किया। तकलीफ होती थी। तब कई प्रकार की वस्तुएँ तथा सूरतें फिर नजर आने लगीं। इस बार साधुओं के दर्शन ज्यादा हुए थे। वे जाड़े की जरा भी परवाह नहीं करते थे। स्त्रियाँ भी दिखाई पड़ीं। वे जबरन मुँह-से-मुँह मिलाती थीं, बड़ी कोशिश पर हटतीं थीं। कभी सूरतें दाहिनी तरफ से बायें तरफ को और कभी बायें से दाहिनी तरफ को जाती हुई नजर आती थीं। कभी नजदीक आती थीं, तो कभी दूर चली जाती थीं।

एक रोज अनुभव से मालूम हुआ कि जब दाहिना स्वर चलता है, तब दाहिनी तरफ और जब बायाँ स्वर चलता है, तब बायीं तरफ नजर आती थीं। दाहिने स्वर चलते समय दाहिनी तरफ से बायें तरफ को जाती नजर आती थीं और जब प्राण मुँह को दबाकर संकोचन करते हैं, तब सूरतें नजदीक और जब प्राण बाहर खिंचते हैं, तब सूरतें दूर चली जाती हैं।

मुझे त्रिकुटि पर प्राण रखने में तकलीफ होती थी, इसलिए मैंने फिर ऊपर ही का सिलसिला जारी कर दिया। प्राण अच्छी तरह से त्रिकुटि पर रुकते भी नहीं थे, कुछ-न-कुछ ऊपर जरूर चले जाते थे। हाँ, रोशनी का जोर तभी तक रहा, जब तक प्राण त्रिकुटि तक रहे थे। कभी-कभी आकाश नजर आता था और तारे भी नजर आते थे, मगर फौरन उड़ जाते थे। जब प्राण कुछ-कुछ ऊपर चलने लगे, तो अँधेरी गुफा सी नजर आयी और फिर वह गुफा बढ़ते-बढ़ते आकाशवत हो गयी। अब बहुत-से प्राण अन्दर चले जाते हैं और सुनसान मैदान नजर आता है। रोशनी चन्द्रमा की-सी रहती है, कभी-कभी तेज हो जाती है। मगर अब आनन्द आता है। अभ्यास के समय दिमाग और आँखों को तरावट मालूम होती है। नीचे दृष्टि देने से प्राण उतर आते हैं, मगर सब नहीं आते हैं। थोड़ा-थोड़ा करके ऊपर चढ़ते हैं।

अभ्यास के समय जो आवाज आती है, वह ठीक है। परन्तु कभी-कभी अपना संस्कार ही अन्दर गूँजकर आवाज पैदा कर देता है।

अभ्यासियों को विश्व-दर्शन होता है। साधक को उदासीन वृत्ति के साथ द्रष्टा बने रहना चाहिए।

जहाँ तक मेरा अनुभव है, यह बात असम्भव है कि प्राण ब्रह्माण्ड में जाय और खुश्की न हो, अलबत्ता भोजन का उत्तम प्रबन्ध होने से और ठण्डे स्थान में रहने से दिक्कत नहीं होती और भजन होता रहता है। जब प्राण ब्रह्माण्ड में विशेष रूप से पहुँचता है, तो खुश्की बहुत होती है; परन्तु घी, दूध, बादाम तथा बादाम-रौगन आदि ऐसे पदार्थों के सेवन से शान्ति रहती है।

योग-निद्रा

जब प्राण ब्रह्माण्ड में चला जाता है और उसके पीछे गफलत-सी होती है, तो वह तामसी निद्रा नहीं है। उसे सात्विक योग-निद्रा ही समझना चाहिए। परन्तु यदि आप ऐसी अवस्था में ठहर सकें, जिसमें न पूरी

गफलत ही है, न होश ही; बल्कि जो अवस्था सोने के पहले और जागने के पीछे होती है, उसमें रह सकें तो उत्तम है।

नींद दो प्रकार की होती है, एक तो तामसी नींद जो कि सबको आती है, दूसरी सात्विकी नींद जो केवल भजन करनेवालों को आती है। तामसी नींद के पहले मन और शरीर दोनों सुस्त होते हैं, और शरीर भारी होता है, प्राण नीचे को होते हैं, जैसा कि सब लोग अनुभव करते हैं। सात्विकी नींद के पहले शरीर तथा मन दोनों हलके होते हैं, प्राण ऊपर को जाते हैं, जिससे सिर भर कर भारी हो जाता है। फिर मन दब जाता है, ध्यान बन्द करके चुप हो जाता है। इसको दैवी नींद भी कहते हैं और योग-निद्रा भी कहते हैं। सात्विकी निद्रा तो बड़े भाग्य से मिलती है।

ध्यान करते-करते जो निद्रा की-सी अवस्था आती है, वह स्वाभाविक है। इसलिए जब चित्त ध्यान करने को बिलकुल न चाहे और चुप रहना चाहे, तब ध्यान पर जोर मत दो, और उसे चुप रहने दो। जब कुछ देर पीछे चलायमान हो जाय, तब फिर जप या ध्यान में लगा दो। जब फिर शान्त रहने की अवस्था आये, तब फिर ध्यान बन्द कर दो।

अक्सर अभ्यासियों को प्राण के नशे के कारण भी ऐसी अवस्था आती है। जब प्राण की तेजी होती है, तब वह अवस्था दिन-रात बहुत दिनों तक बनी रहती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा भी इसी अवस्था में बढ़ती है। अर्थात् जो स्फुरना होती है, वह पूरा होकर रहती है। स्फुरना अकस्मात् होती है।

पुरुषार्थ और ईश्वर-अनुग्रह

पुरुष जो कुछ बनता है, वह अपनी कोशिश तथा पुण्य से बनता है। इसलिए आपको अपने पुरुषार्थ तथा ईश्वर-अनुग्रह पर पूरा भरोसा रखना चाहिए। प्रत्येक पुरुष का पुण्य तथा पुरुषार्थ कुछ विलक्षणता रखता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के शरीर तथा अन्तःकरण में विलक्षणता होती है। हिम्मत कभी भी नहीं हारनी चाहिए।

अभ्यास में उन्नति न होने का सबसे बड़ा कारण है—भरपूर वैराग्य न होना अथवा दिल में भगवान् के लिए प्रेम न होना। दूसरा कारण है—पिछले कर्मों का प्रभाव। तीसरा कारण है—भोजन का सात्विक न होना। यह गुण और कर्म भेद से दो प्रकार का होता है। चौथा कारण है—स्थान का सात्विक न होना। पाँचवाँ कारण है—वर्तमान में व्यवहार सात्विक न होना।

वैराग्य में कमी के चिह्न

मन में अधिक संकल्पों का होना वैराग्य की कमी सिद्ध करता है। जिन बातों से चित्त उपराम होता है, उनका संकल्प नहीं करता। यदि कभी उनका ख्याल आया भी तो विचार-दृष्टि से आता है, जो कि वैराग्य की पुष्टि करता है और बन्धन का कारण नहीं होता। मन चूँकि स्थिर नहीं होता, इससे मालूम होता है कि वैराग्य की कमी है। मन जहाँ-जहाँ फँसा होता है, वहीं-वहीं जाता है, उन्हीं व्यवहारों में पड़ता है; परन्तु पुरुषार्थ करते-करते वहाँ से उपराम हो जाता है। तब वह उधर नहीं जाता।

वैराग्य दृढ़ करने के उपाय

अगर किसी वस्तु को चित्त चाहता है, और हम उसकी प्राप्ति ठीक नहीं समझते, तो हमें हठपूर्वक उसका संग त्याग करना उचित है। फिर कुछ अरसे बाद चित्त आप ही उसका चिन्तन छोड़ देता है। बिना हठ के कोई काम नहीं हो सकता। विचार और युक्ति से विषयों में दोष-दृष्टि पैदा करनी चाहिए। अधिक वार्तालाप से और सामने अनुभव करने से पता लग सकता है।

पदार्थों के गुणों का ज्ञान शरीर-रक्षा के अतिरिक्त और तो किसी काम का मालूम नहीं होता। धर्म या वैराग्य के ग्रन्थों का अवलोकन या सत्संग, कर्मकाण्ड की मदद और यथार्थ-बोध चित्त को उपराम

करने के लिए है। इसलिए ऐसी पुस्तकों का अध्ययन, विरक्त पुरुषों का सत्संग और स्वयं विचार करना वैराग्य के संस्कारों को दृढ़ करता है।

मनुष्य की गति कर्मानुसार ही होती है। इसलिए यथाशक्ति वैराग्य बढ़ाते जाना चाहिए और पाप से बचना चाहिए। धर्म-कर्म जितना हो सके, करते रहना चाहिए।

वैराग्य को परिपक्व करें

जो लोग अपने-आपको जीवन-मुक्त समझकर पुरुषार्थ त्याग देते हैं और असावधान हो जाते हैं, वे समय पाकर गिरावट महसूस करते हैं। इसलिए तुम सावधानी से रहते हुए वैराग्य को खूब परिपक्व करो। अक्सर अभ्यासार्थियों से सुनता हूँ कि बस अब कार्य हो गया; अब कुछ करने को जी नहीं चाहता। परन्तु जब वे असावधान हो जाते हैं, तब थोड़े ही दिनों में रंग बदला हुआ देखा जाता है। इसलिए तुम्हें इस खतरे से बहुत सावधान रहना चाहिए। बिलकुल मर जाना चाहिए, फिर न मरना पड़े।

यह भी देखते रहो कि संसार में तुम्हारे मन का किंचितमात्र भी लगाव कहाँ प्रतीत होता है। गुरुकुल हो या खादी का प्रचार, वेदों का अध्ययन-अध्यापन हो या कोई अन्य धर्म-कार्य हो—तुम यह भी सोचो कि नीचे उतरो, पहाड़ में रहो तो क्यों? यह भी देखो कि इस प्रश्न के उत्तर से राग सिद्ध होता है या वैराग्य। नीचे देश में आजकल जो जीवन-मुक्त देखने में आ रहे हैं, वे हैं तो ऊँची कोटि में, परन्तु मेरी बुद्धि उस अवस्था में नहीं ठहरना चाहती।

वैराग्य और योग

कोई भी योग-क्रिया वैराग्य से बढ़कर फलदायक नहीं हो सकती। कमजोरी और बीमारी की हालत में वैराग्य का ही सहारा रहता है। जब दूसरे अभ्यास बन्द हो जाते हैं, तब भी वैराग्य का अभ्यास चलता रहता है। विषय में सुख ही नहीं है, इससे उसे पहले ही छोड़ना चाहिए। सब अभ्यासों में वैराग्य ही सबसे बढ़कर है

और कल्याण करनेवाला है। इसलिए वैराग्य बढ़ाओ। अपनी मोटी-मोटी वासनाओं की असलियत पर विचार करते रहो। चौबीस घण्टे ऐसा विचार करते रहो कि मन कहाँ अटका है। वैराग्य उत्पन्न करो और बढ़ाओ; हर वस्तु के दोषों को देखो। उनके थोड़े-से लाभ देखने के कारण संसार में रोग बढ़ा है। दोष देखने से ही रोग छूटेगा।

वैराग्य ही सबसे मुख्य है। इसके बिना कुछ नहीं हो सकता। प्राणायाम के अभ्यास के बाद भी वैराग्य की आवश्यकता रहती है। यदि वैराग्य पूरा हो जाय, तो प्राणायाम की जरूरत नहीं। यदि वैराग्य हो, तो स्वप्न में भी बुरे काम नहीं हो सकते। जब तक शरीर में राग है, तभी तक संस्कारजन्य स्वप्न आते हैं।

पहले हठ से विषय को त्याग दो, फिर विचार और विवेक से संस्कारों को छिन्न-भिन्न कर दो। शराब और मांस सेवन करनेवाले भी अभ्यास में कुछ उन्नति कर लेते हैं। इसलिए हमारे हृदय में अभ्यास की कुछ कदर नहीं, वैराग्य ही मुख्य है। अभ्यास उन्नत होने पर भी यदि व्यवहार शुद्ध न हो, तो उससे जो पाप होंगे, उनका फल भोगना ही पड़ेगा। अतः वैराग्य और ईश्वर-चिन्तन बहुत आवश्यक हैं। वैराग्य के संस्कार ही मरते समय साथ रहते हैं। यदि अभ्यास में चित्त न लगा, तो कुछ हर्ज नहीं। थोड़ा स्वाध्याय तथा जप करता रहे और वैराग्य की ओर चित्त को लगाये।

एक अभ्यासी को इतनी शक्ति प्राप्त हो गयी थी कि जो व्यक्ति उससे मिलने आता, बिना देखे ही उसका पता बता देता। वैराग्य पक्का न होने से कुछ दिन बाद वह एक स्त्री से फँस गया! ऐसे ही एक दूसरे महात्मा ने, जिन्होंने योग और भक्ति पर कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं, और अच्छे अभ्यासी भी थे, वैराग्य दृढ़ न होने के कारण दो स्त्रियों को अपने पास रख छोड़ा और उन्हींमें रमने लगे!

मन को स्थिर करने के लिए प्राणायाम की जरूरत नहीं। कविता करने में भी मन लग जाता है। वैराग्य हो तो मन अपने-आप ही समा-

हित रहता है। जिन लोगों को हमने हठ से अथवा कहने-सुनने से अभ्यास सिखाया, वे पीछे गिर गये। इसलिए यम-नियम का पालन आवश्यक है।

यदि मन न लगे, तो भजन करना छोड़ दो। जिस चीज में मन जाय, वहाँ उसे दोष दिखलाते जाओ। ऐसा लगातार करते रहने से दोष-दृष्टि के सहारे वैराग्य के संस्कार दृढ़ हो जायेंगे। न तो बुरे स्वप्न आयेंगे, और न मन ही चंचल होगा। सबसे बड़ी बात यह होगी कि मरते समय वैराग्य के विचार ही साथ जायेंगे और आगामी जन्म में फिर उसी धुन में लगकर सफलता प्राप्त हो जायेगी।

जब तक विषयों में सुख प्रतीत होता है, तब तक ब्रह्मानन्द नहीं प्राप्त हो सकता। ब्रह्मानन्द अभी दूर है। मुमकिन है कि इस जन्म में न मिले। परन्तु जब विषयों में सुख है ही नहीं, तो इस धोखे को मिटाना परम आवश्यक है।

जो व्यक्ति यह इच्छा करके अभ्यास करते हैं कि कुछ सिद्धि प्राप्त करके देश और जाति की सेवा करेंगे, वे शांति प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि—सब प्रकार की इच्छा बुरी है। केवल वैराग्य की इच्छा इसलिए अच्छी है कि यह दुःख से छुड़ाती है।

विषयों को छोड़कर मन में उदासी आये, तो उसका स्वागत करना चाहिए। उसमें दुःख मनाना मूर्खता का लक्षण है।

हठयोग में जो प्राणायाम किया जाता है, उसका नशा जब तक रहता है, तब तक मन में वैराग्य रहता है। पीछे वह जाता रहता है। इसलिए हठयोग की क्रिया नहीं चलती। बल्कि योगदर्शन के अनुसार वैराग्य ही मुख्य है। विषयों का यथार्थ बोध प्राप्त करने से राग छूट सकता है।

सोचिये, शरीर मल-मूत्र से भरा है और हमारा इसमें निवास है। इस प्रकार विचार करते-करते शरीर में ही आसक्ति नहीं रहेगी, तो दूसरे

शरीर में चित्त नहीं फँसेगा और मोह, काम, लोभ की जड़ें खोखली हो जायेंगी।

वैराग्य के बिना अभ्यास का दावा करना मक्कारी है।

भजन का फल मोह-नाश

प्रश्न : महाराज, मैं कब समझूँ कि भजन में मैं सफल हो गयी ?

उत्तर : जब तेरे जवान पुत्र तेरे सामने मरे पड़े हों और तेरे दिल में रत्तीभर भी दुःख न हो।

वैराग्य और ब्रह्म-प्राप्ति

प्रश्न : क्या वैराग्य के बिना भी ब्रह्म-प्राप्ति हो सकती है ?

उत्तर : पहाड़ पर तो लोग चक्कर लगाकर चढ़ते हैं, पर कोई-कोई वीर शार्टकट अथवा सीधी पगडंडी पकड़कर शेर की तरह झट से पहुँचने का यत्न करते हैं। पर पीठ पर पत्थरों की गठरी होने से नीचे गिरते हैं। विषयों में चित्त फँसा होने के कारण सारा परिश्रम निष्फल जाता है। वे ब्रह्म-प्राप्ति नहीं कर सकते। पहले वैराग्य होना जरूरी है।

प्रश्न : सीधा मार्ग क्या है ?

उत्तर : यथार्थ-बोध प्राप्त करो। उसी अनुभव पर खड़े हो जाओ। पीतल को सोना मत समझो। तभी संसार से पीछा छूट सकता है। वैराग्य का मार्ग ही सीधा मार्ग है।

भजन और वैराग्य

प्रश्न : मेरा चित्त भजन के लिए बहुत करता है, पर इसके लिए भोजन की विशेष सामग्री होनी चाहिए, जिसके लिए याचना करनी पड़ती है। यह दीनता अच्छी नहीं लगती। इस समस्या को कैसे हल करें ?

उत्तर : जब तक चित्त अभ्यास कर रहा है, तब तक भिक्षु रहते हुए माँगते रहो। माँगना न छोड़ो। साथ ही चित्त को यह भी समझाते रहो कि इसमें भी दुःख है। इस प्रकार भजन से भी वैराग्य बढ़ाते जाना

चाहिए। भजन का भी राग छोड़ना पड़ेगा। जब तक वह नहीं छूटता, तब तक उसके निमित्त भी दीन बनकर दुःख सहते रहो। पूर्ण वैराग्य से ही परम शांति मिल सकती है।

अभ्यास के कुछ नियम

आप खूब नियमपूर्वक रहें। ब्रह्मचर्य्य पूरा रखें। ईश्वर पर भरोसा रखें। वे आप ही सहायता करेंगे। आपको चाहिए कि अभी से भोजन बनाना सीख लें। दाल, भात, साग बनाना कोई मुश्किल बात नहीं है। थोड़ी-थोड़ी रोटी भी बनाया कीजिये, इससे आपको बहुत स्वतन्त्रता मिल जायेगी।

शुद्ध अन्न तथा अभ्यास

प्रश्न : महाराज, यम-नियम का अच्छी तरह से यथाशक्ति पालन करता हूँ, धार्मिक पुरुषों का अन्न भी मिलता है, फिर भी मन शान्त नहीं होता।

उत्तर : दूसरे से लिये हुए अन्न से मन का शान्त होना कठिन है। जब मैं अपना कमाया हुआ अन्न खाता था, तो मन अनायास ही शान्त रहता था। अब दूसरों का अन्न खाता हूँ, ध्यान भी रखता हूँ कि अच्छी कमाई का खाऊँ, ऐसे श्रद्धालु से ही लूँ, जो निष्काम भाव से देता हो, जितनी होती है उनकी सेवा भी करता हूँ; फिर भी मन को शान्त करने के लिए जोर लगाना पड़ता है।

साधक का व्यवहार

मनुष्य को व्यर्थ ही यह ढिंढोरा नहीं पीटना चाहिए कि मैं अमुक कार्य करता हूँ। बल्कि जो काम उसने अपने कल्याण के लिए निश्चित कर लिया है, उसे वह चुपचाप करता चला जाय। यद्यपि यह बात उसके व्यवहार से आप ही प्रकट होने लगेगी और ताड़नेवाले आप ही ताड़ जायेंगे और इस तरह जाहिर भी हो जायेगी; परन्तु उसे इस प्रकट होने का भय नहीं होना चाहिए। यदि प्रकट हो जाने पर कोई पूछ बैठे,

तो झूठ भी नहीं कहना चाहिए। निरभिमानता के साथ जवाब सच्चा ही देना चाहिए। विस्तार में कहने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अभ्यास में दृढ़ता

दीर्घ काल तक निरन्तर सेवित होने से भूमि दृढ़ होती है। निर्विकल्प अवस्था में ठहरना बहुत कठिन है, अतीव कठिन है। जब तक तमाम पाशों को तोड़ न दिया जाय, तब तक वह अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। निरन्तर दीर्घ-काल इसलिए आवश्यक है कि शरीर की अवस्था चलने-फिरने से या खान-पान के अनियमित रहने से बिलकुल प्रतिकूल हो जाती है, और जब भी जोर दिया जाता है, केवल पुराना पाठ ही दुहराया जाता है, अन्य परा अवस्था नहीं आ सकती। इसलिए नियम सहित चिरकाल तक बिला नागा अभ्यास का सेवन होना चाहिए।

योग के साधक को आहार-व्यवहार की शुद्धता पर तथा उसे नियमित रखने पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। जो सज्जन परोपकार के कार्य में घूमते रहते हैं, वे इस मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकते। हाँ, ध्यान-मार्ग की अपेक्षा उनके लिए विचार-विवेकपूर्वक निष्काम सेवा-मार्ग सुगम तथा सरल है।



यम-नियम पालन करने से ही चित्त शुद्ध होता है, और ठीक-ठीक ज्ञान होने लगता है। इसीसे राग-मोह की जड़ कटती है। सत्य और ब्रह्मचर्य्य मुख्य हैं। इनके अनुष्ठान से ही कल्याण का मार्ग सूझता है और उसमें दृढ़ता होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता को बिना अनुभव के समझना असम्भव है। यह तो निरा प्रत्यक्षवाद ही है। अध्यात्म-विद्या तो अनुभव गम्य है।

बहुत शास्त्र पढ़ लेने से क्या लाभ ? हाँ, ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की आवश्यकता पड़ती है, जो ठीक-ठीक मार्ग बतलाकर इस सांसारिक दुःख से मुक्त होने का उपाय सुझाता है।

गागर में सागर

प्रश्न : बिना वेद-शास्त्र पढ़े ज्ञान नहीं हो सकता ?

उत्तर : बहुत शास्त्र पढ़ने की जरूरत नहीं है। संयम, वैराग्य और सद्गुरु की विशेष आवश्यकता है। ये तीनों प्राप्त हों, तो काम चल जाता है। कई बड़े-बड़े महात्मा हुए हैं, जो बहुत कम पढ़े-लिखे थे या बिलकुल नहीं पढ़े थे, परन्तु उन्हें बहुत अच्छा अनुभव था।

आजकल लोग थोड़ी बात में विश्वास नहीं करते हैं। बहुत शास्त्र पढ़ने से ही ज्ञान होगा—इसी भ्रम में पड़े हुए यों ही सारा जन्म गवाँ देते हैं। वे अपने अनुभव को नहीं बढ़ाते। तुम जरा सावधान होकर देखो।

तुम्हारे सामने यह विशाल सृष्टि है। इसमें सिवा पाँच इन्द्रियों और उनके विषयों के क्या है ? विषय हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, जिन्हें तुम श्रोत्र, स्पर्श, चक्षु, रसना तथा घ्राण इन्द्रियों द्वारा

जान रहे हो। सम्भव है कि इसके परे भी कुछ हो, परन्तु उसे तुम नहीं जान रहे हो। तुम्हारे साथ एक स्थूल शरीर भी है, जिसमें कर्म तथा ज्ञान की इन्द्रियाँ हैं। यह भी तुम्हें पता चलता है कि एक-एक इन्द्रिय द्वारा एक-एक विषय का बोध होता है। एक चीज और भी दिखाई पड़ती है, जो अकेले ही पाँचों को जान रही है। उसे 'मन' कहते हैं। विषय और इन्द्रियों का संयोग होते ही उसमें गति उत्पन्न होती है। इसलिए वह संकल्प-विकल्पात्मक है। एक और वस्तु भी दीखती है, जिसे अभ्यासी लोग इन्द्रियों और मन को जोड़नेवाला जानते हैं। उसे 'प्राण' कहते हैं। जब मन किसी बात को जान लेता है, तो जो कोई उसका निश्चय करता है, उसे 'बुद्धि' कहते हैं। कभी-कभी पिछली बात का स्मरण भी करते हैं। जो उस स्मृति को सामने लाता है, उसे 'चित्त' कहते हैं। बुद्धि से लेकर शरीर तक जो कुछ कार्य होते हैं, उन सबको जाननेवाला भी कोई है, उसीको 'पुरुष' कहते हैं। पुरुष स्वयं-प्रकाश है। उसे जानने के लिए दूसरे साधन की जरूरत नहीं।

इन सभी पदार्थों में तुम दो मोटे पदार्थ देखते हो—परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील। परिवर्तन का नाम सुख-दुःख है। वह शरीर आदि में होता है, आत्मा में नहीं; क्योंकि उसमें परिवर्तन नहीं होता। वह ज्ञान-स्वरूप है। यदि अन्तःकरण में ही सुख-दुःख हैं, तो आत्मा को सुख-दुःख क्यों प्रतीत होता है? अन्तःकरण तो आत्मा से भिन्न पदार्थ है। पता लगता है कि इनके संयोग का कोई और कारण है। उसे 'अहंकार' कहते हैं। यह अहंकार ही दुःख का मूल है और संयोग का कारण है। इसको 'अस्मिता' कहते हैं। इसीको 'अविद्या' कहते हैं। अविद्या का अर्थ 'ठीक-ठीक न जानना' है। वास्तव में आत्मा में सुख-दुःख नहीं होता, बुद्धि में ही परिवर्तन होता है, परन्तु वह उसे अपने-आप में मानता है। बस, तुम्हें इतनी ही बातों का पता लग रहा है। पाँच कर्म-इन्द्रियों सहित शरीर, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच विषय; मन, प्राण, चित्त, बुद्धि, अहंकार और एक सब कुछ जाननेवाली आत्मा।

तुम यह भी जान रहे हो कि संयोग से दुःख हो रहा है। परन्तु उस दुःख को चाहते नहीं। न चाहते हुए भी किसी बड़ी शक्ति से शासित तुम इस चक्र में पड़े हो। इस सम्पूर्ण विश्व को नियम में रखने-वाले को, जिसकी प्रेरणा से नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र आदि अपना-अपना कार्य कर रहे हैं, 'ईश्वर' मानते हैं। वह बुद्धि का विषय तो है नहीं। फिर कैसे जानते हैं—यह प्रश्न उठ सकता है। जैसे हम स्वयं अपने-आपको, जो बुद्धि का विषय नहीं है, अनुभव से जानते हैं; उसी अनुभव से ईश्वर को भी जानते हैं। ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है।

इसके अतिरिक्त भला और क्या है कि जिसे जानना चाहिए ? बहुत शास्त्र पढ़ लेने से भी इससे अधिक किस बात का पता लगेगा ? हाँ, ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की आवश्यकता पड़ती है, जो ठीक-ठीक मार्ग बतलाकर इस संसाररूपी दुःख से मुक्त होने का उपाय बतलाता है।

वेदान्त

कोरे तर्क-वितर्क से कल्याण नहीं हो सकता। मनुष्य व्यर्थ वाक्युद्ध में अपना समय नष्ट करते हैं। वे ब्रह्मवाद के भ्रम में पड़कर साधन छोड़ सिद्ध बन बैठते हैं। विषय-वासना तो छोड़ ही नहीं पाते, मन सर्वदा अशान्त रहता है, कलह और क्लेश में जीवन व्यतीत करते रहते हैं, मोह आदि दोषों से छुटकारा नहीं पाते, माया के जाल में अनेक प्रकार से फँसे रहते हैं, फिर भी अपने-आपको ब्रह्म ही मानते रहते हैं।

वे यह भी नहीं सोचते कि किसीको भी बूढ़ा होते ही लोग 'बाबा' कहने लगते हैं। वह किसीसे नहीं कहता कि मुझे बाबा कहो और न वह अपने-आपको इस उपाधि से बुलाता है। इसी प्रकार यदि तुम 'ब्रह्म' हो, तो लोग अपने-आप ही तुम्हें ब्रह्म कहेंगे। परन्तु दूसरा तो कोई तुम्हारे 'ब्रह्मत्व' को जानता ही नहीं, तुम वृथा 'अहंब्रह्म' का दावा किये चले जाते हो। पर जिस दावा की पुष्टि में एक भी साक्षी न मिले, उसके सत्य होने में संदेह ही है।

फिर यह भी विचारो कि जब साधारण पुरुष ही अपने-आपको नहीं भूलता, तो सच्चिदानन्दस्वरूप आनन्दघन परब्रह्म, जो ज्ञान-स्वरूप ही है, अपने स्वरूप को कैसे भूल सकता है ? और वह अज्ञान, मोह, दुःख में कैसे पड़ सकता है ?

संसार को स्वप्नवत् मिथ्या मानने में अनेक दोष आते हैं—(१) बोध होने पर स्वप्न नष्ट हो जाता है, पर संसार भासता ही रहता है। यदि न भासे तो ब्रह्मज्ञानी का व्यवहार कैसे चल सके ? (२) स्वप्न में प्रतिदिन नये-नये दृश्य दिखाई देते रहते हैं। परन्तु संसार में बहुत-कुछ वैसा ही बना रहता है। इसीके सहारे सुव्यवस्थित व्यवहार चलता है। (३) स्वप्न भिन्न-भिन्न पुरुषों को भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। परन्तु जाग्रत संसार के दृश्यों में अति अधिक समानता है, जिसके कारण सामाजिक जीवन चलता रहता है। (४) स्वप्न का कारण बीजरूप जाग्रत अवस्था है, पर संसार स्वप्न का कारण बीजरूप क्या है ? जो पूर्व जन्म के संस्कार मानो, तो फिर उसका कारण क्या है ? ऐसे विचारों से द्वैत ही सिद्ध होता है।

आजकल बहुत-से कम पढ़े-लिखे मनुष्य वेदान्तियों के संग से या कोई छोटी-मोटी वेदान्त की पुस्तक पढ़-सुनकर तर्क में पड़ जाते हैं कि मैं कौन हूँ, कहाँ जाऊँगा इत्यादि। परन्तु जिससे जीव का कल्याण है, उससे वे दूर रहते हैं। इन्हीं तर्कों में जीवन व्यतीत कर देते हैं, और बनता कुछ नहीं। ईश्वर-भक्ति तो उनसे होती ही कैसे ?

परन्तु द्वैत-अद्वैत का झगड़ा निरर्थक है। संसार-दुःख से छूटने के लिए वैराग्य की बड़ी आवश्यकता है। यम-नियम का पालन, आहार-व्यवहार की शुद्धि, विचार-विवेकपूर्वक संसार का यथार्थ बोध प्राप्त करना अति आवश्यक है। साधन सम्पन्न हुए बिना, कल्याण का पाना असम्भव है। यदि मोक्ष-सुख की इच्छा रखते हो, तो व्यर्थ बातों में अपना समय नष्ट न करो। जीवन बहुत थोड़ा है। धोखे में मत मारे जाओ। शीघ्र ही अपने आचार-विचार को पवित्र कर लो। प्रभु की शरण गहो। शरण गहे

की लाज वे अवश्य रखते हैं। जो सच्ची लगन से उसका दरवाजा खटखटाता रहता है, उसकी कभी-न-कभी सुनवाई हो ही जाती है।

प्रश्न : क्या द्वैत मानने से घाटे में नहीं रहेंगे ?

उत्तर : हमें हठ तो नहीं है, जब अनुभव में आ जायेगा, तब मान लेंगे !

प्रश्न : श्रुति तो अद्वैत का बखान करती है।

उत्तर : श्रुति का अर्थ तो लोग भिन्न-भिन्न करते हैं। आप अपने अनुभव की बात कहिये। यदि अनुभव में आता हो तो मान लूँगा।

प्रश्न : शरीर छूटने पर अनुभव होगा।

उत्तर : उस समय जैसा अनुभव होगा, वैसा मान लूँगा।

प्रश्न : संसार 'अस्ति, भाति, प्रियरूप' है।

उत्तर : संसार 'अस्ति, भाति' तो है, पर 'प्रियरूप' नहीं है। सुख-स्वरूप तो केवल आत्मा है।

वेदान्त को मैं भी मानता हूँ। पर उसे समझाने के लिए शंकराचार्य जैसा ही दिमाग चाहिए। समझना तथा अनुभव करना बड़ा कठिन है। वह बहुत ऊँची बात है।

इसमें शक नहीं कि उपनिषदों की शिक्षा बहुत अनमोल है। उसका ठीक-ठीक समझ में आना बहुत कठिन है। इसलिए कुछ लोग अधिकारी न होने से उल्टा-सीधा समझकर हानि भी उठाते हैं। इनका अधिकारी वही है, जिसे संसार से वैराग्य है; जो तपस्वी है, आत्मदर्शी है तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से मुक्त है।

वेदों का पठन-पाठन

जब से मैं इस मार्ग में चलता हूँ और जब से ईश्वर अनुग्रह का अनुभव होने लगा है, तब से शास्त्र पर मेरी बेहद श्रद्धा हो गयी है। मैं वेद-मन्त्रों का गलत अर्थ करना पाप समझता हूँ। मैं मानता हूँ कि बिना अपने में पूर्ण योग्यता हुए दूसरों को वेद पढ़ाना भी पाप है।

जिसकी वेदों में श्रद्धा और भक्ति न हो, अर्थात् जो अधिकारी न हो, उसे पढ़ाना भी पाप है।

कर्म का फल ईश्वराधीन

जो कर्म किया जाता है, वह समय पाकर अपना भोग जरूर भुगाता है, यह ईश्वरीय नियम है। उसे धैर्य्य के साथ सहना चाहिए और ईश्वर का चिंतन रखना चाहिए। वे ही हर समय अपने भक्तों की रक्षा करनेवाले हैं।

संन्यास से गृहस्थ में जाना पाप

संन्यास से गृहस्थ में जाने के लिए कोई विधि नहीं है, और शास्त्र की दृष्टि में यह इतना बड़ा पाप है कि किसी भी प्रायश्चित्त से उसकी शांति नहीं हो सकती। जब मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, और उसे ईश्वरीय दण्ड का भय न रहा, तब वह घर जाने से नहीं रुक सकता। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जो सच्चे दिल से ईश्वर की शरण में जाता है, उसे वे अवश्य बन्धन से मुक्त करते हैं। जो लोग संन्यास से गृहस्थ में जाते हैं, उनकी बुद्धि पर मुझे अफसोस आता है। वे प्रायश्चित्त के रहस्य को नहीं समझते।

साधनों में कठिनाइयाँ

आजकल सामाजिक स्थिति ऐसी बिगड़ी हुई है कि लोगों का ध्यान व्यवहार-शुद्धि की ओर बहुत कम है। इसलिए जब कोई अभ्यास के लिए आता है, तो सबसे पहले उससे व्यवहार-शुद्धि के लिए कहना पड़ता है। इसमें इतनी अड़चनें पेश आती हैं कि जिनके हल करने में बहुत मगजपच्ची करनी पड़ती है। कोई-कोई तो व्यवहार-शुद्धि की बात सुन-कर ही हट जाते हैं, और कोई-कोई करने के लिए कहते हैं; परन्तु जब उनसे बाकायदा प्रतिज्ञा करने को कहा जाता है, तब इनकार कर देते हैं। ऐसे कोई विरले ही निकलते हैं, जो सब प्रकार से दृढ़ हों। अब यदि किसीने व्यवहार-शुद्धि के लिए आगे को प्रतिज्ञा कर भी ली, तो

जो घृणित आचरण उसने पहले रखा है, उसके लिए प्रायश्चित्त कराना जरूरी कहा जाता है। यह सुनकर भी कई एक घबरा जाते हैं। यदि प्रायश्चित्त करने के लिए हिम्मत की भी, तो कुछ लोग कठिनाइयाँ पड़ने पर बीच में ही छोड़ देते हैं और पीछे आकर अभ्यास के लिए तकाजा करते हैं। परन्तु, जब उन्हें जवाब दे दिया जाता है कि अभी अधिकारी नहीं हो, तब वे शत्रु बन जाते हैं। जो लोग प्रायश्चित्त करके व्यवहार-शुद्धि पर कटिबद्ध रहना चाहते हैं, उनके सम्बन्धी उनके मार्ग में रुकावटें डाल देते हैं और मुझ पर गालियों की वर्षा करते रहते हैं कि इसने हमारे बच्चों या पतियों को बिगाड़ दिया; हमारा घर नाश कर दिया इत्यादि। जो लोग इतनी हिम्मत करके उपदेश पर चलने के लिए कटिबद्ध हैं, उनके युद्ध में उन्हें समयानुकूल सहायता देनी ही पड़ती है।

कई व्यक्ति ऐसे आते हैं जो 'भक्त' कहलाते हैं, पर जब उनका व्यवहार देखा जाता है तब घृणा आती है। ऊपर लिखी बातें कही जाती हैं, तो वे अपनी मानहानि समझकर चले जाते हैं, और विरुद्ध हो जाते हैं। शहरी लोग प्रायः स्त्रियों से दबे रहते हैं; इसलिए यदि उनकी पत्नियाँ न चाहें, तो उनको खान-पान ठीक रखने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं। यह भी एक जबरदस्त विघ्न पड़ता है। यदि इस विघ्न को वे सह भी लें, तो पीछे स्त्रियों की तरफ से ऐसी धमकी मिलती है कि वे भय खाकर छोड़ बैठते हैं। एक मास्टर की बहुत अच्छी अवस्था हो गयी थी, परन्तु पत्नी ने जब धमकी दी, तब उन्हें अभ्यास बिलकुल छोड़ देना पड़ा। फिर वे मेरे पास कभी नहीं आये।

स्त्रियों को व्यवहार-शुद्धि की बातें समझाने में पुरुषों की अपेक्षा अधिक श्रम पड़ता है, क्योंकि जो त्रुटियाँ हैं, वे उनके स्वाभाविक 'गुण' हैं। इसलिए वे उन्हें दोष ही नहीं समझतीं और हिम्मत हार जाती हैं। जो हिम्मत करती भी हैं, उनके सामने अड़चनें पेश आती हैं। यदि कोई इन अड़चनों में जैसे-तैसे निर्वाह करने की हिम्मत कर भी लेतीं हैं, तो उनके सम्बन्धियों की तरफ से खाने-पीने में रुकावटें होती हैं। इसमें सफलता

प्राप्त करने में काफी युद्ध होता है। ऐसी बहुत कम भाग्यवती होती हैं, जिनको इस अंश में स्वतन्त्रता हो।

एक बात यह भी देखने में आती है कि जो लोग पहले बाकायदा सच्चरित्र रहने की प्रतिज्ञा करके भजन में लग भी जाते हैं, वे पीछे व्यवहार में त्रुटि कर देते हैं, और जब भजन में विघ्न हुआ तब फिर आकर तंग करते हैं। जब उनको शरमिन्दा किया जाता है कि व्यवहार में त्रुटि क्यों हुई, तब बातें बनाकर फिर से ठीक रखने की प्रतिज्ञा करते हैं। कई व्यक्ति तो व्यवहार-शुद्धि कठिन देख यत्न छोड़ देते हैं, या विरुद्ध होकर बुराई करने लगते हैं।

मूर्ति-पूजा का अर्थ

प्रश्न : यहाँ के लोग अशिक्षित हैं। सभी वेद-विरुद्ध मूर्ति-पूजा करते हैं। आप मूर्ति-पूजा का खंडन कीजिये।

उत्तर : केवल सनातनी ही तो मूर्ति-पूजक नहीं; सभी मतवाले मूर्ति-पूजक हैं।

प्रश्न : आर्यसमाजी तो मूर्ति-पूजा नहीं करते, वे तो मूर्ति-पूजा का खंडन करते हैं।

उत्तर : मूर्ति-पूजा का अर्थ है—कल्पना करके ईश्वर की उपासना करना। कोई 'सहस्रशीर्षा पुरुष' कहता है, कोई 'ओ३म्' कहता है। 'गॉड', 'अल्लाह', 'राम' 'कृष्ण', सभी ईश्वर के नाम तथा काल्पनिक संकेत हैं। पर हैं ये सब कल्पनाएँ ही। यदि 'ओ३म्' ही ईश्वर का नाम हो, तो 'ओ३म्' कहते ही सारे संसार को पता लग जाना चाहिए कि ईश्वर का नाम लिया जा रहा है। परन्तु मुसलमानों, ईसाइयों तथा अन्य लोगों को, जो इससे परिचित नहीं हैं, कुछ पता नहीं चलता। शब्द तो संकेत है। जिन्हें इस संकेत का पता है, वे उसे ईश्वर का नाम मानते हैं। इसी प्रकार मूर्ति भी एक संकेत है। जो उसमें जैसी भावना रखता है, वैसी ही वह उसे दीखती है। जो कुछ इन्द्रियों के विषयों के

अन्तर्गत है, वही मूर्ति है और जो इन्द्रियगोचर नहीं, वह अमूर्त है। ईश्वर इन्द्रियों का विषय नहीं, पर शब्द इन्द्रियों का विषय है। सनातनी रूप के सहारे ईश्वर की पूजा करते हैं, तो आर्यसमाजी शब्द के सहारे मूर्ति-पूजा करते हैं; पर हैं दोनों मूर्ति-पूजक ही। हाँ, इतना भेद अवश्य है कि आर्यसमाजी सूक्ष्म मूर्ति-पूजक हैं; क्योंकि शब्द रूप से अधिक सूक्ष्म है।

सृष्टि की रचना का उद्देश्य

प्रश्न : महाराज, ईश्वर ने यह सृष्टि क्यों बनायी है ?

उत्तर : सृष्टि में अनेक नियम काम करते दीखते हैं। इसमें इतनी विचित्रता है कि वह मोह में पड़े सब प्राणियों को अपनी ओर खींचती है। सांसारिक वासनाओं में फँसे जीव जब सृष्टि की सुव्यवस्थितता, वैभव, सौन्दर्य तथा विचित्रता को देखते हैं, तो उनका ध्यान उनके पालक की ओर अवश्य जाता है। इस प्रकार विचार करते-करते सृष्टि की अपेक्षा उनका प्रेम प्रभु की तरफ होने लगता है। धीरे-धीरे वे प्रभु के सर्वदा सन्मुख रहने में ही अपना कल्याण मानने लगते हैं। मूढ़ जीवों को रिझाने के लिए ही अथवा उनके कल्याण के निमित्त ही प्रभु ने यह सृष्टि रची है। सृष्टि का लक्ष्य मनुष्य का भोग और अपवर्ग है।

प्रश्न : प्रभु ने इस सृष्टि को बनाया कैसे होगा तथा वे इसकी व्यवस्था कैसे करते हैं ?

उत्तर : एक समय भगवान् बुद्ध से उनके परम शिष्य आनन्द ने पूछा—'महाराज, यह सृष्टि कैसे बनी है ?' गौतम देव चुप रहे। फिर पूछा। वे फिर भी चुप रहे। तीसरी बार पूछा, तब भगवान् बुद्ध ने कहा, 'जब तुम शिष्य हुए थे, तो क्या मैंने तुमसे प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारे हर प्रश्न का उत्तर दूँगा ?' महापुरुष व्यर्थ उलझनों में किसीको नहीं डालते। बुद्धि का भी संयम आवश्यक है। जिस विषय से कुछ लाभ नहीं, उधर ध्यान ही क्यों दिया जाय ? लक्ष्य तो आनन्द-प्राप्ति है, दुःख

से छूटना है। भगवान् बुद्ध ने अपने-आपको 'सर्वज्ञ' नहीं कहा। उन्होंने शांति का पथ दर्शाया है। चेले स्वार्थवश भ्रम फैलाकर गुरु को भी कष्ट में डालते हैं। इसलिए हर प्रश्न का उत्तर मत खोजो, दुःख को विचारो और अनुभव-सिद्ध शास्त्र से उसको समूल नाश करने का यत्न करो। ईश्वर है या नहीं ?—तुम्हें इससे क्या लेना है। पहले अपने-आपको अधिकारी बना लो, अपने व्यवहार को शुद्ध करो, शास्त्र की मर्यादा पर चलो, तब पाप से मुक्त होकर ही पवित्र हृदय में भगवान् का ज्ञान प्राप्त कर सकोगे। पाप को छोड़े बिना इस चिन्ता में लगे रहना निरर्थक है।

हवन करना आवश्यक

भूख के कष्ट को दूर करने के लिए जैसे आप इतनी दूर खाने का सामान लाने के लिए जाते हैं, वैसे ही यदि आपको यह निश्चय हो कि अन्तःकरण की शुद्धि के लिए हवन करना वैसा ही आवश्यक है, तो आप इस भूख के कष्ट की भी परवाह न करते हुए पहले इस धर्म-नियम का अवश्य पालन करेंगे। परन्तु अंग्रेजी पढ़े-लिखों को शास्त्र में विश्वास ही नहीं। नहीं तो वे ऐसे बहाने ही न बनायें कि जंगल में लकड़ी अथवा सामग्री नहीं मिल सकती, या पैसा खर्च होता है। शरीर के लिए दूर जाकर भी जैसे आहार ले आते हैं अथवा खर्च की परवाह नहीं करते, वैसे ही अन्तःकरण के निमित्त भी कष्ट तथा खर्च की परवाह न करते हुए हवन अवश्य करना चाहिए।

हवन के मन्त्र आपको न आते हों, तो गायत्री मंत्र से ही इक्कीस बार आहुति दे दिया करें। उसीके अर्थ पर ध्यान रखें। सब सामग्री इकट्ठी कूट कर रख लीजिये। छह माशे की एक आहुति काफी होगी। सामग्री की तौल के विषय में किसी पंडित से पूछ लें। घी अलावा रहे तो बेहतर होगा।

प्रश्न : संन्यासी के लिए तो हवन का विधान नहीं है, फिर भी आप इस कर्म को क्यों करते हैं ?

उत्तर : शास्त्रों की जो आज्ञा है, वह हमारे कल्याण के लिए ही है। इतना तो अपने अनुभव में भी आता है कि मनुष्य का सूक्ष्म शरीर वायु का बना है। उसे शुद्ध करने अथवा रखने के लिए हवन से बहुत सहायता मिलती है। शहरों की वायु बहुत गड़बड़ रहती है। यहाँ आते ही चित्त उदास हो जाता है। हवन करते रहने से कुछ सहारा रहता है। यहाँ की दुर्गन्धित वायु सहन करने की सामर्थ्य आ जाती है। पहाड़ों में भी हवन करने से लाभ ही होता है; यदि न भी करें तो निर्वाह हो जाता है। शास्त्रों ने पाप-निवारणार्थ गृहस्थ को हवन का आदेश किया है। पर अभ्यासी चाहे किसी आश्रम में हो, उसके लिए तो यह हितकर ही है। चित्त का प्रसाद पाये बिना मनुष्य साधन में उन्नति नहीं कर सकता।

कौन-सा धर्म ठीक है ?

प्रश्न : कौन-सा धर्म ठीक है ? ईश्वर है या नहीं ?

उत्तर : इन सब लिखी बातों को त्याग दो। यह विचारो कि दुःख का सब इलाज कर रहे हैं। यम-नियम का पालन सब धर्मों में मानते हैं। पाप से बचो, सुख प्राप्त करो। साधन करो, फिर जैसा अनुभव में आये, वैसा मानते जाओ। सद्‌गुरु के पास कुछ समय रहकर साधन करो, तो ठीक-ठीक समझ में आयेगा।

त्याग का अभिमान

त्याग का अभिमान भी व्यर्थ है। दुनिया में हर मनुष्य सुख चाहता है और दुःख से घृणा करता है। हर व्यक्ति दुःखदायक पदार्थों को छोड़ता है। इसलिए कोई त्यागी यदि दुनिया को दुःखदायक समझकर छोड़ता है, तो उसमें उसकी क्या बहादुरी ? हाँ, अगर सुखदायक समझकर छोड़े तो दूसरी बात है। लेकिन ऐसा त्यागी कोई नहीं नजर आता, जो दुनिया को सुखदायक समझकर छोड़े। ऐसा मुमकिन भी नहीं है।

प्रश्न : आपने तो बहुत त्याग किया है ?

उत्तर : क्या त्याग किया है ? दुःख से तो पशु-पक्षी भी भागते हैं।

यदि हमने भी संसार को दुःखरूप समझकर छोड़ दिया, तो इसमें बहादुरी क्या हुई ?

प्रश्न : महाराज, आपने प्रोफेसरी छोड़ी; इधर कुछ तो प्राप्त किया होगा, तभी तो आपने सब कुछ छोड़ दिया है।

उत्तर : जो गाँठ में था, वह भी खो बैठा। कुछ प्राप्त किया हो, ऐसा तो नहीं लगता। जो याद था, उसे भुलाने में ही लगे हुए हैं।

प्रश्न : तो आपको गणित पढ़ने से कुछ लाभ नहीं हुआ ?

उत्तर : केवल इतना लाभ हुआ कि विचार में exactness (ठीक-ठीक विचारना) आ गया।

दुःख-दर्शन

प्रश्न : आप गृहस्थों के पास क्यों ठहरते हैं ? आप जैसे महात्माओं को तो तीर्थ स्थानों में ही ठहरना चाहिए।

उत्तर : गृहस्थों के पास ठहरने में उनके दुःख देखने में आते रहते हैं; इससे वैराग्य की पुष्टि होती रहती है।

जिस पुरुष को संसार में सुख न भासे, शरीर से कुछ लाभ न प्रतीत हो, बल्कि कैदखाना भासे, उसके लिए यह कितनी मूर्खता की बात होगी कि वह बहुत काल तक जीने का संकल्प करके कैद की मीयाद को बढ़ाने की इच्छा करे ! ऐसी भी तीव्र इच्छा नहीं महसूस होती कि हठ से शरीर को अभी छोड़ दूँ। बल्कि, इस वृत्ति में सुख मालूम होता है कि जैसा होता है, होने दूँ। मैं द्रष्टा बना रहूँ। उदासीन वृत्ति के साथ जब दुःख हो, तब जैसा कुछ भोग-बुद्धि के अनुसार सूझे, उपाय करूँ। परिणाम को तटस्थ बना देखता रहूँ। इस वृत्ति के सहारे अब तक जो कुछ कष्ट हुए, वे नाटक की तरह प्रतीत होते रहते हैं। चित्त में भी क्षोभ नहीं होता।

मांस-भक्षण और शास्त्र

प्रश्न : क्या शास्त्र में मांस-भक्षण लिखा है ?

उत्तर : हाँ, जो पुरुष हिंसक योनि से आया है, उसका मांस खाने

का स्वभाव है, तो वह झट से कैसे छोड़ देगा ? उसे शास्त्र में विश्वास है, तो वह शास्त्र की विधि से खायेगा। शास्त्र कहता है, शिकार करके खाओ। इसमें कुछ कष्ट है, कुछ प्राणी का दुःख-दर्शन है। यदि इस प्रकार करेगा, तो धीरे-धीरे उससे छूट जायेगा।

शास्त्र में यह भी कहा गया है कि यज्ञ में मांस विशेष विधि से मारकर खाना चाहिए, इसमें भी बड़ा बन्धन है। शास्त्र इस प्रकार नियमों में रखकर रुचि को हटाना चाहता है। फिर यह भी कह दिया कि यदि न खाय, तो अच्छा है। यज्ञ में भी आटा के बने बकरे की बलि चढ़ा सकता है। शास्त्र की मंशा तो हमें पुण्य की ओर ले जाने की है। दूसरी प्रवृत्तियों में भी अनेक बन्धन लगाकर सबसे उपराम करना चाहता है, और अन्त में वैराग्य, निवृत्ति के सहारे संसार-दुःख से बचाना चाहता है।

कर्ता कौन है ?

प्रश्न : हम कर्म नहीं करते, ईश्वर ही सब कुछ कराता है, चाहे वह कर्म अच्छा हो या बुरा।

उत्तर : ईश्वर ऐसा नहीं कर सकता। जो राजा अपने नियमों को स्वयं तोड़ दे, उसका राज नहीं चल सकता। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। यदि ऐसा ही मानते हो, तो दुःख का रोना क्यों रोते हो ? पाप छोड़ते नहीं, लोभ में मारे-मारे फिरते हो ! मोह-विकारों को जीता नहीं; धर्म, ज्ञान बताने लगे, मानो धर्म को केवल तुम्हींने समझा है।

पहले चित्त को शुद्ध करो, फिर ईश्वर क्या करता है, यह समझ में आ जायेगा। अपनी कमजोरी से बचने के लिए ईश्वर पर दोष मत लगाओ। ऐसे तर्क से कल्याण नहीं होता।

एकान्त-सेवन

एकान्त-सेवन हानिकारक नहीं। इसमें दबे हुए संस्कार उभड़ते हैं। वैसे उनका पता ही नहीं चलता। पता न चलने से उनके नाश करने

का यत्न भी नहीं होता है। दबे हुए संस्कारों को विचार से छिन्न-भिन्न करते रहना चाहिए। घबराने की कोई बात नहीं है।

यही विचार करो कि किसी विषय में सुख नहीं है। मनुष्य दुःख को दूर करता रहता है, इसीको सुख मान बैठता है। स्वतन्त्र रहने का यत्न करो। विचार-विवेक का आश्रय लेना चाहिए। सत्संग भी कुछ काल करते रहो।

वैद्य को उपदेश

वैद्य को अपना अन्न शुद्ध करने के लिए अपना व्यवहार शुद्ध करना चाहिए। दया-भाव से रोगी के दुःख का निवारण करने का यत्न करे। अपना भोग ईश्वर पर छोड़ दे। दूसरों की सेवा करे। परमात्मा में विश्वास रखे। शुद्ध भाव से रोगी की सेवा करने से कमाई शुद्ध होगी। यदि रोगी दुखित हृदय से देगा, तो वह चित्त को मलिन कर देगा।

धर्मोपदेशक का कर्तव्य

रुपया लेकर उपदेश देना पाप है। उपदेश में शिक्षा की बातें कहो, खण्डन-मण्डन में मत पड़ो। अपना जीवन आदर्श बनाओ। ब्रह्मचर्य्य, संयम से रहो, जिससे तुम्हारे जीवन का अच्छा प्रभाव पड़े।

शास्त्र से ही मार्ग-दर्शन

मोक्ष में किसीकी इच्छा देखकर हम संयम, तप और भजन का उपदेश देते हैं। इससे उसके सम्बन्धियों को कष्ट होता है। हमें तो सबका कल्याण चाहिए, किसीके भी कष्ट को हम सहन नहीं कर सकते। शास्त्र को ही आधार मानकर मोक्ष-मार्ग का उपदेश देते हुए जो कष्ट संसारी वासना के अधीन सम्बन्धियों को होता है, उससे उपेक्षा ही करनी पड़ती है। प्रभु ही सबको सह लेने का बल देते हैं।

हर प्राणी अपने मतलब से संसार में विचर रहा है। जिसमें एक का कल्याण है, दूसरा उसीको बुरा मानता है। शास्त्र के आधार पर ही हम पाप-पुण्य का निर्णय कर सकते हैं। यह भी निश्चित है कि यदि मुमुक्षु

शुद्ध भाव से अपने व्रत पर दृढ़ता से डटा रहे, तो उसके तप का प्रभाव दूसरे के हृदय पर भी पड़ता है। सारा क्रोध, शोक तथा विरोध हट जाता है।

स्वाध्याय के योग्य पुस्तकें

प्रश्नोत्तरी, रम्भा शुक संवाद, योगवाशिष्ठ का वैराग्य-मुमुक्षु प्रकरण, श्रीमद्भगवद्गीता, मनुधर्मशास्त्र, पारसभाग, रामायण, विनयपत्रिका आदि।

ब्रह्मचर्य-साधक के लिए उपयोगी जीवन-चरित्र :

महात्मा बुद्ध, श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी श्रीदयानन्द। ●●●

जीवन को बनावटी तौर से किसी खास ढंग का बनाने से मनुष्य भवसागर को तर नहीं सकता; तरेगा तभी जब उसके अन्दर असलियत पूर्ण तौर से प्रवेश कर जायेगी। यह बात विना सत्संग, अभ्यास और विचार के होना बहुत कठिन है।

विषय प्राप्त होते हुए विषय से बचना बहादुरी है।

विषयों में सुख-अभाव का जो अनुभव है, वह वृत्ति रहते हुए ही होता है, केवल विषयों को इन्द्रियों द्वारा निरपेक्षता से देखना मात्र ही काफी है। अनुभव आप ही हो जाता है कि सुख है या नहीं; है तो कितना है, या जो कुछ भी भासता है वह भी भ्रम से है, असल में कुछ नहीं। बार-बार लखाने पर भ्रम का पता लगता है। उसके बाद मन की विक्षिप्ति सुगमता से बन्द हो जाती है।

आत्मोन्नति में रुकावटें

यह जो कथन है कि आलस्य, अविश्वास और लोक-लज्जा के कारण आगे नहीं चल सकते, सो ठीक है।

लोक-लज्जा अधिक रुकावट नहीं डाल सकती। आप सचाई और ईमानदारी के साथ समाज के नियमों का पालन करते रहेंगे, तो लोक-लज्जा का भय क्या है ?

सब कारणों में अविश्वास ही मुख्य है। उसका हटना बहुत कठिन है। अविश्वास की बात विचारनी चाहिए। इस सम्बन्ध में दो पक्ष हैं : १. अप्रत्यक्षवाद, २. प्रत्यक्षवाद।

प्रथम पक्ष में केवल शास्त्र ही प्रमाण हैं, क्योंकि कर्म का फल पूरे तौर से इसी जन्म में अनुभव में नहीं आता। जो फल परोक्ष है, वहाँ हमारी बुद्धि नहीं पहुँच सकती। समय पाकर पाप और पुण्य अपना फल किस तरह से देते हैं, यह मनुष्य की बुद्धि से परे है। यह केवल शास्त्र के कथन से जाना जाता है। कौन-सा कर्म किस विधि से करना ठीक है, कौन गैर-ठीक है, यह भी मनुष्य की बुद्धि से परे है। इसका निर्णय केवल शास्त्र ही करता है।

कर्म के विषय में ठीक-ठीक निर्णय करना बहुत कठिन है। इसीलिए आचार्यों ने इस विषय में शास्त्र को ही प्रमाण माना है।

शास्त्र के सहारे बिना हम अपनी बुद्धि से इतना भी नहीं निश्चय कर सकते कि सत्य बोलना हमारे लिए श्रेयस्कर है। फिर दूसरे अनेक कर्मों के सम्बन्ध में कैसे निश्चय हो सकता है कि उनका ऐसा फल होगा; क्योंकि फल तो अगले जन्म में होना है या मृत्यु के बाद होगा।

इसलिए कर्म-काण्ड में विद्वान लोग शास्त्र के पीछे अन्धे की तरह चलते हैं। वहाँ बुद्धि नहीं चलती। जो पुरुष बुद्धि से विचारना चाहता है, उसको वेद ढकोसला ही प्रतीत होते हैं। हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं :

(१) कर्म-काण्ड हमारी बुद्धि से परे है, केवल वेद से जाना जाता है।

(२) वेदों का ज्ञान जितना प्राचीन ऋषियों को था, आजकल के लोगों को नहीं है।

(३) कर्म के लिए ऋषियों के वाक्यों को ही प्रमाण मानने में हम जवाबदेही से बच सकते हैं।

इसलिए इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि यदि किसी वस्तु या पदवी को ग्रहण करें, तो पहले उसके दायित्व को अच्छी तरह समझ लें, और देख लें कि आप उन कर्तव्यों को पूरे तौर से अदा कर सकेंगे या नहीं।

जैसे, किसीने सोचा कि मैं विवाह कर लूँ, इसमें सुख है। वह स्त्री को ग्रहण कर लेगा, तो उस पर गृहस्थ-आश्रम के कर्तव्य आ जायेंगे, और उन्हें अदा न करने से वह पाप का भागी बनेगा। यदि उसे थोड़े ही समय में ग्लानि हो गयी और उसने स्त्री को निराधार छोड़ दिया, तो उसे पाप लगेगा और आत्मिक उन्नति में विघ्न होगा। इसी तरह और भी सब बातों को समझ लेना चाहिए।

प्रत्यक्षवाद

दूसरा पक्ष अनुभवगम्य है। जैसे विज्ञान की बातें बाकायदा तजुर्बा करने से अनुभव में आती हैं, वैसे ही नियमानुसार पुरुषार्थ करने से अनुभवगम्य बातें भी अनुभव में आती हैं। जैसे, हाइड्रोजन का हवा में जलना या पोटेशियम का पानी में जलना पहले असम्भव मालूम होता है, परन्तु बाकायदा तजुर्बा करने से विश्वास हो जाता है, इसी तरह इस पक्ष में भी है।

पुरुषार्थ आलस्य को छोड़कर ही हो सकता है। जिस वक्त तजुर्बा करने का जोश आता है, उस वक्त आलस्य आप ही उड़ जाता है। कुछ समय तक नियमपूर्वक कोशिश की जाय कि देखें क्या होता है, तो यदि उसमें कुछ होगा तो वह आप ही विश्वास को बढ़ायेगा। यह बात बिना पुरुषार्थ के नहीं हो सकती।

बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिनमें लोग धोखे में पड़कर दुःख उठाते रहते हैं। यदि इस धोखे को छोड़ने की कोशिश की जाय, तो इसमें न तो लोक-लज्जा का ही भय है और न आलस्य ही विघ्न डाल सकता है; क्योंकि केवल विचार ही तो बदलना होता है।

यथार्थ बोध की विधि

यदि स्वयं रूप, रस आदि विषयों का यथार्थ बोध प्राप्त करना चाहते हो, तो तजुर्बा तथा अनुभव की विधि यह है :

तुममें यह शक्ति होनी चाहिए कि तुम केवल रूप ही देखो। अपनी

तरफ से कुछ नमक-मिर्च न मिलाओ, अर्थात् उसकी कोमलता, स्वाद या सुगन्ध या मधुर शब्द आदि की भी कोई कल्पना मन में न आने पाये। इन सब कल्पनाओं को रोककर केवल द्रष्टा बनकर देखो। उस रूप का जो कुछ असर तुम्हारे अन्दर होना होगा, वह आप ही होगा। तब तुम आप ही फैसला कर सकोगे कि वह सुन्दरता तुमको कहाँ तक और कब तक अच्छी लगती है। यदि कल्पनाओं को एक दम से न रोक सको, तो पहले मन को तैयार कर लो, और शरीर तथा मन को बिलकुल ढीला कर लो। फिर ढीले मन से उस पर दृष्टि डालकर देखो। ऐसा अभ्यास प्रत्येक पदार्थ पर करते रहो, तो तुमको अभ्यास आसानी से हो जायगा; और फिर जहाँ तुमको गड़बड़ी प्रतीत होती है, वहाँ भी मन जल्दी ठीक तौर से देख सकेगा।

ऊपर लिखे अनुसार प्रयोग करते जाओ। अभ्यास से जब उठते हो, तब भी प्राप्त वस्तुओं पर उसी समय प्रयोग करो, और मन में उस समय के संस्कार दृढ़ करो, तो आगे को काम आयेंगे। जब मन अन्तर्मुख होने का आदी हो जायगा, तब फिर तुम देखोगे कि जिस सुख को धोखे से बाहर के पदार्थों में तलाश करते हो, वह तुम्हारे अन्दर ही है।

अब रही बात beauty (सुन्दरता) और indifference (तटस्थता) की, सो जैसा तुमसे हो सके, अपनी बुद्धि के अनुसार करते जाओ। जब सत्संग का मौका मिलेगा और तुम्हें अनुभव होगा, तब सुन्दरता का भी हाल मालूम होगा कि सुन्दरता दरअसल ऐसी ही है, जैसी कि प्रायः लोग समझते रहे हैं; या बात कुछ और है और मान कुछ और ही रहे हैं।

अनुभवसिद्ध सच्चाई पर चलें

आपको अपने अनुभव से गलतफहमी को दूर करना है। इसलिए अनुभव को पुष्ट करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए। सत्य समझकर खड़ा रहना चाहिए, और व्यवहार करते वक्त देख लेना चाहिए कि व्यवहार

सत्य समझ के आधार पर है या नहीं। मन से यह कहते रहना चाहिए कि 'भाई, शरीर का पता नहीं कब चल दे; इसलिए जो कुछ तू इस दुनिया से लाभ उठा सकता है और सुख ले सकता है, वह ले ले, वरना पीछे पश्चात्ताप रहेगा। मगर, यह अवश्य ध्यान रहे कि लाभ और सुख असली हो, सिर्फ माना हुआ न हो, वरना ठगा जायेगा।'

संसार में दुःख का चिन्तन बिना ग्रन्थों के सहारे से होना चाहिए। इन्द्रियों के विषयों की तह को अपने अनुभव से पहुँचना चाहिए और अनुभव के आधार पर पुराने संस्कारों को निर्मूल करना चाहिए। यह बात बहुत कठिन है। अनुभवी पुरुष के सत्संग के बिना ठीक-ठीक निर्णय करना असम्भव-सा प्रतीत होता है। परन्तु जो विद्वान् हैं तथा बहुत कुछ अनुभवी हैं, और जिन्होंने सत्संग भी अच्छे-अच्छे महात्माओं का किया है, शायद वे स्वयं निर्णय कर सकें। अगर अजीब-गरीब सिद्धियाँ न मिल सकीं, तो न सही, मगर सच्चाई के संस्कार लेकर जरूर जाना चाहिए। पीछे और बातें देख ली जायेंगी।

यह विषय गुरुगम्य है। विचारशील पुरुष को इशारा ही काफी है। अनुभव तथा विचार के सहारे चलता हुआ मनुष्य बहुत-से धोखों को यहीं छोड़ सकता है। अध्यात्म-शास्त्र प्रत्यक्षवाद ही है। हाँ, जरा धीरज, विचार तथा पुरुषार्थ की जरूरत अवश्य है।

धोखे दाड़िम के सुआ, गयो नारियल खान।
खम खाई पाई सजा, फिर लागो पछतान॥
फिर लागो पछतान, बुद्धि अपनी को रोयो।
निर्गुनियन के संग बैठि, गुण अपनो खोयो॥
कह गिरिधर कविराय, कहूँ जे योनी ओखे।
चूँच खटक के टूट, सुआ दाड़िम के धोखे॥

मन-गाहक से विनती इतनी, हक नाहक नहीं ठगाना है।
देख-भाल कर ठोक-बजा कर, वस्तु का मोल लगाना है॥

लड़कपन में मैं बाजार की मिठाई बहुत खाता था। बिना इसके रहा नहीं जाता था। थोड़ी-सी नित्य खाता। वह बहुत अच्छी लगती थी। फिर हानिकारक समझकर छोड़ दी। अब मिठाई खाते समय चित्त खुश नहीं होता। भूख में तो दो-चार ग्रास खा भी लूँ, तो खाने को चित्त नहीं करता। उस वक्त कोई ऐसा-वैसा ख्याल भी नहीं होता, जिसका असर कहा जाय।

जब मैं दसवीं श्रेणी में था, तब खटाई, लाल मिर्च और नमक बहुत खाता था। दो वर्ष तक यह हालत रही। फिर हानिकारक बताई जाने से छोड़ दिया। अब दाल या साग में थोड़ी-सी खटाई या मिर्च हो, तो बिना कुछ ख्याल किये हुए तबीयत को बुरा लगता है। दूध में थोड़ा-सा मीठा पड़ा हो, तो अच्छा लगता है। हमारी माँ को मीठा बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। गन्ने का रस कभी नहीं पीती थी। दूध में मीठा कभी नहीं डालती थी। थोड़ा-सा नमक मिलाकर खाने से खुश रहती थी। दाल में अधिक नमक हो, तो खुशी से खाती थी, कम हो (यानी जितना हम लोग खाते हैं।) तो उसको ऊपर से डालना पड़ता था। कुछ आदमियों को मैंने देखा कि वे १५-२० दिन का घी नहीं खा सकते। अगर ताजा उसी दिन का हो, तो खा लेंगे, नहीं तो सूखा खायेंगे। वर्मा के लोग घी नहीं खा सकते। कोई फूल मेम लोग पसन्द करती हैं, हम लोगों को दुर्गन्ध आती है।

इससे यह भी मालूम होता है कि जिन चीजों का मनुष्य सेवन करता रहता है, उनसे उसका प्रेम हो जाता है, और फिर वे उसको अच्छी लगा करती हैं। ऐसे ही उसकी आदत बन जाती है। कुछ लोग मूँग की दाल इतनी नापसन्द करते हैं कि बीमार होने पर भी नहीं खाते। इन बातों से यह भाव टपकता है कि मन की गहरी आदत के कारण मन निष्पक्ष होकर अनुभव करने में असमर्थ है। इसीलिए विषय में सुख प्रतीत होता है।

आप शास्त्र पढ़े हैं। आपने महात्माओं का सत्संग भी किया है। आपको क्या नहीं मालूम ? परन्तु यदि फिर भी कर्तव्य के विषय में संदेह है, तो आप अकेले बैठकर स्वतंत्रता से बिना किसी शास्त्र या पुरुष के वाक्यों के सहारे केवल अपने ही अनुभव के बल से विचारिये। आपको क्या करना चाहिए और क्यों करना चाहिए, अर्थात् उससे आपका क्या लाभ होगा ? आप समझ लीजिये कि यह दृश्यमान जगत् आपके सामने है। आप इसके संग से जिस रीति से लाभ उठा सकें, उठाइये। जब तक आप निर्णय न कर सकें, तब तक यही प्रश्न आपके सामने रहना चाहिए। यदि आप स्वच्छ बुद्धि से विचार करेंगे, तो बहुत-सी बातों का जवाब अपने-आप हल कर सकेंगे।

आप अपने संशयों को स्वयं विचार कर निवृत्त कर सकते हैं। जब तक उत्तर न मिले, धीरज से उसी प्रश्न को बार-बार सामने रखते रहें। उत्तर जरूर मिल जायगा। सहज भाव से तथा शांति से ध्यान लगाये रहना चाहिए।

यथार्थ बोध के साधन

(१) इन्द्रियों के विषयों को निष्पक्ष भाव से देखना चाहिए। मन के संयोग के बिना कुछ बोध नहीं हो सकता, पर जब तक मन निष्पक्ष न रहे, तब तक यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।

(२) विषय में सुख का धोखा होने से ही राग होता है। यदि यथार्थ बोध से सुख-बुद्धि ही उड़ा दी जाय, तो फिर राग नहीं होगा और न चित्त ही फँसेगा।

(३) सत्य के बराबर कोई तप नहीं है, इसलिए सत्य और असत्य का निर्णय करो। सत्य का ग्रहण करना और असत्य का बलपूर्वक त्याग करना चाहिए। अपने से भिन्न जो वस्तु है, वह विषय में शामिल है। इन्हें सुख-लाभ के लिए प्रयोग में लाना विषय-सेवन है, परन्तु दुःख-निवारण के लिए प्रयोग में लाना दवा है। इसी औषधि-रूप से सब पदार्थों को बरतना ठीक है।

सत्य का ग्रहण और झूठ का त्याग—यही बड़ी आवश्यक बात है। इसके अतिरिक्त दूसरी बात ही नहीं। धोखे से अपने-आपको बचाना चाहिए। जो वस्तु या बात निष्पक्षता से जैसा अनुभव में आये वैसा ही समझना सत्य है, उसके खिलाफ झूठ है।

(४) मन का जहाँ-जहाँ लगाव हो, वहाँ-वहाँ यह विचारना चाहिए कि असली तत्व क्या है; कितना धोखा है, कितना भ्रम है, कितनी सचाई है। आसक्ति के कारण को देखो—अविद्या है या कुछ और?

जितने अंश में धोखा है, उतने अंश में आवश्यकताएँ बढ़ती ही जाती हैं। बार-बार समझाने से मन को उपदेश देता रहे कि 'देख, तुझे इससे क्या लाभ प्रतीत होता है? अगर लाभ नहीं तो धोखा है। तू बड़ा मूर्ख है'—इस तरह मन को समझाता रहे। इसीसे मन शिथिल होता जायेगा। हठ से तो यह बन्द न होगा। नदी को अगर बाँध दिया जाय, तो एक दिन तोड़कर ऊपर से चली जायेगी। इसी तरह से मन के वेगों का हाल है। मन समझाने से धोखा छोड़ देगा और काम बन जायेगा। इसी तरह जितने भी मानसिक रोग हैं—काम, क्रोध, लोभ आदि—उनका निदान भी विचार से होना चाहिए। शारीरिक रोग तो औषधियों से ठीक हो जाते हैं, परन्तु मानसिक रोग विचार से अथवा सत्य के ग्रहण से ही ठीक हो सकते हैं।

जब आदमी बेहोश होता है, तो कुछ नहीं सूझता। होश आने पर सत्संग से कुछ-कुछ समझ जाता है। जब समझ में आये, तो फिर उस पर अमल करे। ऐसे ही काम, क्रोध आदि का वेग आना तो स्वाभाविक है, पर आदत को पक्का करने के जिम्मेदार हम हैं।

(५) स्त्री के शरीर की गन्दगी को सामने रखो। पसीने से बदबू आती है, तमाम सुराखों से मल निकलता रहता है। शरीर में हड्डी, मांस, कफ, वात आदि के अतिरिक्त क्या है? शरीर मल-मूत्रमय है। यह शुद्ध तो हो नहीं सकता। साबुन से स्नान कर साफ कपड़े पहनो, दो घण्टे के बाद अन्दरवाले कपड़े को देखो, कुछ दुर्गन्ध अवश्य मालूम

होगी। यदि शरीर शुद्ध होता, तो बदबू या मैल कहाँ से आ गये? नाक साफ करो, थोड़ी देर बाद फिर वही हो जाता है। इस प्रकार चाहे जितनी सफाई करें, यह शरीर फिर भी मैला ही दीखता है। सोचने से मनुष्य का चित्त शरीर से उपराम होता है।

देह-आसक्ति ही अज्ञान की जड़ है। मनुष्य मिथ्याभास में फँसकर पीतल को सोने के भाव खरीदता रहता है। वास्तविक सुख से कोसों दूर रहता है। असली वस्तु पर ध्यान नहीं देता। असली वस्तु पर ध्यान रखने से ही धोखा मिट सकता है। मौका आने पर इन विचारों को अमल में लाये।

प्रश्न : आपको स्त्री कैसी भासती है?

उत्तर : हमें स्त्री जैसी है, वैसी ही भासती है।

प्रश्न : कोई भाव तो होना चाहिए। स्त्री को माता-भाव से ही देखना उत्तम है?

उत्तर : मातृ-भाव भी तो कल्पना-मात्र ही है। फिर कल्पना-जाल में विचरने से क्या लाभ? जैसा हाड़-मांस का पिंजर रुधिर, कफ आदि दोषों से भरा है, वैसा ही देखना चाहिए। इस सत्य भाव पर खड़े होने से ही मनुष्य काम-भय से मुक्त हो सकता है। बूढ़ी स्त्रियों में तो मातृ-भाव शीघ्र ही दृढ़ हो सकता है, परन्तु युवती स्त्री की माया से तभी बच सकते हैं, जब सत्य-बोध के आधार से अपने हृदय को जाग्रत रखें।

(६) हर वस्तु से वेलगाव रहना चाहिए। और हर समय मन को निष्पक्ष रखना चाहिए। मन के भावों के अधीन होकर पक्षपात में बुद्धि को नहीं फँसने देना चाहिए।

जब मन अपने-आप कुछ करना चाहे, तो सोचे कि इससे कौन-सा दुःख दूर होगा? यदि दुःख बढ़ना ही हो, तो उस काम में हाथ डालना ही मूर्खता होगी।

(७) मन को एकाग्रता का अभ्यास कराना चाहिए। सबसे सुगम उपाय यह है कि जिस काम में रुचि हो उसमें लग जाओ। उसे पूरे ध्यान से करो। बाधाओं से घबराकर बीच में मत छोड़ो।

(८) देखो यह फूल है। अनुमान से तो यही मालूम होता है कि सब गुलाबी ही है, परन्तु वस्तुतः दूसरी तरफ से सफेद है। कितना धोखा है! अनुमान में प्रायः धोखा रहता है। इस डण्डी को देखो, कैसी चमकती है। ऐसा मालूम होता है कि बड़ी नरम होगी। पर हाथ लगाने से खुरदरी मालूम होती है। इसी प्रकार से संसार में बड़े दुःख हैं, मनुष्य भ्रम में पड़ अनुमान के सहारे धोखा खाते रहते हैं। मन यदि निष्पक्ष रहे, तो यथार्थ बोध से यह धोखा मिट सकता है।

(९) इसी प्रकार से लोग सौन्दर्य में फँसे रहते हैं, पर गुलाब के फूल की तरह गुलाबी के साथ सुफेदी है, तथा नरम पत्ती के साथ काँटे हैं। देखने में चमकदार पर छूने से खुरदरा। सौन्दर्य-भावना कोई वास्तविक वस्तु नहीं है, केवल काल्पनिक है, अनुमान-जन्य धोखा मात्र है। यदि मनुष्य इस पर पूर्णतः विचार करे, तो वह बहुत पापों से छूट सकता है।

(१०) विषयों का यथार्थ-बोध ही विषयों के राग से मनुष्य को मुक्त कर सकता है। इस यथार्थ-बोध के लिए चित्त को शान्त करना आवश्यक है। अभ्यास इसमें सहायक हैं। अन्वेषणा बुद्धि से गुरु की आज्ञा के अनुसार प्रयत्न करने पर ठीक-ठीक बोध हो सकता है।

उधार ज्ञान से काम नहीं चलता। नकद तथा अनुभव-सिद्ध बोध ही कल्याणकारी है। काम तथा कल्याण की जितनी बातें हैं, वे सब अनुभवसाध्य हैं। मोक्ष-मार्ग तथा अध्यात्म-शास्त्र प्रत्यक्ष पर उतना ही अवलम्बित हैं, जितना कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय। भीतरी अनुभव ही संसार के धोखे को निवारण कर, संसार की असारता और आत्म-ज्योति की सारता और सत्यता सिद्ध करता है। मोक्ष-मार्ग तो प्रत्यक्ष का मार्ग है। गीता प्रत्यक्ष-शास्त्र है। पर अनुभव ठीक होना चाहिए। वैराग्य, विचार, विवेक और सदगुरु ही इसमें विशेष सहायक हैं।

भक्त की भावना यह रहती है कि हर वक्त प्रभु के सम्मुख रहूँ, ऐसा दिल करता है। ईश्वर अपना वरदहस्त सदैव ही सिर पर रखें, जिससे माया की चपेट से बचा रहूँ। ईश्वर ही हर समय पथ-प्रदर्शक रहें। जो काम जिस तरह से उनको कराना मंजूर हो, वैसा ही करने की प्रेरणा करें। न कराना हो, फुर्ना ही न हो। मन चुपचाप जीवन व्यतीत करे।

कर्तव्य करते हुए तटस्थ रहें

सबकी सेवा करते रहो और सृष्टि का नाटक देखते जाओ, जिससे फिर से देखने की इच्छा शेष न रहने पाये। नहीं तो फिर यही झगड़ा आगे आकर खड़ा हो जायेगा। बाजीगर की वृत्ति रहे। मदारी खेल दूसरों को दिखला देता है, अपने-आप उसमें आसक्त नहीं होता। उसका लक्ष्य केवल लोगों को प्रसन्न करके पैसा कमाना होता है। इसी तरह यदि केवल ईश्वर को प्रसन्न करना लक्ष्य हो तो ठीक है, वे आप ही सम्हालेंगे—

सपुरदम बतो माइये-खेशरा। तो दानी हिसाबे-कमो-बेश रा॥

जो अपने आश्रित हैं, उनका ख्याल अवश्य रखना चाहिए। उनके आशीर्वाद से अपना कल्याण शीघ्र होता है। ईश्वर भी उस पर कृपा करते हैं। अपना कर्तव्य पूरा करते हुए तमाशा देखनेवाला बनने की कोशिश करें। दूसरों के भोग तथा बुद्धि को पलटना आपके अधीन नहीं है। वह ईश्वर के हाथ में है। आप केवल अपने कर्तव्य के जवाबदेह हैं।

इस नाटक में अपना पार्ट अदा करते हुए उसका तमाशा देखने का

अभ्यास डालना चाहिए। इसीमें बुद्धिमानी है, और तभी मनुष्य निर्दोष रहते हुए कुछ शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकेगा—

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा॥

बहादुरी इसीमें है कि मानसिक दुःख न होने दें। मनुष्य से यह गलती हो जाती है कि वह दूसरों से इतने अधिक अच्छे व्यवहार की आशा कर लेता है, जितना दूसरा नहीं कर सकता। और जब उसकी आशा पूरी नहीं होती, तो वह बुरा मानता है। कोई पुरुष सबको खुश नहीं कर सकता, वह केवल ईश्वर के सामने साफ दिल रह सकता है। ईश्वर उसको उसके व्यवहार का फल अवश्य देंगे। इस जन्म में जो हानि और लाभ, संयोग और वियोग, सुख और दुःख हो रहा है, वह पिछले जन्मों के कर्मों के अनुसार हो रहा है। इसलिए तुम्हें ईश्वर के न्याय पर संतोष करना चाहिए। जब कभी किसीके साथ कोई काम करना चाहो, तब उसके साथ साफ तौर पर सारी बातें निश्चित कर लो और फिर अपने हृदय को पवित्र रखते हुए, ईश्वर को साक्षी मानते हुए काम करते जाओ। फिर भी यदि दूसरा व्यक्ति सन्तुष्ट न हो, तो तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। तुम्हें पश्चात्ताप करने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें तुम्हारे कर्म का फल समय आने पर ईश्वर अवश्य देंगे। दिल को साफ रखते हुए, ईश्वर को हाजिर-नाजिर समझते हुए काम करते रहो और मस्त रहो। इसी में कल्याण है।

पुत्र के प्रति पिता का कर्तव्य

एक बात का ध्यान तुम्हें सदा रखना चाहिए कि संसार की गति को अच्छी तरह ध्यान में रखकर काम करना है। प्रायः ऐसा ही देखने में आता है कि संसार में कृतघ्नता बहुत है, कृतज्ञता कहीं-कहीं है। इसलिए गीता में भगवान् ने कहा है कि पुरुष को चाहिए कि बाल-बच्चों का पालन-पोषण करना अपना कर्तव्य समझकर करता जाय। उनसे बदले की

आशा न रखे। बदले की आशा केवल भगवान् से रखे, जिनकी आज्ञा का वह पालन कर रहा है। प्रभु जिस तरह उसका कल्याण समझेंगे, आप ही करेंगे। जो विचारवान् पुरुष इस तरह ख्याल रखते हुए कर्तव्य पालन करते हैं, वे प्रभु के प्यारे बनते हैं और अन्त में शान्ति को प्राप्त होते हैं। पर जो लोग बच्चों से बदले की आशा लगाकर उनका पालन करते हैं, वे प्रायः दुःखी होते हैं; क्योंकि उन्होंने गलती की, कि काम तो मालिक का किया और बदला दूसरों से चाहते हैं। दूसरे, ऐसे पुरुष का विश्वास भी ईश्वर में नहीं सिद्ध होता, क्योंकि यदि वह यह समझकर काम करता कि वह ईश्वर की आज्ञा का पालन कर रहा है, तो ईश्वर को मालिक समझता हुआ वह ईश्वर से ही फल की आशा रखता। परन्तु वह ईश्वर को छोड़कर दूसरों से फल चाहता है, इसलिए धोखे में पड़कर दुःख पाता है। इसलिए सीधे ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिए। यह जो संसार में इच्छा का पूरी न होना है, इससे प्रभु बड़ा सबक देते हैं कि संसार में आशा ही लोगों को बहुत दुःख देती है। जो लोग सब आशाओं को ईश्वर पर छोड़कर सन्तोष करते हैं और अपना कर्तव्य पूरा करते रहते हैं, वे ही सुखी हैं।

कर्म-मीमांसा

न्याय के अनुसार न तो कोई किसीको सुख दे सकता है, न दुःख। फिर भी कहा जाता है कि यदि कोई पुरुष किसीको सुख-दुःख देने की नीयत से कर्म करता है, तो कर्ता को उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा, चाहे उसके कर्म से दूसरे को सुख-दुःख पहुँचे या न पहुँचे। इसलिए विचारशील लोग वेद पर विश्वास करके अपने कर्म को बहुत सोच-समझकर करते हैं। इतना ही कर्म दर्शन-शास्त्र का सार है, इसमें और भी बहुत-सी बारीकियाँ निकलती हैं।

किसान भूमि को ठीक करके उसमें बीज डालता है, पर फल उसके अधीन नहीं है। वह परमेश्वर के अधीन है। वैसा ही हाल सब कर्मों का है।

मन कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता है। परन्तु ऐसी स्थिति भी आ जाती है, जब ईश्वरीय प्रेरणा से ही काम होता है, गुणों के दबाव से नहीं। ऐसी अवस्था में पहुँचने से सन्तों का स्वभाव ही ऐसा बन जाता है तो फिर वे गिर नहीं सकते। देश, जाति और कर्म के बन्धन से मुक्त होकर वे सबको समान समझते हैं। किसीमें ममत्व को न रखते हुए जो पास आ जाता है, उसकी सेवा कर देते हैं।

परन्तु यह उपदेश सबके लिए नहीं है। जिनकी कर्म में रुचि है, वे शास्त्रीय बन्धनों के आधीन रहकर ही ऊँचे उठ सकते हैं। जो काम से पीड़ित हैं, उनके लिए शास्त्र ने ऋतुगामी का बन्धन लगाकर उनकी उन्नति का रास्ता बताया है। शास्त्र का असली मंशा तो वैराग्य, त्याग और मोक्ष है।

आत्मा को सुख-दुःख की प्रतीति नहीं होती। ज्ञानी नाटक के समान कर्म करता है, उसका चित्त किसी चीज में नहीं फँसता।

फल पर दृष्टि न रखना निष्कामता नहीं है। ईश्वर पर फल को छोड़ देना तो पहली अवस्था है। ऊँची अवस्था और है कि जहाँ ईश्वरीय प्रेरणा से काम होता है, वहाँ ईश्वर यदि कोई फल दे भी, तो इनकार कर दिया जाता है।

जब तक अपना कर्तव्य जँचता है, अपने कल्याण के लिए ही काम करते हैं। पर जब ऐसा प्रतीत हो कि अपने लिए कोई कर्म नहीं है, तो फिर वीतराग बनकर पूर्ण वैराग्य से परोपकार होता है। फिर जीत और हार से हर्ष-शोक नहीं होता। उस वक्त 'आनरेरी' काम होता है। ईश्वरीय प्रेरणा से ही वह सब-कुछ करता है। पर जब तक ऐसी अवस्था न आये, तब तक शास्त्रानुसार कर्म करते हुए उसके फल को प्रभु-अर्पण करते रहो धीरे-धीरे सब भेद खुल जायेंगे। चित्त जब पवित्र हो जायेगा, तो वह स्वयं लीलाधारी प्रभु का क्रीडास्थल बन जायेगा।

सबसे ऊँचा दर्जा यह है कि सब-कुछ ईश्वर कर रहा है, हम कुछ नहीं कर सकते। गोया अहंभाव बिलकुल मिट जाय। यह ज्ञानी

जीवन-मुक्त की दशा है। इससे कम यह है कि जो कुछ करें, ईश्वरार्पण करें। अपना ममत्व साथ न रहने दें। इसमें कर्तव्य-बुद्धि रहती है। यह भावना मुमुक्षु की है। तीसरा दर्जा यह है कि जो कर्म किसी फल की प्राप्ति की इच्छा से किया जाय, वह शास्त्र की विधि के अनुसार होना चाहिए और भावना यह हो कि जो हमारे अधिकार में था, वह हमने कर दिया, अब जैसा फल ईश्वर देंगे, उसीमें सन्तोष मानेंगे। यह भावना एक आस्तिक जिज्ञासु की है। इससे भिन्न जो भावना है, वह पापमय है और अत्यन्त दुःखकारक है।

संसारी कामों में दुःख है

दुनिया के जितने काम हैं, चाहे वे धर्म के हों, चाहे कैसे भी हों, सबमें दुःख है। बिना दुःख का काम केवल प्रभु का भजन ही है। परन्तु यह किसी बड़े भाग्यवान् पुण्यात्मा से ही हो सकता है, क्योंकि पद, मान, नाम और संसारी पदार्थ की इच्छा छोड़कर भगवत्-भजन में लग जाना बड़े शूरवीर का काम है। जब यह जीव प्रभु की शरण लेता है, तभी इसको चैन आती है, नहीं तो चिन्ता में ही पड़ा रहता है।

जीव को जब झगड़े छोड़ देने का मौका मिलता है, तब माया किसी-न-किसी बहाने से फाँसे रहने की तरकीब करती है। उसके फंदे से वे ही निकलते हैं, जिनकी प्रभु की तरफ सच्ची लगन है। जिनकी लगन माया में है, और प्रभु की तरफ कोरी बातों की है, वे माया को कभी नहीं छोड़ सकते।

इस अवस्था में भी यदि ईश्वर पर विश्वास न हुआ और प्रभु के चरणों में प्रेम न हुआ, तो फिर न जीते-जी सुख है, न परलोक में। क्योंकि जो हुकूमत, मान, बड़ाई और नाम में फँसा है, सो उसे मिल रहा है। आगे के लिए कुछ नहीं है। जो पुरुष मान, बड़ाई, नाम के लिए कर्म करता है, उसको वह मिल जाता है, परलोक में कुछ नहीं मिलता। जो परलोक के लिए करते हैं, यहाँ पर लोगों से कुछ नहीं चाहते, वे परलोक

में सुख भोगते हैं। उन्हें यहाँ धर्मकार्य करने में कोई दुःख नहीं होता; क्योंकि वे फल की परवाह नहीं करते। जैसा अपने से बना, वैसा कर दिया। दुनिया कुछ कहे, परवाह नहीं। वे धर्म-कर्म को ईश्वर की आज्ञा समझकर करते हैं, लोगों के दिखावे के लिए नहीं।

मृत्यु की तैयारी

पहले ही ईश्वरार्पण बनो। अपने हृदय को देखो कि तुम्हारा मन किधर लगा हुआ है। मरते समय तुम्हारा ध्यान दुनिया और दुनिया के कामों की तरफ होगा या ईश्वर के प्रेम में मग्न होगा? अन्त समय वैसा ही ख्याल होता है, जैसा कि यह जीव पहले से अभ्यास करता है। मृत्यु के पहले जिधर प्राणी का मन लगा होता है, उधर ही मृत्यु के समय लगा रहता है और मरकर फिर उसीमें पड़ता है। यदि मृत्यु से पहले वह ईश्वर के प्रेम में मग्न होता है, तो अन्तकाल में भी ईश्वर के प्रेम में मग्न होता है, और मरकर प्रभु की शरण में उनके निकट पहुँच जाता है, और सम्पूर्ण दुःखों से छूट जाता है। वह मरने-जीने के दुःख से छुटकारा ले लेता है।

प्रभु-प्रेम सर्वोत्तम

प्रभु के प्रेम के मुकाबले में दुनिया के जितने काम हैं, वे सब मिलकर बहुत तुच्छ हैं। जो प्राणी हीरा को छोड़कर कौड़ियाँ बटोरता है, वह महामूर्ख है।

जो प्रभु का भक्त है, वह प्रशंसनीय है और कल्याणकारी है। जिस हृदय में प्रभु विराजमान हैं, वह उससे शून्य न होने पाये। हर वक्त उन्हीं का ध्यान, उन्हीं की आशा, उन्हीं पर विश्वास बना रहे, तो उन्हींके पास गति होना है। यदि प्रभु तुम्हारे हृदय में विराजमान हैं, तो समझो कि तुम्हारे पास हैं।

आत्म-समर्पण में ही लाभ

आत्मसमर्पण है—अपनी शक्ति अनुसार कोशिश करके फल का पूरा

भाग ईश्वर पर छोड़ कर उनकी जो इच्छा हो, उस पर संतुष्ट रहना। यह सब काम ठीक रखता है। आगे को सब तरह जैसा उनको मंजूर हो, उस पर सन्तुष्ट रहना चाहिए। बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ आने पर भी यह हालत न बदले तब बहादुरी है। परीक्षा के समय ठीक रहे। यदि तुम उस पर पूरा भरोसा रखते रहोगे, तब वे आप ही तुम्हारी रक्षा करते रहेंगे।

जेहि विधि राखैं राम, तेही विधि रहिए।

सच्चे आत्मसमर्पण का स्वरूप

जो लोग वचन से तो अपने-आपको प्रभु को समर्पण करते हैं, परन्तु जब किसी बात में असफलता हुई, कठिनाई आ गयी या और कोई आपत्ति आ गयी, तब प्रभु की शिकायत करते हैं, प्रभु पर उनका विश्वास हिल जाता है। वे लोग आत्मसमर्पण से बहुत दूर हैं, और उनका आत्मसमर्पण दिखलावा है, अर्थात् झूठा है। जो लोग सोलह आना आत्म-समर्पण कर देते हैं, प्रभु भी उनकी कड़ी परीक्षा लेते हैं, और यदि उस समय उनका धैर्य्य न डिगे, तो प्रभु उनकी रक्षा करते हुए उन्हें अपना लेते हैं। जैसे प्रह्लाद, मीराबाई आदि।

तुमने जब कोई चीज किसीको बिल्कुल दे दी, तब उस पर तुम्हारा कुछ भी अधिकार नहीं रहा। लेनेवाला उस चीज को जैसे चाहे बरते, चाहे कुछ करे। जब तुम यह सब देखते हुए बे-परवाह रहो, तब तुम्हारा देना ठीक है और पूरी तौर से देना है। यदि दी हुई चीज की दुर्दशा को देखकर तुम्हारा मन शिकायत करता है, तब तुमने बिल्कुल नहीं दिया, कुछ अपना भी अधिकार रखा है। इसलिए यह दान ठीक नहीं है। जब किसीको समर्पण कर दिया, तब अपना अधिकार बिल्कुल जाता रहना चाहिए। इसलिए जो बात कहो, सोच लो कि हर हालत में उस पर चलने को तैयार हो या नहीं। यदि अभी तुम काम निकालने के लिए कोई चीज किसीको अर्पण कर दो, और यदि काम न निकला या काम निक-लने के पीछे फिर तुमने उस पर अपना कब्जा कर लिया, तब यह समर्पण

नहीं है, दिखावा है, धोखा है; यह माया का भुलावा है। इससे जीव धोखा खाकर अन्त में पछताता है, क्योंकि इन बातों से जीव का कल्याण नहीं होता।

तुमने तो अपने-आपको भगवान् को अर्पण कर दिया है, तो जैसी उसकी मर्जी होगी, वे रखेंगे। तुम्हें उस हालत में सन्तोष रखना चाहिए। वे ही तुम्हारे सम्बन्धियों के हृदय में प्रेरणा करके तुम्हारी रक्षा करा रहे हैं। जिस उपाय से उनके हृदय में वे प्रेरणा करेंगे, उसी उपाय से वे तुम्हारी रक्षा करेंगे। तुम्हें यही समझना चाहिए कि जो कुछ हो रहा है, वह परमात्मा की प्रेरणा से हो रहा है। इसलिए उसमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। असन्तुष्ट होना यह सिद्ध करता है कि तुमने पूरे तौर से अपने-आपको भगवान् को अर्पण नहीं किया, अभी तुमने अपना दिल दुनिया को भी दे रखा है। भगवान् की भक्ति और प्रेम की बात केवल मुख से कहने की नहीं है, करने की है। जो करता है, वही भगवान् को पहुँचता है। सिर्फ कहनेवाला कभी नहीं पहुँचता।

आत्म-समर्पण की विधि

जो प्राणी अपने-आपको आँखें बन्द कर ईश्वर की गोद में डाल देता है और संसार की ओर पीठ करके हर समय भगवान् का ख्याल रखता है, उसका सुधार प्रभु आप ही कर देते हैं। जैसे, जो बच्चा बोल नहीं सकता, वह माता के सिवा किसीको नहीं जानता; उसीसे ही वह प्रेम करता है, और सब जरूरी पदार्थों की आशा उसीसे रखता है। वह अपने आशय को प्रकट करने की शक्ति नहीं भी रखता, परन्तु माता उसके आशय को समझ जाती है और उसके लिए जो कुछ जरूरी है, आप ही लाकर दे देती है। यही हाल प्रभु का है। उनको कहने की जरूरत नहीं है, सिर्फ उनकी गोद में अपने-आपको डाल देना है। सब काम वे आप ही ठीक कर लेते हैं। यदि कभी दुःख हो, तो घबराना नहीं चाहिए, क्यों कि माता बच्चों को कभी-कभी कड़वी दवा भी पिलाकर

आराम कर देती है। हाँ, लगन सच्ची होनी चाहिए; दूसरों को दिखाने के लिए भी नहीं, नाम के लिए भी नहीं। संसार की तरफ पीठ और प्रभु की तरफ हमेशा मुख रखें। बस, इतना ही काफी है।

निरासक्त ही सुखी

तुम्हें संसारी लोगों को गुरु बनाकर उनसे उपदेश लेते रहना चाहिए कि इतने धनी, ऐश्वर्यशाली, विद्वान् आदि होते हुए भी संसार में आसक्त रहने से वे दुःखी ही देखे जाते हैं। सुखी वे ही होते हैं, जिन्होंने अपने-आपको प्रभु को समर्पण कर दिया है, जो संसार में अनासक्त हैं, शरीर-यात्रा के लिए ईश्वरीय नियमानुसार कार्य कर रहे हैं और सबके हित में रत हैं।

प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। अपने को ऐसा बनाना चाहिए कि प्रभु जिस हालत में जिस तरह रखें, उसमें सन्तोष करो। तभी वे भी प्रसन्न होते हैं। मन-वचन-कर्म से सदा उनको प्रसन्न रखना चाहिए। इसीमें कल्याण है।

संतोष में परम लाभ

सन्तोष के बिना जीव को सुख नहीं मिलता। सब रास्ते प्रभु को जाते हैं, किसी एक पर आरूढ़ होकर चलते रहने से जीव वहाँ पहुँच जाता है। परन्तु जो एक पर स्थिर नहीं रहता, बन्दर की तरह कभी एक शाखा पर, कभी दूसरी पर उछलता है, उसके लिए खतरा है।

'सन्तोषः परमो लाभः' ऐसा वेद-शास्त्र तथा सन्त-महात्माओं का कथन है। भगवान् के मिलने के अनेक मार्ग हैं, किसी पर चल पड़े और चलता रहे, अपनी शक्तिभर कोशिश करता रहे। प्रभु घट-घट की जाननेवाले हैं। वे आप ही जीव की श्रद्धा, भक्ति और निष्कपटता को देखकर अपने निकट बुला लेते हैं। यह सब प्रभु की माया है। उनके निकट सब कुछ आसान है। मनुष्य अल्पज्ञ है, उसे जो कुछ पता है, वह अधूरा है। परन्तु जब ईश्वर पर भार डालकर उनके भरोसे कुछ किया जाता है,

तब वे आप ही सफलता प्रदान करते हैं। इसलिए सन्तोष रखो।

सब काम प्रभु के ऊपर छोड़ देने में ही सुख है। उनके काम हैं, उनकी जैसी इच्छा होगी, वैसा होगा। उसी पर सन्तुष्ट रहो। अपना जीवन झगड़ों से बचाकर, कल्याण के मार्ग में लगा देना ठीक है।

जीते-जी मरना

जब तक तू जिन्दा है, सबको तेरी चिन्ता है। यदि तू मर जाय, तो सबकी चिन्ता मिट जाय, और मैं भी तेरी तरफ से निश्चिन्त हो जाऊँ। इसलिए तुझे दिलोजान से मर जाने की कोशिश करनी चाहिए।

क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, ईर्ष्या आदि कहीं तुझे गिरा न दें, और विघ्न डालकर तेरी गाड़ी बीच ही में न रहने दें। इसलिए तुझे जान भिड़ाकर इन शत्रुओं को नाश करने की कोशिश करते रहना चाहिए। तुझे नाम या बड़ाई का लोभ नहीं होना चाहिए। बड़े या छोटे कोई भी तुझे कभी कटु वचन कहें, या तेरी निन्दा करें, तो तुझे शान्तिपूर्वक सहना चाहिए। सम्बन्धियों को मुसाफिर की दृष्टि से देखना चाहिए। किसीके संयोग या वियोग में हर्ष-शोक नहीं होना चाहिए। अपने को दूसरी स्त्रियों या पुरुषों से कुछ उच्च देखकर अभिमान नहीं आना चाहिए। मीराबाई तथा साधोबाई को देखना चाहिए कि उन्होंने कैसे-कैसे कष्ट सहे और जीते-जी मरकर रहीं, जिससे उनके जीवन को बड़े-बड़े विद्वान्, साधु-महात्मा आदर्श बनाते हैं। दूसरों में यदि कोई गुण अपने से अधिक देखो, तो खुश होना चाहिए। ईर्ष्या कभी न आये। यदि कोई कभी किसीकी झूठी स्तुति भी करे, तब भी तुझे जलना नहीं चाहिए। दुनिया में ऐसा होता ही रहता है। जो दुनिया में फँसे हुए हैं, वे झूठी स्तुति करते-कराते रहते हैं। तुझे इन बातों से बेपरवाह रहना चाहिए।

होनहार को भगवान् के ऊपर छोड़कर सन्तुष्ट रहने से भगवान् प्रसन्न होंगे और तेरा चित्त भी शान्त रहेगा। भजन में भी यही वृत्ति रखनी चाहिए। अपना काम करते रहो, फिर जो कुछ हो उसे प्रभु की मर्जी समझ कर सन्तुष्ट रहो।

जीवन-मुक्ति का मार्ग

शरीर-यात्रा के लिए संसारी व्यवहार ऊपरी भाव से करना चाहिए। दिल प्रभु की तरफ लगा रहे, शरीर-रक्षा के ख्याल से काम करते रहे और संसार में दुःख देखते रहे, तब ऐसा व्यवहार बन्धन का कारण नहीं हो सकता। पतिव्रता स्त्री को एक ही पति होता है। उसीसे उसका प्रेम होता है, औरों के साथ भी वह ऊपरी मन से व्यवहार मात्र करती है, दिल उसका अपने स्वामी में ही होता है। दूसरे लोगों के साथ वह जो कुछ व्यवहार करती है, वह अपने स्वामी की आज्ञा से करती है। इसीलिए उसका मन दूसरी जगह नहीं फँसता, और न वह कभी गिरती है।

भक्तों की रक्षा

भगवान कहते हैं, जो संसार को लात मारकर मेरी शरण में आता है, उसकी जरूरतों को मैं आप ही पूर्ण करता हूँ और उसकी रक्षा मैं आप ही करता कराता हूँ। इसलिए तुमको ईश्वर पर पूरा भरोसा रखना चाहिए। परमेश्वर ही तो असल रक्षक है। जिसका हृदय शुद्ध है, उसकी रक्षा परमात्मा आप ही करते हैं। परीक्षा सबकी होती है। प्रह्लाद, ध्रुव, मीराबाई आदि सबकी परीक्षा हुई है, और अब भी होती रहती है। जितनी ही कठिन परीक्षा में जीव पास होकर निकलता है, उतनी ही उसकी उन्नति अधिक होती है।

ईश्वर की दया में विश्वास

फल के लिए ईश्वर पर ही निर्भर रहना चाहिए। यदि सफलता हो गयी, तो ठीक है; परन्तु यदि दैववश सफलता न हो, तो दुःख न मानना; क्योंकि प्रभु जो कुछ करते हैं, ठीक ही करते हैं। जीव अपनी कुबुद्धि से उलटा समझ कर प्रभु को दोष लगाता है। वह अपने पापों पर दृष्टि नहीं देता, इसीलिए दुःखी रहता है। जो पुरुष सच्चे दिल से ईश्वर से बारम्बार प्रार्थना करता है, उसकी प्रार्थना को वे कभी-न-कभी स्वीकार कर ही लेते हैं। जितने प्राणधारी हैं, दुःख सबको होता है। जो

धार्मिक तथा धैर्यवान् हैं, वे सह लेते हैं और जो अधीर हैं, वे रोते रहते हैं।

गीता में भगवान् कहते हैं कि जो सुख-दुःख, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, हानि-लाभ इत्यादि द्वन्द्वों को सहते हैं, वे ही मोक्ष के अधिकारी होते हैं। क्योंकि ये सब जीव के भोग हैं, जो उसके प्रारब्ध के अनुसार होते हैं। इनसे भागना पाप है। जो कुछ आ गया, उसे धैर्य्य के साथ भुगत लेना ही धार्मिक पुरुषों को उचित है। जब दुःख हो, तब मन को ललकार कर कहो कि 'अरे मन, अच्छा हुआ जो तुझे अभी यह दुःख आ गया। अभी बहुत समय है, सँभल जा, आगे को चेत जा, मोह में अब न फँस, वरना पीछे पछताना पड़ेगा।'

मन मतङ्ग मानत नहीं, जब लग धका न खाय।

यह मन ऐसा ही है। ठोकर खाकर सीखता है। कोई हर्ज नहीं, चोट लगी सो लगी। अब आगे को सावधान रहो और इस पापी मोह को जड़ से उखाड़ दो। तभी हमेशा के लिए दुःख से छुटकारा होगा, नहीं तो फिर गिरायेगा और चोट देगा।

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय॥

बड़े-बड़े साधु-महात्माओं पर भी दुःख आता है, परन्तु वे इस तरह रोते-पीटते नहीं। वे अपने मन को प्रभु की बन्दगी में लगाये रहते हैं। जो धैर्य रखता है, उस पर ईश्वर कृपा करेंगे ही और अपनी ओर शीघ्र खींच लेंगे। जहाँ-जहाँ भक्तों का मन फँसा होता है, वहाँ-वहाँ से वे किसी-न-किसी तरह हटा लेते हैं। उनकी महिमा को कोई समझ नहीं सकता।

एक बड़े भारी सेठ थे। वे कृष्ण भगवान् के भक्त थे और वृन्दावन में वास करते थे। जब उनका जवान लड़का, जो उनके साथ ही रहता था, मर गया, तो उन्होंने बड़ी खुशी मनायी और बिरादरी को पीले पत्र भेजे कि मुझे बहुत आनन्द हुआ कि मेरा लड़का वृन्दावन में मरा। वह सीधा स्वर्ग को जायेगा!

भक्तों का हृदय और धैर्य ऐसा ही होता है! चाहे जो कुछ हो, सब ठीक है। तुमको कहीं-न-कहीं तो रहना है, जहाँ प्रभु रखें वहीं सन्तोष से जीवन व्यतीत करो। शिकायत करना, मानो प्रभु के न्याय से असंतुष्ट होना है, सो ठीक नहीं है। रक्षा करनेवाले प्रभु ही होते हैं। परन्तु वे किसी-न-किसी को निमित्त बना देते हैं, और उनके द्वारा रक्षा कराते हैं।

संसार त्यागे बिना सुख कहाँ?

परमात्मा ने ही अब तक हमारी रक्षा की है और हमारा प्रबन्ध किया है। वे ही आगे भी खबर लेंगे। तुम्हें परमात्मा जिस हालत में रखें, उसीमें खुशी और संतोष के साथ निर्वाह करने का हौसला रखना चाहिए। यह तभी हो सकेगा, जब तुम संतोष वृत्ति को धारण करोगे। लोभ में न पड़कर बड़ा बनने की कोशिश में न रहोगे। आराम से वे हैं, जो हर हाल में खुश हैं। मानसिक दुःख तो माना हुआ, झूठा दुःख है—फिर झूठ को त्यागने में ही सुख है।

रूखी सूखी खाय के, ठंडा पानी पीव।
देख पराई चूपड़ी, मत तरसाये जीव॥

निर्वाह के लिए अच्छी तरह पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए। परन्तु उसका जो फल हो, उस पर संतोष करना चाहिए। मन में दुःख न आने पाये, इसीमें आपकी बहादुरी है। इसलिए ईश्वर के सहारे लगातार पुरुषार्थ में डटे रहिये और यम-नियमों के पालन का खूब ध्यान रखिये। परमात्मा आप ही सब ठीक कर देंगे।

मनुष्य में सामर्थ्य होती, तो वह दुखों को क्यों होने देता? भगवान् ही सबको कर्मानुसार सुख-दुःख देते हैं। जिन्होंने दुःख दिया है, उन्हींसे उसके दूर करने की प्रार्थना करनी चाहिए। यदि विश्वास हो, तो सच्चे दिल से उनकी शरण में जाओ, वे आप ही दुःख का निवारण करेंगे।



उ
त्रिवे
साम्य
जय

मेरा यह लक्ष्य था कि मैं पुरुषों तथा स्त्रियों में इस बात की जागृति करा दूँ कि यदि व्यवहार को शुद्ध कर, आहार सात्त्विक कर शरीर को ठीक रखें और विषयों से मन को हटाकर अंतर्मुख करें, तो उनको अपने भीतर के खजाने का पता लग सकता है।

—सियाराम